सवाने उमरी

एक महान सूफी सन्त की संक्षिप्त जीवन लीला

प्रेम और करुणा की मूर्ति

परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

सिकन्द्राबाद (उ. प्र.)

लेखक

डॉ . महेश चन्द्र

(मैं तो दास तेरो जनम-जनम को)

विषय सूची

विषय		पृष्ठ
" दो शब्द "		
प्राक्क्थन		1
अध्याय १	संतों का संसार में आने का संक्षिप्त अभिप्राय	4
अध्याय २	(१) जन्म (२) कुल	7
अध्याय ३	महात्म्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के गुरुदेव का संक्षिप्त परिचय	10
अध्याय ४	(१) गुरु-शिष्य का प्रथम मिलन	14
	(२) आध्यात्म विद्या और आचार्य पदवी	15
अध्याय ५	छवि	19
अध्याय ६	महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का प्रारम्भिक जीवन	22
	दिनचर्या	24
अध्याय ७	खान - पान और स्वभाव	27
अध्याय ८	सन्तमत क्या है ?	37
अध्याय ९	गुरु की आवश्यकता और पहिचान	42
अध्याय १०	आध्यात्मिक शिक्षा का तरीक़ा	48
अध्याय ११	संस्मरण	58
अध्याय १२	पूज्य भाई साहब सरदार करतार सिंह जी का	95

पूज्य गुरुदेव की शरण में आना

अध्याय १३ बैनर्जी साहब 97

परमसन्त डॉ. श्याम लाल साहब सक्सेना, ग़ाज़ियाबाद 99

परमसन्त पूज्य श्री सेवती प्रसाद साहब, कासगंज 100

अध्याय १४ महानिर्वाण 102

अध्याय १५ महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी 106

अध्याय १६ कुछ उपदेश 111

“दो शब्द”

(श्री स्वामी चिन्मयानंद पुरी, अल्मोड़ा – हिमालय)

यह भारतवर्ष प्रागैतिहासिक युगों से एक महत्वपूर्ण भूखण्ड है. इसकी सीमा श्याम देश, बर्मा, सिंहल से लेकर काबुल, कन्दाहार आदि तक थी. महाभारत के राजा धृतराष्ट्र की रानी गांधार देश की थीं, इसीलिए उनका नाम गांधारी था. यह देश सदा से धार्मिक तथा आध्यात्मिक उच्चतम भावनाओं से भरपूर था. यहां कितने ही असंख्य मुनि, ऋषि, साधु, सन्यासी, संत, परमसन्त आदि के निवास तथा साधना का स्थल था. इनमें आर्यावर्त्त वर्तमान भारतवर्ष सबसे उल्लेखनीय साधन भूमि थी. आज तक जाने न जाने कितने महात्मा इस देश के कोने-कोने में साधना कर सिद्ध हुए हैं एवं हो रहे हैं, उनका पता भी नहीं चलता. कितनों का कोई भी भेष धारण नहीं है परन्तु हैं संत -- परमसन्त तथा अपने साध्य साधनाओं में सिद्ध व्यक्ति हैं. जनसाधारण को ऐसे महात्माओं का पता भी कम चलता है.

ऐसे ही सन्तों में श्री श्रीकृष्ण लाल जी भी एक थे. श्री श्रीकृष्ण लाल जी से मेरा परिचय १९४० दशक के शेषादर्ध में हुआ था. बाद को मैं उनके आमंत्रण पर उनके निवास-स्थान सिकन्द्राबाद में भी गया था और क़रीब एक सप्ताह रहा. उन दिनों डॉ. हरि student (छात्र) थे. बरेली में ' मृणाल भवन ' मठिआ, बिहारीपुर में जहां उनके पहले दीक्षा लेने वालों में से श्री जय नारायण गौतम रहा करते थे, मेरे से उनकी भेंट बहुत दफै हुई थी. अंतिम दर्शन हमारा परस्पर रुड़की में मार्च १९६९ में हुआ था. उन्होंने मुझसे कहा था कि " यह चुने गिने कुछ ख़ास आदमियों को बुला कर यह छोटा सत्संग आप ही के लिए किया गया है. " तीन दिन सत्संग में अधिवेशन हुए थे. उपस्थिति करीब ३०० की थी जो रुड़की, काशी गोरखपुर, कासगंज, बिहार, आदि से आये थे.

उन्होंने मुझसे कहा कि अब मेरी अवस्था हो गयी है, तबियत भी ठीक नहीं रहती है, न मालूम कब यह शरीर छूट जाये. हमारे सन्त-समाज में एक रीति (रिवाज़) है कि कोई आचार्य अपने बाद में कौन आचार्य तथा अध्यक्ष होंगे, वह बात तीन परमसंतों की सम्मति (राय) से निश्चय की जाती है. पहले दो सन्तों की सम्मति हमने ली हुए परन्तु कोई नतीजा नहीं निकला है. अब आप तीनों में से जिसको कहेंगे उसी को मैं अध्यक्ष तथा आचार्य बनाऊंगा.

"भले ही वह आपके मन के ख़िलाफ़ भी हो ?"

" जी हाँ, ज़रूर; नहीं तो आपकी इस आखिरी राय का मूल्य कहाँ रहा ?"

इसी सिलसिले में जब मुझको उन्होंने ' परम सन्त ' कहा तो मैंने तत्काल ही कहा कि अभी तक तो मैं एक सन्त ही नहीं बन सका, तो फिर आपने मुझको ' परमसन्त ' कैसे कहा ? आपकी नज़र (दृष्टि) ही ग़लत है . यह सुनकर वे अपने ढंग से हँस कर, मुस्कराते ही रहे और अपना मुँह-मण्डल (सिर) हिलाते रहे.

पहले दिन रात को मैं श्री जय नारायण गौतम के साथ रुड़की पहुंचा था. वे दूसरे दिन दिल्ली से 'कार' में आते ही मेरे कमरे में आये और क़रीब एक घण्टे मेरे साथ बात-चीत करते रहे. इनमें मुख्यतः भजन-साधन तथा अंतिम दस वर्षों में किस प्रकार अपने अनुभव हुए, ये सभी बातें कहीं, साथ ही साथ इस बात का उल्लेख करते रहे कि सिकन्द्राबाद में मुझसे भेंट होने के बाद में सब पक्का हुए (उनके अनुभव). तीन दिनों तक जब हम दोनों से भेंट होती थी तो पारस्परिक साधनाओं तथा अनुभवों की ही बातें होती थीं. उन्होंने कहा कि " मैं अपना दिल खोलकर ये सब बातें करूंगा. आपको छोड़कर मेरी नज़र में अब कोई नहीं है ."

जब बार-बार अध्यक्ष या आचार्य के बारे में ज़िद (आग्रह) किया करते रहे, तो मैंने और एक रात का समय लिया; एवं अपनी अंतर्दृष्टि से या विचार से तीनों में से जिसको अध्यक्ष तथा आचार्य बंनाने का नाम लिया, तो वे कुछ देर तक गंभीर होकर आँखें बन्दहोने की मुद्रा में रहे. फिर मुस्कराते हुए कहा कि " हाँ, आपने जैसा फ़रमाया मैं ऐसा ही करूंगा. ..... . आपने ही जो बताया आप ही की बात (राय) मैंने मान ली. आप उस पर सदा आशीर्वाद रखें कि वह यथार्थ में आपके निर्वाचन अनुसार योग्यतम बन सके."

यह कहना यहाँ अवान्तर नहीं होगा कि परमात्मा की कृपा से और उसकी शुभेच्छा से वे ही उस समय एक साधारण व्यक्ति में दीखते हुए आदमी आज किस प्रकार योग्यता के साथ " रामाश्रम सत्संग " के अध्यक्ष तथा आचार्य के रूप में इसके कर्णधार बने हुए हैं, एवं इस सत्संग रुपी नौका को कितने ही झाड़-झटके तथा आँधियों में भी डूबने नहीं दिया है, और अन्य सारे प्रतियोगियों तथा विरोधियों को राहु-ग्रस्त (eclipsed) कर दिया है.

मैं ह्रदय से यह शुभेच्छा करता हूँ कि भाई साहब का बच्चा यह सत्संग और भी तुङ्ग स्थान में उठे एवं इसके सहयोगी सभी का आत्मिक (आध्यात्मिक) कल्याण हो.

भाई साहब श्रीकृष्ण लाल जी ने बतलाया है - " हम माया के देश में रहते हैं. दुःख-सुख आयेंगे ही, शरीर की पीड़ा, मानसिक पीड़ा , आर्थिक पीड़ा, समाज से उत्तेजना, अपने प्रियजनों से उत्तेजना, अपने मन की चंचलता और संस्कारों के कारण अशान्ति उतपन्न होती है." श्रीकृष्णा लाल जी ने फ़रमाया है कि - **" इन सबसे ऊपर उठना चाहिए."**

हमारे प्रिय ..... श्री करतार सिंह जी ने अपने गुरुदेव के इस कथन की व्याख्या करते हुए एक सही दृष्टांत दिया है कि - " (देखो) भगवान शिव की समाधि अवस्था की ओर कि इस माया देश में किस तरह रहना है ? भगवान शिव की तरह, उनके गले में भी लोग साँप डाल देते हैं, उन्हें विष पिलाते हैं. परन्तु भगवान शांत हैं. सत, चित, आनन्द हैं. सत्यम, शिवम, सुन्दरम हैं."

भाई साहब श्रीकृष्ण लाल जी ने भगवत गीता के शीर्ष उपदेश के अनुरूप उपदेश बतलाया है कि

" इन सबसे ऊपर उठना चाहिए " क्योंकि मन ही तक सारे सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष, सङ्कल्प, विकल्प, काम क्रोधादि रहते हैं, मन ही इन सबका आधार है. सारे प्रमाद मन से ही होते हैं. इसलिए अभ्यास से मन के ऊपर उठने से ही **" इन सबसे ऊपर उठना "** आसान है.

जगी हुई अवस्था को ' जाग्रत अवस्था " कहते हैं. इस समय दसो इन्द्रियां, मन तथा आत्मा सभी मिल कर काम करते हैं. इसके आगे जब हम लेट जाते हैं सोने के लिए, जब लेटे- लेटे सारी इन्द्रियां तथा इन्द्रियों का व्यापार (कर्म) ठप्प हो जाता है, केवल मात्र ' मन ' ही जगा हुआ रहता है, तब उसे स्वप्न अवस्था कहते हैं. इसमें केवल मन ही सब कुछ बनाता है और दिखलाता है. इस अवस्था के भोग भी मन के द्वारा बने हुए हैं और मन ही भोक्ता भी है. साधक भी जब दीर्घ समय तक बैठ कर अभ्यास करता है तो उसकी सारी इच्छाएं थप्प हो जाती हैं, केवल मन ही साधना के साध्य विषय को सोचता रहता है. फिर जब यह मन की भी ' मनन ' क्रिया थप्प हो जाती है, तब मन के भी ऊपर साधक पहुँच जाता है और इन इन्द्रियों तथा मन आदि से भी परे आत्मा से ही एकीभूत रहता है. इस अवस्था को ' समाधि ' कहते हैं. यही अवस्था सुषुप्ति के समान मन-रहित अवस्था है. किन्तु सुषुप्ति तथा समाधि की अवस्थाओं में साम्य कुछ हिस्से तक रहने पर भी अन्तर बहुत (काफ़ी) है. इस अवस्था में पूर्वोक्त पीड़ायें तथा प्रमाद आदि नहीं रहते हैं. अतः साधकों को जहाँ तक हो सके, प्रारम्भ में इस प्रकार अभ्यास द्वारा **" इन सब से ऊपर उठना चाहिए "** तो तब ही साधक-जीवन की सार्थकता होगी. सारी बातों की प्रमाद अवस्था से साधक अप्रमाद अवस्था में - स्वात्माराम अवस्था में - पहुँच कर कृतकृत्य होगा. इस देह, इन्द्रियाँ तथा मन में अभिमान करना (कि ये ही मैं हूँ) प्रमाद कहलाते हैं. इस प्रमाद से रहित होना ही है 'अप्रमाद अवस्था ' अर्थात इस देह, इन्द्रियाँ तथा मन को " मैं " (मैं-पन) न सोचना न मानना. प्रमाद ही मृत्यु है. देह, इन्द्रियाँ, मन आदि की मृत्यु या ' नाश ' से अपनी मृत्यु समझते हैं सर्वसाधारण मनुष्य मात्र. ऐसे भी बहुत मनुष्य (साधक) हैं जो देह, इन्द्रियों तथा मन से जो परे अवस्था है -आत्माराम अवस्था - आत्मानन्दी होना, वे नहीं चाहते हैं. दैहिक या मानसिक प्रेम से परे प्रेमा भक्ति की वे कल्पना नहीं कर सकते हैं. केवल वेधी भक्ति या प्रेम मात्र लेकर वे ज़िन्दगी काटना चाहते हैं. प्रेम स्वरुप का (परमात्मा का) स्वाद भी लेना वे नहीं चाहते हैं, और न कर सकते हैं. भाई साहब को तो ये अपना भीतरी भाव था. रुड़की मार्च महीने १९६९ में उनसे आन्तरिक भाव-विनियम से पता चला. परन्तु अन्य किसी से यह अनुभव उन्होंने शायद ही कभी बतलाया हो. श्री गौरांग जैसे केवल बहिरंग कीर्तन आदि लेकर ही रहते थे, केवल एकमात्र राय रामानंद से ही यह बात प्रकाशित (ज़ाहिर) हुई थी. रुड़की में उनसे मेरी भेंट न होती तो मैं भी उनके विषय में यह भाव या बात नहीं कह सकता था.

अतः वे यथार्थ में एक परमसन्त थे, एक महापुरुष थे, ' परा -भक्ति ' में मग्न (मशग़ूल) थे. अतः वे प्रातः स्मरणीय हैं.

ऐसे महापुरुष की जीवनी लिखने का प्रयास श्री महेश चंद्र का बहुत प्रशंसनीय है.

भाई साहब श्रीकृष्ण लाल जी ने पहले पहल मुझ से श्री महेश चंद्र का परिचय कराते हुए कहा था कि " यह एक Journalist (पत्रकार) हैं. अर्थात 'लेखक' हैं. उनका यह परिचय (Journalist तथा लेखक होना) आज सार्थक हो रहा है.

निर्वाण प्राप्त होने के कुछ दिन पहले उन्होंने श्री महेश चंद्र से मुस्कराते हुए आधे प्रश्न के रूप में कहा था कि - " मेरी सवाने उमरी (जीवनी) तुम लिखोगे." उस समय के १५ वर्षों तक श्री महेश चंद्र में इस बात की प्रेरणा नहीं आयी थी. अब उनको प्रेरणा प्राप्त होते ही ग्रन्थ-रचना (अपने गुरुदेव की सवाने उमरी लिखने) का प्रारम्भ होगया था.

श्री महेश चंद्र के ही आन्तरिक आग्रह से मैं इस ग्रन्थ पर " दो शब्द " लिख रहा हूँ. मैं चाहता हूँ धार्मिक समाज में इसका आदर हो एवं सत्संगी स्त्री-पुरुष सभी इसकी एक-एक प्रति अपने घर में नित्य स्वाध्याय कि लिए रख लें.

श्री महेश चंद्र जी ने भग्न स्वास्थ्य लेकर भी इस ग्रन्थ की रचना में जो कष्ट उठाया है उसके लिए वे सभी सत्संगी समाज के प्रशंसा तथा कृतज्ञता भाजन हैं. इति.

स्वामी चिन्मयानंद पुरी
१५-३-१९८७

स्वामी चिन्मयानंद पुरी

जगन्नाथ पुरी, उडी शा

फाल्गुनी पूर्णिमा, १५ मार्च, १९८७.

ॐ

प्राक्कथन

एक दिन की बात है कि मैं गुरुदेव (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के दर्शनों के लिए सिकंदराबाद (उ. प्र.) गया हुआ था. तब उन्होंने मुझे इंगित करके कहा था- "मेरी सवाने-उमरी (जीवन चरित्र) तुम लिखोगे." उनके महानिर्वाण के पंद्रह वर्ष से अधिक बीत चुके हैं किन्तु मैं उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सका. ऐसे महान संत का जीवन-चरित्र लिखना कोई साधारण बात नहीं है . इसलिए अब तक मैं लिखने का साहस नहीं कर सका. पिछले दिनों (जनवरी १९८५ तथा आगे) की गंभीर बीमारी में मेरा ज़मीर मुझे बार-बार धिक्कारता रहा कि मालूम नहीं कब कूच का समय आ जाय और यह काम पूरा न हो पाये. मुझे बीमारी से उन्ही की कृपा से प्राणदान मिला और अब उन्हीं के सहारे साहस बटोर कर इस कार्य को पूरा करने के लिए कटिबद्ध हो गया हूँ. मेरी लाज उनके हाथ है.

इसी सम्बन्ध में मैने उनसे एक दिन निवेदन किया था कि मुझे अपनी जन्म-पत्री देने की कृपा करें, तो उन्होंने साधारण स्वभाव से उत्तर दिया था कि "हमने उसे अपने पास नहीं रखा, हमने उसे गंगा जी में फेंक दिया." मैने उनकी जन्म-तिथि पूछी थी तो उन्होंने कहा था कि "हमें ठीक याद नहीं है, अनुमानतः १५ अक्टूबर, १९८४ हमारी तारीख़ पैदायश है." फिर मैने उनसे निवेदन किया कि मुझे अपने बचपन के कुछ हालात बताने की कृपा करें. इस पर उन्होंने कहा था -"हमारे बचपन के हालात मत लिखना क्योकि हमारा बचपन बहुत ख़राब था."

जहां तक मुझे ज्ञात हुआ है, वे बचपन में कुछ हठीले स्वभाव के रहे होंगे, परन्तु जो बच्चा स्वाभिमानी, दृढ-प्रतिज्ञ, कुशाग्र-बुद्धि और ईश्वर-भक्त हो, जैसे कि मेरे गुरुदेव थे, उसको हठी कहना सर्वथा अनुचित है. बचपन में ही उन्हें भगवान कृष्ण के दर्शन हुआ करते थे और वे एकांत में बैठकर ईश्वर की याद में रोया करते थे. प्रेम करना बालकपन से ही उनका स्वभाव था. बच्चों की सी चंचलता और उदण्डता उनमें नहीं थी. वे इतने सरल और सीधे स्वभाव के थे यदि कोई उनसे छल-कपट करता था तो वे उसके इस प्रकार के व्यवहार को समझते नहीं थे.

उनकी भेंट उनके पूज्य गुरुदेव महात्मा रामचंद्र जी महाराज (लाला जी) से कैसे हुई इसका विवरण आगे आया है. यहां हठ के सम्बन्ध में एक घटना देना मैं आवश्यक समझता हूँ.

गुरुदेव बाल्यकाल में जब पूज्य लाला जी की सेवा में जाने लगे तो उनके पिता जी को यह बात पसंद नहीं आयी क्योकि वे नहीं चाहते थे कि छोटी आयु में ही बच्चे ईश्वर भक्ति में पड़ जाएँ. इसलिए वे उन्हें पूज्य लाला जी के पास जाने से रोकते थे. इधर गुरुदेव को लाला जी से इतना प्रेम था कि जब तक दिन में एक बार उनके दर्शन न कर लें, चैन नहीं पड़ता था. यह आकर्षण इस सीमा तक पहुंच चुका था कि गुरुदेव को घर से जो भी खाने-पीने की वस्तु मिलती थी वे उसे अपनी मुठ्ठी में रख लेते थे और जब लाला जी के पास जाते थे तो बालकवत सरल स्वभाव से पहले उन्हें खिलाते थे तब

स्वयं खाते थे. उनके पिता जी को दो असमान आयु के व्यक्तियों की यह घनिष्ठता बिलकुल पसंद नहीं थी. वे चाहते थे कि उनका पुत्र एक दुनियादार व्यक्ति बने और सांसारिक उन्नति करे तथा फ़क़ीरों की संगति छोड़ दे. एक दिन वे पूज्य लाला जी के घर की ओर से निकल रहे थे. बाहर चबूतरे पर लाला जी खड़े थे ओर गुरुदेव झाड़ू लगा रहे थे. पिता जी ने लाला जी से कहा-"मुंशी जी, क्या यह लड़का मुजाबिर बनेगा?" उत्तर में लाला जी ने कहा -" हाँ, ओवरसियर साहब, (गुरुदेव के पिता जी ओवरसियर थे), अल्लाह ने चाहा तो यह लड़का मुजाबिर ही बनेगा." साधारण भाषा में मुजाबिर उनको कहते हैं जो पीरों की समाधियों पर सेवा कार्य करते हैं. मुजाबिर का सूफी-संतों में बहुत ऊंचा पद होता है, यानि ऐसा व्यक्ति जो आध्यात्मिक सेवा करता हो.

कहने का तात्पर्य यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियां आने पर ओर अपने ही घर के लोगों के विरोध करने पर भी गुरुदेव ने पूज्य लाला जी की सेवा में जाना नहीं छोड़ा ओर दृढ़ता पूर्वक उनकी शरण पकड़ ली. उनका कहना था कि चाहे दुनिया इधर से उधर हो जाये, हम लाला जी को नहीं छोड़ेंगे. फ़ारसी की कविता का थोड़ा सा भाग जो गुरुदेव बहुधा कहा करते थे वह इस प्रकार है :-

अब्र बारा छोड़ दे, बिजली तड़कना छोड़ दे,

रूह क़ालिब छोड़ दे. या जिस्म को जॉ छोड़ दे,

मैं न छोडूंगा तुझे, चाहे ज़माना छोड़ दे.

भावार्थ- मेघ भले ही जल त्याग दें, बिजली अपनी चमक भले ही छोड़ दे, आत्मा चाहे शरीर को छोड़ जाय, मृत्यु भले ही हो जाय, परन्तु मैं तुझे नहीं छोड़ूँगा, चाहे सारा संसार ही मुझे क्यों न छोड़ दे.

यह है एक उदाहरण सच्चे प्रेम के नाते का. यदि इसे 'हठ ' की संज्ञा दी जाती है तो ऐसा हठ मुबारिक, मुबारिक, मुबारिक. यह तो एक सच्चे ईश्वर प्रेमी का आभूषण है.

प्रेम गुरुदेव में कूट-कूट कर भरा था. वास्तव में वे प्रेम की साक्षात प्रत्तिमा थे. उनके जितने भी सेवक आज मौजूद हैं, जब आपस में उनकी स्मृति करते हैं तो हर कोई यह दावा करता है कि जितना अधिक प्रेम गुरुदेव उससे करते थे, किसी अन्य से नहीं करते थे. वास्तव में हरेक का यही अनुभव है क्योकि वे तो प्रेम के अवतार थे.

उन्होंने आध्यात्म विद्या पर अनेकों पुस्तकें लिखीं हैं. उनके प्रवचन जो 'संत वचन' के नाम से अब तक ७ भागों में छप चुके हैं, जब बहुत से जमा हो गए तो मैंने उनसे निवेदन किया कि इन पुस्तकों का क्या नाम रखा जाय? साधारण तौर पर वे ऐसे मामलों में कह दिया करते थे कि सरदार जी (उनके गुरुमुख शिष्य और उनके वर्तमान मुख्य आध्यात्मिक उत्तराधिकारी भाई साहब डॉ. करतार सिंह जी) से पूछो. जैसे, जब महात्मा रामचंद्र जी महाराज (लाला जी साहब) के पत्रों का संकलन छपा तो उन्होंने आदेश दिया था कि इसका जो नाम सरदारजी बतायें वही रखा जाय. सरदार जी भाई

साहब ने उस पुस्तक का नाम 'अमृत रस' रखा था. किन्तु इस बार उन्होंने ऐसा नहीं किया. शायद वे अपना परिचय हम मूढ़ बुद्धिके लोगों को इसी माध्यम से देना चाहते थे. मेरे निवेदन के उत्तर में उन्होंने तुरंत कहा-"इस किताब का नाम रखो 'संत -वचन '. दूसरे शब्दों में यों समझ लें कि वे पूर्ण सन्त हैं. इस बात की पुष्टि एक बार और हुई थी. जिस समय ' सन्त-वचन' का 'परिचय' लिखा गया तो इस सेवा का सौभाग्य मुझे मिला और मैं परिचय लिखकर उसकी पुष्टि कराने उनकी सेवा में गया. जाड़ों के दिन थे. दिल्ली में श्री भजनशंकर जी के घर आप पधारे हुए थे. प्रातःकाल का समय था. वहीं सरदार जी भाई साहब मौजूद थे. मुझसे गुरुदेव ने पूछा- "क्या कुछ लिख कर लाये हो?" मैंने निवेदन किया -"जी हाँ, लिखकर तो लाया हूँ."

"अच्छा, सरदारजी को बुला लो. बाबू भजनशंकर आप भी आजाइये" उन्होंने कहा था.

फिर पढ़ना शुरू हुआ. पढ़ते-पढ़ते एक स्थान ऐसा आया जहाँ आपने मुझे रोक दिया और स्पष्ट कहा -"देखो, यहां पर यह लिखो कि जैसे भगवान राम के साथ लक्ष्मण जी आये, कबीर दास जी के साथ धनी धर्मदास जी आये, गुरु नानकदेव के साथ गुरु अंगद देव जी आये, स्वामी रामकृष्ण परमहंस के साथ स्वामी विवेकानंद आये, श्री शिवदयाल सिंह साहब के साथ राय साहब सालिग राम साहब तथा सरदार जयमल सिंह साहब आये, इसी तरह महात्मा रामचंद्र जी महाराज मुझको अपने साथ लाये."

इससे स्वयं उनके श्रीमुख से इस बात की पुष्टि हो गयी कि वे एक अवतारी सन्त थे. अतः उनके बचपन का कोई विशेष हाल देने का उनकी आज्ञानुसार ही कोई प्रयोजन नहीं है. आगे चलकर पाठक जो कुछ भी पढ़ेंगे उससे स्वयं ज्ञात हो जायेगा कि उनका जीवन सत्य, अहिंसा, करुणा, दीनता, परोपकार, तथा दीनदुखियों, रोगियों, ग़रीबों, और विधवाओं की सेवा से परिपूर्ण था. सारी आयु उन्होंने आध्यात्म विद्या का प्रसार और प्रचार किया और इस दिव्य मिशन को भूले-भटकों और ज़रूरतमंद लोगों तक पहुंचाया और इसी काम में अपने आपको मेंट दिया.

ऐसे महापुरुष की जीवनी लिखने की किसकी लेखनी में शक्ति है. अतः आगे जो कुछ भी लिखा जा रहा है उनकी आज्ञा-पालन हेतु ही लिखा जा रहा है. मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि गुरुदेव की जीवनी भली-भांति लिख सकूं. मैं उन्ही के आश्रित हूँ कि वे ही इस कार्य को पूरा कराएं.

यह प्राक्क्थन और अधिक लम्बा न करते हुए पाठकों से निवेदन करता हूँ, कि जो कुछ भी इस जीवन चरित्र में घटनाओं, उपदेशों और आध्यात्मिक शिक्षा के रूप में लिखा गया है उस पर मनन करें, विवेक बुद्धि से सोच-विचार करें और उसे अपने व्यवहारिक जीवन में उतारें. इससे उनकी चारित्रिक और आध्यात्मिक उन्नति होगी और यदि उनके बताये मार्ग पर चलेंगे तो एक न एक दिन अपने इच्छित लक्ष्य पर अवश्य पहुंच जायेंगे.

ग़ज़ियाबाद दासानुदास,

दि. ४-२-१९८६ - महेश चंद्र

अध्याय १

(१) सन्तों के संसार में आने का संक्षिप्त अभिप्राय

भगवान का यह विरद है, जिसे धर्म-ग्रंथों में बार-बार दोहराया गया है, कि जब-जब संसार में धर्म कि ग्लानि होती है, अधर्म बढ़ जाता है तब-तब धर्म की स्थापना करने के लिए उनका अवतार होता है. यह रीति युग-युग से चली आरही है.

सन्तों का भी अवतार होता है, वे भी ईश्वरीय शक्ति लेकर आते हैं और मनुष्यों को धर्म पर चलना सिखाते हैं.

अवतार हज़ारों वर्षों बाद संसार भर में एक होता है. संत अवतारों की तुलना में जल्दी-जल्दी आते हैं और एक ही समय में या पृथक-पृथक समय में संसार के एक ही भाग या अन्य भागों में अलग-अलग देश, काल और परिस्थिति के अनुसार प्रकट होते हैं.

अवतार तो अधर्मियों का विनाश करके, तत्कालीन सामाजिक परिस्थिति के अनुसार धर्म की पुनः स्थापना करके अपने धाम लौट जाता हैं. परन्तु उस धर्म को स्थिर रखने का काम, उसके प्रसार और उसे भूले भटके मनुष्यों तक पहुँचाने का काम संत करते हैं.

यदि अधर्मी लोग अवतार के आदेशानुसार समझाने-बुझाने से अधर्म छोड़कर धर्म पर नहीं चलते तो बहुधा वह शस्त्र धारण कर लेता है और उनका विनाश कर डालता है. संत शस्त्र धारण नहीं करते. वे प्रेम के माध्यम से लोगों को सही रास्ते पर चलना सिखाते हैं. देश, काल और सामाजिक परिस्थितियों को ध्यान में रख कर ऐसा तरीक़ा ईज़ाद करते हैं जिस पर चलकर मनुष्य सुगमता से भवसागर पार हो जाय और आवागमन के चक्र से छूट जाय जो मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य है.

संत दो प्रकार के होते हैं. एक तो वे जो सचखण्ड से अवतरित होते हैं और जीवों के उद्धार के लिए मनुष्य चोला धारण करते हैं और दूसरे वे जो ऐसी महान आत्माओं की संगति में रहकर उनसे आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त करके तप और अभ्यास के द्वारा उस गति को प्राप्त करते हैं.

जो संत सचखण्ड या सतलोक से अवतरित होते हैं वे बहुधा ब्रह्माण्ड से ऐसी आत्माओं को जो पिछले जन्म में सचखण्ड तक नहीं पहुंच सकीं हैं और किसी छोटी-मोटी इच्छा के कारण ब्रह्माण्ड में ठहरी हुईं हैं और आगे का रास्ता रुका

हुआ है, अपने साथ ले आती हैं. इन्हीं आत्माओं में से किसी एक या दो को चुन लिया जाता है जो अवतरित संत के निर्वाण के बाद ब्रह्मविद्या की शिक्षा का काम करते हैं. ऐसे ही लोगों को गुरुमुख शिष्य (सूफी भाषा में मुराद) कहते हैं.

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज को पूज्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज (उपनाम लाला जी) अपने साथ लाये. वे उनकी मुराद थे और अपने निर्वाणोपरांत पूज्य लाला जी ने अपने मिशन का कार्य-संचालन उन्हीं के सुपुर्द किया जिसका विस्तृत आगे आएगा.

(२) इल्म-नक्शबंदी (चक्र बन्धन या चक्रभेदी विद्या, राजयोग)

मनुष्य शरीर में गुदा के स्थान (जिसे मूलाधार कहते हैं) से लेकर सिर की चोटी के स्थान तक अठारह चक्र हैं इन्हें किसी ऐसे व्यक्ति की सहायता लेकर जो चक्र-बंधन विद्या में निपुण हो, जाग्रत करके परमात्मा की प्राप्ति की जाती है. सूफ़ियों में इसे इल्म नक्शबंदी और हिन्दू संतों में इसे चक्र भेदी विद्या या चक्र बंधन विद्या या राज योग भी कहते हैं.

यों तो यह विद्या सनातन है और भारतवर्ष में ऋषियों मुनियों से चली आ रही है परन्तु इसे गुप्त रखा गया और हरेक को इसका अधिकारी भी नहीं समझा गया. अतः यह हिन्दुओं में प्रायः लोप सी हो गयी. बहुत कम ऐसे संत हुए जो इस विद्या में पारंगत हों और बहुत कम ऐसे शिष्य रहे होंगे जिन्हे इस विद्या का अधिकारी समझा गया हो. फिर भी इस विद्या का सम्पूर्णतः विनाश नहीं हुआ और यह सीना-ब-सीना (एक ह्रदय से दूसरे हृदय में प्रवेश होना) चलती आ रही है.

मुसलमानों में यह विद्या रसूल (अवतार) हज़रत मौहम्मद मुस्तफा सल्लल्लाहु वसल्ल्म से चली. उन्होंने अपने चार गुरुमुख शिष्य (खलीफ़ा) बनाये जिनमें हज़रत अबूबक्र साहब सिद्दीकी प्रथम गुरुमुख शिष्य (खलीफ़ा अव्वल) थे. खानदान नक्शबंदिया (चक्रबेधी वंश) इन्हीं खलीफ़ा साहब से शुरू हुआ और अब तक चला आ रहा है. प्रारम्भ में इस साधना पद्धति का नाम कुछ भी रहा हो (इसमें विभिन्न मतभेद हो सकते हैं) परन्तु हज़रत ख्वाजा वहाउद्दीन (रहमतुल्लाहु अलह) के समय से इस पद्धति को नक्शबंदी सिलसिला कहने लगे.

जिस समय महात्मा रामचंद्र जी महाराज (अवतरित संत) प्रकट हुए उस समय उन्नीसवीं शताब्दी अपने अंतिम चरणों में थी. यह ऐसा समय था कि ईश्वर की मौज़ से देश के विभिन्न भागों में अवतरित संतों की लहर सी आयी थी. बंगाल में स्वामी रामकृष्ण परमहंस तथा स्वामी विवेकानंद, दक्षिण भारत में रमण महर्षि, पश्चिम में स्वामी राम दस जी, स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं गाँधी जी, उत्तर प्रदेश में पावहारी बाबा तथा राधास्वामी मत के संत अग्रगण्य हैं. और भी इतने संत प्रकट हुए कि जिनकी गिनती करना कठिन है. मुस्लिम संतों में भी ऐसी ही बाढ़ सी आयी थी जो कहीं-कहीं

धार्मिक कटटरपने की परधि को लांघकर, मुस्लिम समाज के चट्टानी किनारों को तोड़ कर, हिन्दुओं तक पहुंच गयी और उस इल्म नक्शबंदी का प्रवेश उदार ह्रदय मुस्लिम संतों द्वारा हिन्दुओं में किया गया.

महात्मा रामचंद्र जी महाराज ने तत्कालीन हिन्दू समाज के लांछनों की परवाह न करते हुए जातीयता का विचार छोड़कर ब्रह्मविद्या को एक परम उदार वक्त के पूरे सतगुरु मौलाना फ़ज़्ल अहमदखां साहब (रह.)(रायपुर, जिला फर्रुखाबाद, उत्तरप्रदेश) से प्राप्त किया. इस्लाम धर्म के सामयिक प्रचिलित कर्मकाण्ड, शब्दावली, अरबी और फ़ारसी मिश्रित आधात्मिक भाषा को परिस्थिति और सामजिक व्यवस्था के हिसाब से कोई मूल परिवर्तन न करते हुए उसे एक नवीन साँचे में ढाला. पन्थ के उस समय के प्रचलित कठिन क़ायदे कानूनों को सरल बनाया, उसके सीखने के नवीन तथा आसान तरीक़े आविष्कार किये, और हिन्दू धर्म की सुविधा के अनुसार देश, काल का विचार रखतें हुए उसमें आवश्यक परिवर्तन करके इस विद्या को हिन्दुओं में पुनः प्रचलित किया.

अध्याय २

(१) जन्म

पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का जन्म १५ अक्टूबर सन १८९४ को एक सुप्रतिष्ठित उच्च भटनागर कायस्थ कुल में हुआ. उस दिन क्वार के नवदुर्गों की रामनवमी थी. आपकी जन्मभूमि सिकन्द्राबाद (जिला बुलंदशहर) ही और जिस पवित्र स्थान पर औंर जन्म धारण किया वहउनकी पैत्रिक हवेली अब भी मौजूद है. गुरुदेव ने उस हवेली में सेवक को लेजाकर उस कोठरी की और इशारा करके बताया था " देखो, मेरा जन्म इस कोठरी में हुआ था और मेरा नाल (umbilical cord) इसी कोठरी के अन्दर गढ़ा हुआ है."

(२) कुल

पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी के पिता जी का शुभ नाम श्री भगवत दयाल जी भटनागर था. आप सार्वजनिक निर्माण विभाग (P.W.D.) में ओवरसियर के पद पर नियुक्त थे. माता जी का नाम श्रीमती कृष्णा देवी था. गुरुदेव के पितामह का नाम श्री बृषभानु जी था. वे बड़े सीधे-सादे स्वभाव के और धार्मिक प्रवृत्ति के मनुष्य थे. कुछ ज़मींदारी थी जिसकी आय से घर का काम चलता था.

गुरुदेव के धार्मिक संस्कारों का उभार उनके वंश में अपने पितामह, अपने पिताजी तथा माताजी की संगति में हुआ. पितामह श्री बृषभानु जी राधास्वामी मत के आचार्य राय साहिब सालिग राम जी महाराज तथा परमसन्त सरदार श्रावण सिंह जी महाराज से नाम लिए हुए थे. आपके पिताजी भी राधास्वामी मत के उपरोक्त राय साहब से युवावस्था में ही नाम ले चुके थे किन्तु उसमें उनकी प्रवृत्ति स्थायी न रह स्की. बाद में उन्होंने परमसन्त सरदार श्रावण सिंह जी महाराज से उपदेश लिया और अपने जीवन को सफल बनाया.

गुरुदेव की माताजी श्रीमती कृष्णा देवी जी बहुत सीधी-सादी, नेक और धार्मिक प्रवृत्ति की थीं. उन्होंने भी परमसन्त श्रावण सिंह जी से नाम लिया था. उसके पश्चात उन्होंने अपने आपको गृहस्थी के मामलों से बिलकुल अलग कर लिया था, हर समय अपने इष्ट के ध्यान में रहती थीं और अंत समय में भी उसी ध्यान में अपना शरीर छोड़ा. वे अपने ज्येष्ठ पुत्र (गुरुदेव) को जिन्हें वे प्यार में 'नन्हे' कहतीं थीं, बहुत प्रेम करती थीं और अंत समय तक उन्हीं के पास रहीं.

गुरुदेव अपने पाँच भाइयों में सबसे बड़े थे. अन्य चार भाइयों के नाम हैं :-

(१) श्री गिरिवर कृष्ण भटनागर

(२) डॉ. महाराज कृष्ण भटनागर

(३) श्री बेनी कृष्ण भटनागर

(४) श्री जगदीश कृष्ण भटनागर

श्री गिरिवर कृष्ण जी दिल्ली में आयकर विभाग में इनकम टैक्स आफीसर थे. वे अब जीवित नहीं हैं. उनकी पत्नी का नाम श्रीमती सरस्वती देवी है.

डॉक्टर महाराज कृष्ण जी स्वास्थ्य विभाग में मेडिकल ऑफीसरऑफ़ हेल्थ तैनात थे. अब वे अवकाश प्राप्त हैं और ग़ज़ियाबाद में रहते हैं. आपकी पत्नी का नाम श्रीमती सावित्री देवी है.

श्री बैनी कृष्ण जी का छोटी आयु में ही स्वर्गवास हो गया था.

श्री जगदीश कृष्ण जी अब जीवित नहीं हैं. आप सार्वजनिक निर्माण विभाग में इंजीनियर थे. आपकी पत्नी का नाम श्रीमती कैलाश देवी है.

पूज्य गुरुदेव की धर्मपत्नी जी का नाम श्रीमती चंद्र देवी था.

आपकी तीन बहिनें हुईं. सबसे बड़ी श्रीमती चंद्र देवी थीं जो श्री बलबीर सहाय जी को ब्याही थीं. दूसरी बहिन श्रीमती सूरज देवी श्री ब्रजनंदन स्वरुप जी को ब्याहीं थीं. यह दोनों बहिने अब जीवित नहीं हैं. तीसरी बहिन का नाम श्रीमती तारा देवी है जो अभी जीवित हैं. आपके पति का नाम श्री वल्लभ स्वरुप जी है.

पूज्य गुरुदेव की संतान में दो पुत्रियां और तीन सुपुत्र हैं. सबसे ज्येष्ठ संतान उनकी सुपुत्री श्रीमती शकुंतला देवी हैं जो लखनऊ में श्री राजेंद्र कुमार भटनागर को ब्याही हैं. उनसे छोटी बहिन श्रीमती शांति देवी हैं जो रामपुर (उ.प्र.) में डॉक्टर हरिश्चंद्र कश्यप की ब्याहीं हैं .

तीसरी संतान उनके ज्येष्ठ पुत्र हैं जिनका नाम डॉ. हरिकृष्ण भटनागर है. आप अपने पूज्य पिताजी के सिकन्दराबाद स्थित दवाखाने में डाक्टरी का काम करते हैं. गुरुदेव की और से आपको सम्पूर्ण आचार्य पदवी (इज़ाज़त तआम्मा) प्राप्त है और आप गुरुदेव के पवित्र मिशन रामाश्रम सत्संग की सेवा बड़ी लगन से कर रहे हैं. आपकी धर्मपत्नी जी का नाम श्रीमती कान्ति देवी है.

गुरुदेव की चौथी संतान उनके दूसरे पुत्र श्री राधेकृष्ण भटनागर हैं जो दिल्ली में शिक्षा विभाग में अध्यापक थे. आपकी धर्मपत्नी जी का नाम भारतेश्वरी भटनागर है.

श्री गोपाल कृष्ण भटनागर गुरुदेव के तीसरे सुपुत्र और अंतिम संतान हैं. आप नेशनल जनरल इंश्योरेंस कम्पनी में अधिकारी हैं. आपकी धर्मपत्नी का नाम श्रीमती जगदीश्वरी भटनागर है.

मझले और छोटे दोनों पुत्र ग़ज़ियाबाद में रहते हैं.

महात्मा श्रीकृष्ण लालजी महाराज के वंश का यह संक्षिप्त परिचय है. धन्य है यह देश, धरती, जाति, वंश और कुल जहाँ ऐसे महान संत अवतरित हुए. उन्होंने अपनी जाति और कुल को ही पवित्र नहीं किया बल्कि जहाँ-जहाँ उनके पवित्र चरण गए वे भी पवित्र हो गए और दूर दूर तक का सारा वातावरण भी पवित्र हो गया.

इससे भी अधिक धन्य हैं वे लोग जिन्हें उनके श्री चरणों में बैठने और उनके कृपा-भाजन होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ. सबसे अधिक धन्य वे महानुभाव हैं जिन्हें गुरुदेव ने अपने मिशन की सेवा का कार्यभार सुपुर्द किया है.

---------- ----------

अध्याय ३

(१)

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के गुरुदेव (परमसन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज, उपनाम लाला जी) का संक्षिप्त परिचय

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के गुरुदेव का शुभनाम श्री रामचंद्र सहाय था जो बाद में महात्मा रामचंद्र जी महाराज के नाम से विख्यात हुए. उनके प्रेमी-जन उन्हें "लाला जी" के नाम से सम्बोधित करते थे. इस पुस्तक में भी उन्हें लालाजी कह कर सम्बोधित किया गया है.

लालाजी के पूज्य पिता जी चौधरी हरबख्श राय साहब क़स्बा भोगाँव, जिला मैनपुरी (उ.प्र.) के निवासी थे. आपके पूर्वजों को मुग़ल बादशाहों से "चौधरी" का ख़िताब प्राप्त था. कई गावों के ज़मीदार थे. सन १८५७ के ग़दर का आपके क़स्बे पर बुरा प्रभाव पड़ा. सारा क़स्बा लूट लिया गया और ऐसा समय आया कि अराजकता फैल गयी.दिन दहाड़े लूट-पाट और मारकाट की घटनाएं होने लगीं. यह देखकर चौधरी साहब ने अपनी जन्मभूमि को छोड़ने का निश्चय कर लिया. फ़रुखाबाद के तत्कालीन नबाब से आपकी मित्रता थी, अतः भौगाव छोड़कर आप फ़र्रुख़ाबादचले आये और वहाँ सुपरिन्टेन्डेन्ट चुंगी तैनात हो गए. एक हवेली बना ली और वहीं रहने लगे.

चौधरी साहब की धर्मपत्नी जी (पूज्य लालाजी की माताजी) के शुरू में कोई संतान जीवित नहीं रही थी. वे अत्यन्त नेक,सुशील और धर्मात्मा थीं. अधिकतर समय पूजा-पाठ और रामायण पढ़ने में व्यतीत होता था. गुप्त-दान देने का उन्हें बहुत चाव था परन्तु ग़रीब और अनाथ लड़कियों के विवाह में वे खुले दिल से दान देतीं थीं. कोई भी भिखारी उनके द्वार से ख़ाली हाथ नहीं जाने पाता था.

आपका कण्ठ बड़ा सुरीला और आवाज़ बहुत मधुर थी. जब आप रामायण जी का पाठ करती थीं तो प्रेम-विभोर हो जाती थीं और ऐसा समा बंध जाता था कि सुनने वाले मंत्रमुग्ध रह जाते थे और ईश्वर के प्रेम में मस्त होकर तन-मन की सुधि भूल जाते थे. आप बहुधा संतों के सत्संगों में जाती रहती थीं और कभी-कभी कोई संत आकर आपके घर को भी पवित्र किया करते थे.

निसंतान होने के कारण चौधरी साहब के मन में कुछ निराशा सी उत्पन्न हुई और उन्होंने अपने एक भतीजे को दत्तक पुत्र बना लिया. किन्तु ईश्वर को संतान देना मंज़ूर था. एक बार एक अवधूत फ़कीर जिसे सूफी भाषा में "मजज़ूब"

कहते हैं, फ़रुखाबाद में आये. यह फ़कीर एक काला कम्बल ओढ़े रहते थे और गली-गली घूमते थे. एक बार वह उस रास्ते से होकर निकले जहाँ चौधरी साहब की हवेली थी. दरवाज़े पर आवाज़ लगाई और भोजन माँगा. चौधरी साहब की धर्मपत्नी साधु सेवी थीं, कोई भी साधु या भिक्षुक उनके द्वार से ख़ाली नहीं जाने पाता था. आपने बड़ी श्रद्धा से उन फ़कीर साहब को पूरी, मिठाई इत्यादि पेश की किन्तु उन्होंने स्वीकार नहीं की और कहा कि आज हमारी तबियत मछली खाने को चाहती है. माताजी के यहां मांस का सेवन नहीं होता था. अतः बड़ी मज़बूरी थी. वे असमंजस में पद गयीं किन्तु उन्हें तुरन्त याद आयी कि चौधरी साहब के लिए मांस-मछली आदि दुसरे घर में बनता था क्योकि वे ऐसी वस्तुओं का सेवन करते थे. उस दिन नबाब साहब ने दो मछलियां चौधरी साहब के लिए भेजी थीं जो उनके नौकर ने बना कर तैयार की थीं. माताजी ने बिना संकोच के वे दोनों मछलियाँ मंगवा लीं और थाली में सजा कर उन फ़कीर साहब के सन्मुख रख दीं. उन्होंने बड़ी प्रसन्नता से दोनों मछलियों को खा लिया.

एक पुरानी सेविका उस समय वहाँ मौजूद थी. उसने उन अवधूत फ़कीर से कहा कि ईश्वर का दिया हुआ बहूजी के पास सब कुछ मौजूद है, केवल संतान नहीं है. ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि बहू जी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हो. फ़कीर ज़ोर से ठहाका मार कर हँसे. उन्होंने "अल्लाह-हो-अकबर" कह कर दुआ के लिए हाथ ऊपर उठाये और 'एक-दो' कहते हुए मालूम नहीं कहां चले गए.

फ़क़ीर की दुआ और परमात्मा की कृपा से साल भर बाद ४ फरवरी सन १८७३ (बसंत पंचमी के दिन) एक दिव्य आत्मा का जन्म हुआ जो बाद में परमसन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज (लाला जी) के नाम से विख्यात हुए. बसंत पंचमी को सन्तों में एक विशेष महत्वपूर्ण पर्व माना जाता है और दिव्य आत्माएं बहुधा बसंत पंचमी के दिन ही प्रकट होती रही हैं. इसके दो वर्ष बाद दूसरे सुपुत्र २७ अक्टूबर १८७५ को प्रकट हुए जो बाद में परमसन्त महात्मा रघुवरदयाल जी महाराज (चच्चा जी महाराज) के नाम से विख्यात हुए.

बचपन में पूज्य लालाजी का लालन-पालन बड़े लाड़-चाव से हुआ. नौकर चाकर देख भाल के लिए और सवारी के लिए घोड़ा-गाड़ी रहती थी. एक मौलवी साहब पढ़ाने के लिए रखे गए जो उन्हें उर्दू, फ़ारसी पढ़ाते थे और कविता करना सिखाते थे. संगीत आपको अपनी माताजी से उत्तराधिकार में मिला था.

आपकी सात वर्ष की आयु में माता जी ने नश्वर शरीर छोड़ दिया और आपका लालन-पालन एक मुसलमान सेविका ने किया. कुछ दिनों बाद समय ने पलटा खाया. पहले पिता का स्वर्गवास हुआ, फिर बड़े भाई (चौधरी साहब के

दत्तक-पुत्र)का स्वर्गवास हुआ और छोटी आयु में ही घर की देख-भाल का भार लालाजी पर आ पड़ा. एक मुक़द्द्मा जायदाद के बारे में राजा मैनपुरी से चल रहा था जिसका फैसला राजा मैनपुरी के पक्ष में हुआ. साड़ी ज़मींदारी, गाँव हाथ से निकल गए, हवेली और गहने बिक गए और ऐसा धनाभाव हुआ कि उन्हें एक छोटा सा मकान किराये पर लेकर रहना

पड़ा जिसमें इतनी जगह नहीं थी कि पढ़ने के लिए एकांत हो. उस समय पूज्य लालाजी फ़रुखाबाद के मिशन स्कूल में आठवीं कक्षा में पढ़ते थे. अपने घर से कुछ दूर मुफ़्ती साहब का मदरसा था जिसमें आपने अपने पढ़ने के लिए एक कोठरी किराये पर ले ली.

इस कोठरी के दूसरी ओर एक ओर कोठरी थी जिसमें एक मौलाना साहब रहते थे जो लड़कों को प्राइवेट पढ़ते थे. इसी से उनकी जीविका चलती थी. पूज्य लालाजी अपनी शैक्षिक कठिनाइयों को दूर करने के लिए इन्हीं मौलवी साहब के पास चले जाते थे ओर वे बड़े प्रेम तथा प्रसन्नता से उन कठिनाइयों को दूर कर देते थे. यह मौलवी साहब लालाजी साहब की रहनी-सहनी ओर ईश्वर प्रेम से परिचित थे, अतः उन्हें भीतर ही भीतर बहुत प्रेम ,करते थे. लालाजी को इन मौलाना साहब की संगति में एक विशेष आकर्षण मिलता था किन्तु वे यह नहीं जानते थे किआप एक उच्च कोटि के संत हैं.

मिडिल पास करने के बाद फरुखाबाद के कलेक्टर साहब ने आपको बुलवाया क्योकि वह चौधरी साहब से अच्छी तरह परिचित थे और वर्तमान आर्थिक कठिनाइयों को जानते थे. कलेक्टर साहब ने लालाजी को अपने कार्यालय में पेड अपरेंटिस (paid apprentice) नियुक्तं कर दिया. घर का गुज़ारा चलने लगा किन्तु लालाजी ने वह कोठरी नहीं छोड़ी.

एक दिन की बात हैं कि कार्यालय से लौटते समय रात हो गयी. लालाजी जब अपनी कोठरी में आये तो बुरी तरह भीग गए थे और परेशान थे. कपड़ों से पानी टपक रहा था और सर्दी से काँप रहे थे. जब आप बड़े दरवाज़े से होकर अपनी कोठरी की ओर जा रहे थे तो मौलाना साहब की कृपा दृष्टि आप पर पड़ी. उन्होंने बड़े प्रेम पूर्वक लालाजी को सम्बोधित किया, उन्हें आवाज़ दी ओर कहा-"इस तूफ़ान में इस तरह आना ?" लालाजी कहा करते थे कि इन शब्दों में बड़ा प्रेम भरा हुआ था. आपने बड़ी नम्रता से नमस्कार किया. मौलाना साहब ने दुआ दी "अल्लाह अपना रहम करे" ओर बोले -" बेटे, जाओ, भीगे कपड़े बदल डालो, फिर हमारे पास आना और थोड़ी देर आग से हाथ-पैर सेक कर तब घर जाना." इन शब्दों में बड़ा आकर्षण भरा हुआ था. लालाजी ने ऐसा ही किया और जब कपड़े बदल कर आये तब देखा कि मौलाना साहब ने एक अंगीठी में आग सुलगा रखी है. लालाजी ने आकर पुनः प्रणाम किया. उन संत जी ने आँख उठाकर देखा. आँख से आँख मिलना था कि लालाजी के सिर से पाँव के अंगूठे तक एक बिजली सी दौड़ गयी और तन-बदन का होश जाता रहा. ऐसा मालूम होता था कि दोनों की आत्माएं मिलकर एक हो गयीं. संत जी ने कृपा करके लालाजी को अपने बिस्तरपर बैठा लिया और रज़ाई उढ़ा दी. लालाजी कहा करते थे कि उस समय एक अद्भुत आनंद का अनुभव हो रहा था और एक अजीब मस्ती की हालत थी. ऐसा मालूम होता था कि मैं आकाश में उड़ रहा हूँ, सारा शरीर प्रकाश से दैदीप्यमान है.' बहुत देर तक लालाजी इसी हालत में रहे. जब वर्षा बंद हो गयी तब मौलाना साहब ने कहा कि अब घर जाओ. कोठरी के बाहर ऐसा मालूम होता था कि एक तेज फैला हुआ है जिसमें पेड-पौधे, जीव-जंतु, स्थावर-जंगम सब नाच रहे हैं. लाला जी की पिण्डी व ब्रह्माण्डी सब चक्रों से 'ॐ ' का शब्द (अनहद नाद) जारी था और ऐसा प्रतीत होता था कि आपकी जगह सूफी साहब ने ले ली है. इन्हीं संत जी का शुभ नाम मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहब था. आप फ़रुखाबाद के क़ुतुब (संत

शिरोमणि) थे. ये ही लाला जी के गुरुदेव थे. अपने जीवन-काल में ही आपने अपनी सारी ब्रह्म विद्या लाला जी को दे दी और सम्पूर्ण आचार्य पदवी देकर यह आदेश दिया कि जाओ, इस विद्या को हिन्दुओं में ही नहीं. मनुष्य-मात्र में बिना किसी भेद-भाव के फैलाओ. यद्यपि ऐसा करने से तत्कालीन कट्टर मुसलमानों में बड़ा रोष फैला, संत जी के घर पर पथ्थर मरे गए, लांछन लगाए गए, अपशब्द भी कहे गए, परन्तु उन्होंने इस बात की कोई चिंता नहीं की. आप फरुखाबाद छोड़कर अपने गाँव रायपुर चले गए.

परमसन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज (लालाजी) पूर्ण योगी, पूर्ण संत और पूर्ण ब्रह्मवेत्ता थे. आपने योग की, विशेषकर चक्र बन्धन विद्या की, उच्च से उच्च अवस्थाओं को प्राप्त किया था. इस मार्ग की प्रत्येक बारीकी से पूर्णतया परिचित थे और सीखने वाले को ऐसे सरलतम मार्ग पर लगा देते थे जिससे वह बिना कठिनाई के, सुगमता से, तेज़ी के साथ योग की उच्च अवस्थाओं को प्राप्त कर ले.

पूज्य लाला जी का दार्शनिक ज्ञान केवल हिन्दू फिलासफी तक ही सीमित नहीं था. वे मुस्लिम, बौद्ध और ईसाई धर्म के प्रकांड पंडित थे. वे इन फिलॉसफियों की हर बारीकी से पूर्णतः परिचित थे. जिस ब्रह्मविद्या की शिक्षा और प्रचार लाला जी ने किया उसमें हर फिलॉसफी के अपूर्व समन्वय की एक अनोखी झलक दिखायी देती है. आपको अनेकों सम्प्रदायों से आचार्य पदवी प्राप्त थी जिनमें सूफी वंश की नक्शबंदी मुजद्दिदी मज़हरी परम्परा, कबीर पंथ, बौद्ध मत, राधास्वामी मत और ईसाई धर्म मुख्य हैं.

आजीवन आपने गुरुदेव की आज्ञा का पालन करते हुए, दीन -दुखियों और ज़रूरत-मंदों का उद्धार करते हुए सन १९३१ की १४ अगस्त को पार्थिव शरीर छोड़ दिया और ब्रह्मलीन हो गए. आपकी समाधि कमालगंज वाली सड़क पर फतेहगढ़ से लगभग एक किलोमीटर दूर बनी हुई है.

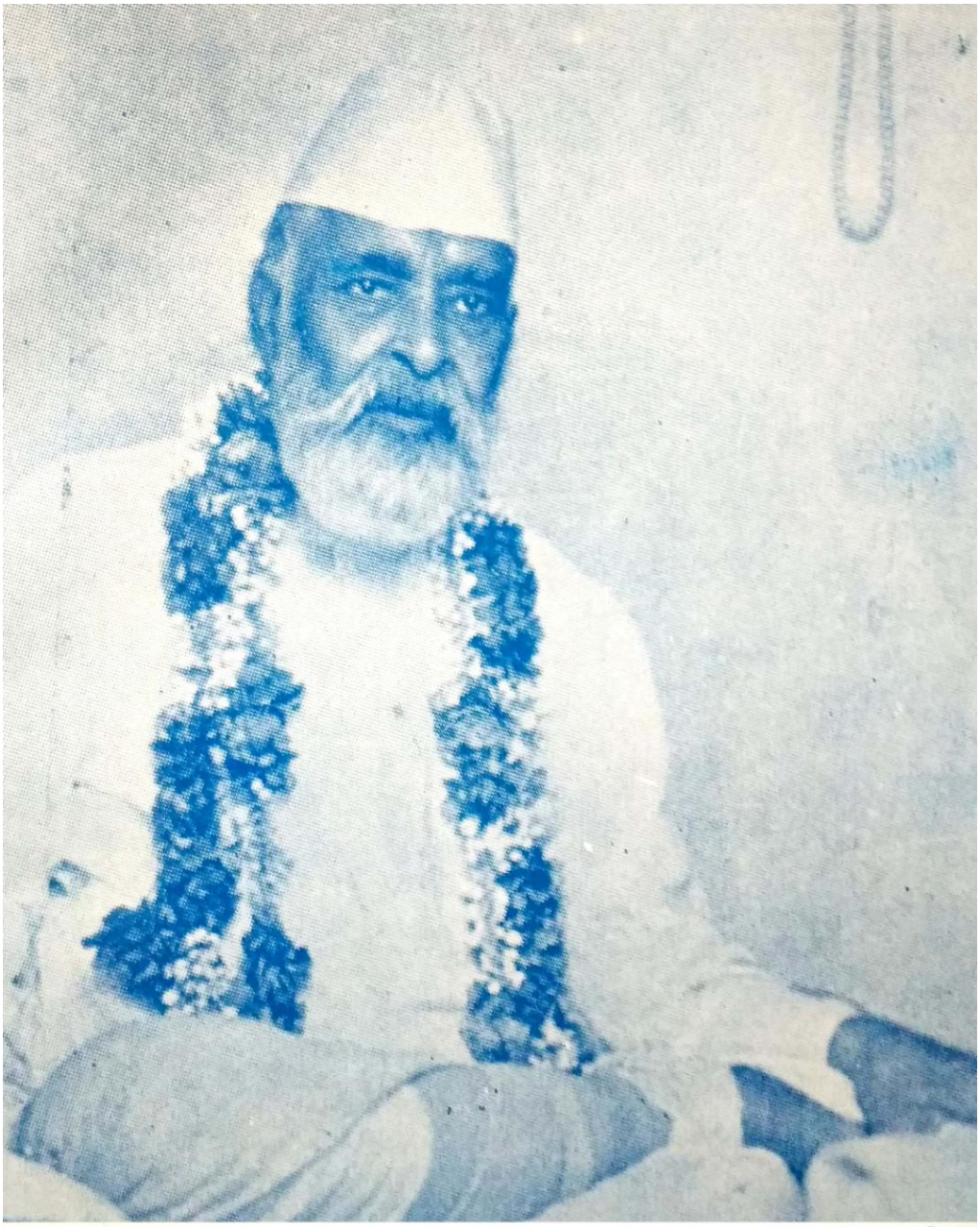

एक प्रेम के नाते को छोड़कर मैं और किसी नाते को नहीं जानता। केवल प्रेम और वह भी निस्वार्थ प्रेम। जो लोग बिना अपने स्वार्थ के मुझे प्रेम करते हैं, चाहे वे कैसे भी हैं 'उन्हें मैं प्रेम करता हूँ। वे मेरे हैं और मैं उनका। वे सदैव मुझ पर आश्रित रह सकते हैं और वे देखेंगे कि मैं सदैव उसकी सेवा के लिये प्रस्तुत हूँ।

—परमसंत डॉ० श्रीकृष्णलाल जी महाराज

सिकन्दराबाद, उ० प्र०

(जन्म १५-१०-१८९४ निर्वाण १८-५-१९७०)

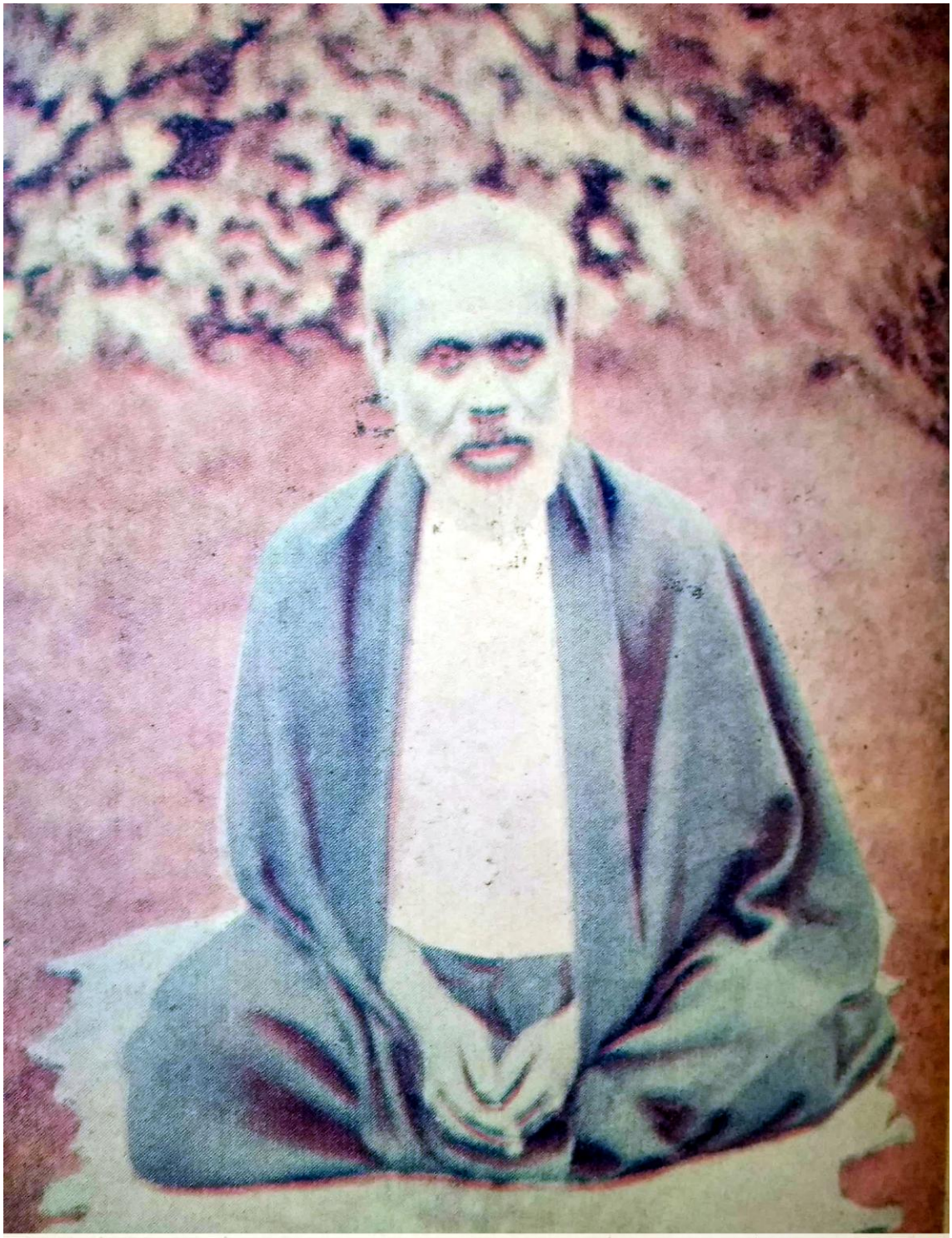

समर्थ गुरु महात्मा रामचन्द्र जी महाराज (उर्फ लाला जी)
फतहगढ़, उ०प्र० निवासी (जन्म १८७३–निर्वाण १९३१)

अध्याय ४

(१)

गुरु-शिष्य का प्रथम मिलन

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का अपने गुरुदेव से प्रथम मिलन किस प्रकार और कब हुआ इसका वर्णन महात्मा रामचंद्र जी महाराज के जीवन चरित्र में आया है. किन्तु सन १९५९ के वार्षिक भण्डारे पर सिकन्द्राबाद उ. प्र. में उनका एक प्रवचन टेप किया गया था वहमेरे पास सुरक्षित है. उसका कुछ अंश पाठकों की सुविधा के लिए यहां दिया जाता है. गुरुदेव की भाषा उर्दू थी जिसमें फ़ारसी तथा अंग्रेजी के प्रचलित शब्द बीच-बीच में आ जाते थे जिनका रूपान्तर कोष्ठक में लिख दिया गया है.

" सन चौदह (१९१४ ई.) का बाक़ा (घटना) है कि मैं नाइन्थ (नौवीं) क्लास में पढ़ा करता था. मेरे वालिद बुज़ुर्गवार (पूज्य पिता जी) ने एक चैक मुझे दिया और कहा कि इसे ट्रेज़री (सरकारी ख़ज़ाने)से कैश करा लाओ (भुना लाओ). मैं उस चेक को लेकर दफ्तर गया . हैड क्लर्क (बड़े बाबू) ने फ़रमाया (कहा) कि वो फलाने (अमुक) बाबूजी बैठे हैं उनको दे दो. मैं उनके पास गया. चैक पेश किया. आपने मेरी तरफ देखा तो एक बिजली सी चमक गयी जिस्म (शरीर) के अंदर कपकपी पैदा हो गयी जैसे कि एक इलेक्ट्रोड (electrode) के पकड़ने से बिजली पास (संचालित) हो जाती है. मैनें आँखें नीची कर लीं. समझता नहीं था कि क्या राज़ (भेद) है. चुप होकर ख़ामोशी से एक तरफ को हो गया. जब रुपया लेकर पास हो रहा था (जा रहा था) treasury (ख़ज़ाने) से, तो फिर मैनें उन्हीं साहब को देखा और उन्होंने भी (मेरी ओर) देखा ओर फिर एक किस्म (प्रकार) की बिजली सी पैदा हो गयी. तबियत यह चाहती थी कि आपके क़दमों (श्री चरणों) से जाकर चिपट जाऊं. मैं वहां से चल कर आपने घर वापस आ गया."

" बोर्डिंग हाउस (छात्रावास) में रहता ठगा. रात को खाव्व (स्वप्न) देखा कि एक बुज़ुर्ग (संत) हैं वे कहते हैं कि किस काम के लिए आया था ओर क्या करने लगा. ओर ज्यों ही मैं आपके क़दम (चरण) छूना चाहता हूँ तो आप ठोकरें मारते हैं. ठोकर देते हैं ओर कहते हैं कि हम दुनियां के कुत्तों से पाँव नहीं छुआते. मैं रात भर परेशान रहा. क्या किस्सा है ? सुबह को, एक मुंशी साहब थे, वे आपके पास जाया करते थे, मैं भी सिर्फ एक तफ़रीह के तौर पर, आपकी खिदमत (सेवा) में गया. वहां जाकर क्या देखता हूँ कि वे ही क्लर्क साहब जी ट्रेज़री (ख़ज़ाने) के अंदर थे, वहां बैठे हैं . मैं भी बैठ गया . लोगों से बात-चीत करने के बाद आपने फ़रमाया - " कहो श्रीकृष्ण, तुम किस तरह से आये?"

मैनें अर्ज़ की (निवेदन किया) कि रात को ख्व्वाब देखा है, उसकी वजह से परेशान हूँ. मैनें सुना है कि आप ख्व्वाब की ताबीर (स्वप्न का आशय) फ़रमाते (बताते) हैं इस वास्ते हाज़िर हुआ हूँ. आपने ख्व्वाब को सुना. फरमाने लगे - " अज़ीज़ (प्यारे) यह ख्व्वाब नहीं है , ये वाक़ा (सत्य) है. तुम मेरी पुरानी आत्मा हो. तुम्हारी तालाश (खोज) में मैं मुद्द्त से (बहुत दिनों से) था. जब ट्रेज़री (ख़ज़ाने) में तुमको देखा तो पहिचान लिया. मैं बराबर बुला रहा था लेकिन तुम नहीं आते थे. रात को फ़कीर की शक्ल में मैं ही था. ख्व्वाब की ताबीर (आशय) ये है कि तुम मेरे हो, मैं तुम्हारा हूँ. तुम इस दरवाज़े से अब नहीं जा सकते. "

" मैं आप्पकी ख़िदमत में जाता रहा . मुख्तलिफ (विभिन्न) हालतें (आध्यात्मिक अनुभव) गुज़रती रहीं "

(२)

आध्यात्म विद्या और आचार्य पदवी

पूज्य लाला जी और गुरुदेव के प्रथम मिलन का संक्षिप्त विवरण पहले आ चुका है. दूसरी बार जब आप लाला जी महाराज के घर अपने स्वप्न का आशय जानने के लिए उनके पास गए हैं उसका भी विवरण ऊपर आ चुका है. उसके बाद गुरुदेव लाला जी की सेवा में नित्य जाने लगे. दोनों आत्माओं का पूर्व सम्बन्ध और प्रेम तो था ही किन्तु मनुष्य चोले में आकर वह निखार पाने और विस्तृत होने लगा. दोनों की परस्पर घनिष्टता और प्रेम इतना बढ़ गया कि गुरुदेव लाला जी को देखे बिना एक दिन भी नहीं रह सकते थे और पूज्य लाला जी ने भी गुरुदेव को ऐसा प्रेम दिया जैसा उन्हें अपने घर के किसी व्यक्ति से नहीं मिला.

गुरुदेव कहा करते थे कि जब मैं लाला जी की सेवा में गया तो मुझे मज़हब (धर्म) के नाम से चिढ़ थी मगर मुझे उनकी (लाला जी की) शक्ल अच्छी लगती थी. मेरे घर के लोग इस बात को पसंद नहीं करते थे और मुझसे नाराज़ रहते थे. प्रेम का माद्दा (भाव) मुझमें शुरू ही से था और मैं सबसे प्रेम करता था. मैं यह समझता ही नहीं था कि मैं क्यों प्रेम करता हूँ. प्रेम के माद्दे की वजह से मैं कोई कोई काम ऐसे कर जाता था जो समाज के क़ायदों के खिलाफ होते थे लेकिन मैं उसे नहीं समझता था.

बात स्पष्ट कह देना गुरुदेव की आदत थी. इस कारण बहुधा उनसे घर के लोग असंतुष्ट रहते थे और गुरुदेव को अधिक प्यार नहीं देते थे. किन्तु पूज्य लाला जी महाराज ही उन्हें ऐसे पहले व्यक्ति मिले जिन्होंने उन्हें सच्चा प्यार दिया और वह प्यार सदा क़ायम रहा.

लाला जी की मुखाकृति बड़ी आकर्षक थी और गुरुदेव को उनके दर्शन ही बहुत प्रिय थे. वे निनिर्मेष दृष्टि से लाला जी के मुख को निहारा करते थे और इसी में उनको सरूर और आनंद आता रहता था. गुरुदेव कहा करते थे कि परमार्थ के मामलों में, मत-मतान्तर की बातों में, उनकी रूचि नहीं थी. जो लोग धार्मिक वार्तालाप या तर्क-वितर्क करते थे वह उन्हें अच्छा नहीं लगता था. उनकी इच्छा यही रहती थी कि लोग शांत बैठे रहें, लाला जी को देखते रहें और ह्रदय से उस प्रेम का आनंद लेते रहें जो लाला जी महाराज की संगति में हर समय प्रवाहित होता रहता था. यही गुरुदेव का मज़हब था और यही उनका परमार्थ था. प्रारम्भ में अपने गुरुदेव की मुखाकृति का दर्शन करना और संगीत सुनना, जिसको वे 'बेजोड़' कहा करते थे, गुरुदेव के यही दो अभ्यास थे. इसमें उनको बहुत शांति और आनंद का अनुभव होता था क्योकि इससे पहले किसी की संगति में ऐसा अनुभव करना तो दूर उनके विचार में आने की बात तक न थी.

एक दिन की बात है कि गुरुदेव ने अन्य लोगों की देखा-देखी यह सोचा कि मैं भी कुछ अभ्यास लाला जी से सीखूँ. इसी विचार से उन्होंने लाला जी महाराज से निवेदन किया कि वे उन्हें भी कुछ अभ्यास बता दें. लाला जी महाराज ने कहा कि तुमको साधन करने की कोई आवश्यकता नहीं है, मैं ये सब साधन तुम्हारे लिए ही तो कर रहा हूँ. किन्तु यह बात गुरुदेव के मन में बैठी नहीं. उन्होंने कुछ दिनों बाद अपना निवेदन दोहराया तो लाला जी ने उन्हें अपने सामने बैठा कर कहा कि आँखें बंद करलो और अपने विचारों को देखते चलो. आँखें बंद करते ही गुरुदेव को ऐसा अनुभव हुआ कि वे शरीर के बंधन से बिलकुल मुक्त हो गए हैं, आकाश में उड़ते हुए ऊपर जा रहे हैं. बड़े ही आनंद का अनुभव हो रहा था, अजीब मस्ती थी, तन-बदन का होश नहीं था. उन्हें यह भी ज्ञात नहीं रहा कि वे ऐसी दशा में कितनी देर बैठे रहे. कुछ देर बाद लाला जी ने कहा कि आँखें खोल दो. आँखें खोलते ही गुरुदेव को होश आ गया. उन्हें ऐसा आभास हुआ कि आकाश से धरती पर आ गिरे हों. उनसे उस समय न तो मुख से कुछ बोला जाता था, न कानों से कुछ सुनाई देता था और न ही आँखों से ठीक दिखाई देता था. गुरुदेव ने संकेत से लाला जी को बतलाया कि मुझसे बोला नहीं जाता. थोड़ी देर बाद वह हालत ठीक हो गयी और फिर गुरुदेव ने अपना अनुभव लाला जी महाराज से निवेदन कर दिया. उन्होंने कृपा करके कहा कि यह हालत अच्छी है, मुबारक़ हो.

प्रतिदिन लाला जी गुरुदेव को अपने साथ बैठा कर अभ्यास कराते थे. एक दिन पूछने पर निवेदन किया कि ध्यान में तुम्हें क्या मालूम होता है तो गुरुदेव ने उत्तर दिया कि ह्रदय के स्थान पर 'खट-खट' की ध्वनि सुनाई देती है. लाला जी ने कहा कि इस ध्वनि को 'ॐ ' शब्द का ख्याल करो और बराबर सुनते रहो. एक क्षण भी इसकी याद से खाली न जाय. इस शब्द का अभ्यास गुरुदेव कुछ काल तक करते रहे जिसका फल यह हुआ कि उनके शरीर में, रोम -रोम से 'ॐ' की अनहद ध्वनि सुनाई देने लगी. लाला जी ने कहा कि यह अनहद नाद 'सुल्तान-अज़कार ' (जपों में सर्वश्रेष्ठ) है. इसके पश्चात गुरुदेव में ईश्वर प्रेम दिनों-दिन बढ़ता गया और प्रत्यत्क्ष व अप्रत्यक्ष रूप से आध्यात्म विद्या उनमें उतरती रही. एक दिन की बात है कि पूज्य लाला जी साहब किसी व्यक्ति को कुछ समझा रहे थे. गुरुदेव उनके पीछे बैठे हुए थे, प्रेमावेश हो रहा

था, नेत्रों से अश्रु बिंदु टपक रहे थे और आनंद के सागर में गोते लगा रहे थे, एक अजीब हालत थी. पूज्य लाला जी महाराज ने पीछे मुड़कर देखा और गुरुदेव से कहा - "यही अव्वल (आदि) और यही आख़िर (अंत) है." इसके पश्चात लाला जी ने गुरुदेव से आध्यात्मिक विद्या की शिक्षा के बारे में कुछ नहीं कहा.

एक दिन साधारण वार्तालाप में लाला जी ने गुरुदेव से कहा कि मैं तुम्हें अज्ञात रूप से ब्रह्म-विद्या प्रदान करता रहता हूँ, क्या तुमने कभी कुछ अनुभव किया है? गुरुदेव ने निवेदन किया कि सोते में या संध्या करते समय मैं यह देखा करता हूँ कि आप कुछ कह रहे हैं और मैं कुछ सुन रहा हूँ. लेकिन आप क्या कह रहे हैं, यह याद नहीं रहता. लाला जी महाराज ने कहा कि यही ब्रह्मविद्या की शिक्षा है, जो मैंने तुम्हें दी है. यदि तुम परिश्रम करोगे तो वह खुलेगी जिससे औरों को भी लाभ होगा. यदि परिश्रम नहीं करोगे तो वह दबी पड़ी रहेगी, उभरेगी नहीं, लेकिन ब्रह्मविद्या तुम तक पहुँच गयी.

सन १९३० की घटना है कि गुरुदेव पूज्य लाला जी महाराज के साथ दिल्ली में एक सराय में ठहरे हुए थे. रात को गुरुदेव ने स्वप्न देखा कि प्रकाश का एक अथाह सागर है, जिसमें नूर ही नूर है, प्रकाश ही प्रकाश है, किनारे का कहीं पता नहीं लगता. वे उसमें डुबकियां लगा रहे हैं और एक अद्‌भुद आनंद का अनुभव कर रहे हैं. प्रातःकाल उठने पर गुरुदेव ने यह स्वप्न लाला जी महाराज को सुनाया. उन्होंने शायद यह कहा कि यह ब्रह्माण्ड का दृश्य था, किन्तु गुरुदेव को यह घटना सुनाते समय यह याद नहीं रहा कि लाला जी ने यही कहा था या कुछ और.

इसके कुछ दिनों बाद गुरुदेव ने एक दृश्य खुली आँखों देखा. एक प्रकाश का समुद्र है जिसकी और वे खिंचे जा रहे हैं और वह समुद्र उन्हें अपने भीतर समेट लेना चाहता है. उन्हें बड़े आनंद और प्रेम का आभास हो रहा था, ऐसा लग रहा था कि उन्हें अब तक जो प्रेम अपने गुरुदेव (लाला जी) से था उससे सहस्त्रों गुना प्रेम उस प्रकाश से था और जो आनंद लाला जी के पास बैठने से होता था उससे हज़ारों गुना अब हो रहा था. उन्हें ऐसा लगता था मानों यह प्रकाश ही उनका असली प्रियतम है और पूज्य लाला जी से प्रेम उन्होंने इसी को प्राप्त करने के लिए किया था. उस समय उनकी केवल एक ही इच्छा थी कि शरीर टूट जाय और उनकी आत्मा उस प्रकाश में समा जाय. पूज्य लाला जी ने पुछा- "क्या देख रहे हो ?" गुरुदेव ने अपनी हालत निवेदन कर दी. लाला जी ने कहा कि जो कुछ तुमने देखा वह सत्य है और जो तुम्हारे विचार में आया वह भी सत्य है. यही तुम्हारा असल है और यही तुम्हारा असली प्रियतम है. तुमको चाहिए कि अपने आपको इसमें लय करदो. अगर मैं इस हालत को क़ायम रखूंगा तो तुम्हारा शरीर इसे सहन नहीं कर सकेगा और मृत्यु हो जायगी. गुरुदेव ने इस घटना का विवरण देते हुए कहा था कि उस समय उन्हें यही आश्चर्य था कि जब फ़क़ीरों को इस प्रकार के दर्शन हर समय होते रहते हैं तो वे जीवित कैसे रहते हैं?

यद्यपि गुरुदेव के ऊपर पूज्य लाला जी महाराज की महान कृपा थी और गुप्त तथा प्रत्यक्ष रूप से उन्होंने उन्हें ब्रह्मविद्या में पारंगत किया परन्तु पूज्य लाला जी महाराज के महानिर्वाण के पश्चात गुरुदेव ने अथक परिश्रम और साधना करके, अपने गुरुदेव के आदेश को ब्रह्मवाक्य समझ कर जो शिक्षा उन्हें गुप्त रूप से मिली थी उसको प्रकाशित होने दिया.

उनके जीवन में ब्रह्मविद्या ऐसी खिल उठी कि जिसका कुछ वर्णन नहीं किया जा सकता. आगे जो घटनाएं और गुरुदेव के प्रवचनों का सार दिया गया है उससे यह बात प्रत्यक्ष हो जायगी कि गुरुदेव ने ब्रह्मविद्या की कितनी उच्च कोटि की अवस्था को प्राप्त किया था.

आचार्य पदवी

सन १९१५ में पूज्य लाला जी महाराज ने गुरुदेव को आधात्मिक विद्या की शिक्षा का काम सौंप दिया. उसी समय वे सब इज़ाज़तें (आचार्य पदवियाँ) जो उन्हें विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों से प्राप्त थीं, गुरुदेव को प्रदान कर दीं. सन १९३१ के आरम्भ में सर्वोच्च पदवी (इजाज़त ताआम्मा - सम्पूर्ण आचार्य पदवी) देकर यह आज्ञा दी कि मेरा काम करो और मेरे मिशन को भूले -भटकों और ज़रूरतमंदों (इच्छुक लोगों) तक पहुंचाओ. यदि तुमने मेरे काम में कोताही (ढील) की तो परलोक में दामनगीर होऊंगा (जबाब देना होगा).

बहुधा जब लाला जी महाराज गुरुदेव से अत्यन्त प्रसन्न होते थे तो कहा करते थे कि मैं तुम्हें लोक और परलोक की सब चीज़ें दे सकता हूँ, जो चाहो सो माँग लो; किन्तु गुरुदेव ने सिवाय गुरुप्रेम के और कुछ नहीं माँगा. पूज्य लाला जी महाराज ने उन्हें आदेश दिया कि सदा अपने भाइयों की शिक्षा का ध्यान रखना. अगर तुमने मेरे काम का विस्तार किया तो मैं तुम्हें दीन और दुनियाँ (लोक और परलोक) दोनों दूंगा. इस आदेश का पालन गुरुदेव ने आजीवन किया और पूज्य लाला जी के चरण-चिन्हों पर चलकर उनका दिव्य सन्देश भूले-भटकों और परमार्थ के जिज्ञासुओं तक पहुँचाया. इसके लिए उन्होंने आजीवन कठोर परिश्रम किया, अस्वस्थ होते हुए भी इस सेवा से पीछे नहीं हटे. सदा हाथ-पाँव से, रूपये-पैसे से, दवा-दारू से और अविरल प्रेम-दान से दूसरों की सेवा की. अन्त समय तक उन्होंने ब्रह्मविद्या का प्रचार किया और न मालूम कितने भूले-भटकों को सन्मार्ग पर लगाया. आपने पूज्य लाला जी के मिशन का नाम रामाश्रम सत्संग रखा और सन १९६४ में इसका पंजीकरण कराकर इसकी विधिवत स्थापना की. इसकी शाखाएं भारत के विभिन्न नगरों में हैं. अपना सम्पूर्ण मकान (तत्कालीन) नं. २७, २७ ए व २८ जो मौहल्ला बारहदरी, कायस्थ-वाड़ा, सिकन्द्राबाद (उ.प्र.) में स्थित है, रामाश्रम सत्संग (जो एक पंजीकृत संस्था है) को दान कर दिया और दान-पत्र दि. ११-१0-१९६५ को रजिस्ट्री कराकर उस दान को क़ानूनी तौर पर पक्का कर दिया.

जिन लोगों को भी उनके श्री-चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उन्हें भली प्रकार मालूम है कि ब्रह्मविद्या के गुप्त रहस्यों की विवेचना सरल से सरल भाषा में करने की आप में अभूतपूर्व क्षमता थी. आध्यात्म विद्या की उलझी हुई गुथ्थियों को वे ऐसी सरलता से समझाते थे जैसे कोई नंगी आँखों से देख रहा हो. यह सब उनके निजी अनुभव की बातें थीं जो वे दूसरों तक पहुँचाते थे और जिनमें आलोचना की तनिक भी गुंजाइश नहीं थी.

अध्याय ५

छवि

पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज (मेरे गुरुदेव) की मनमोहक छवि का वर्णन करने में मेरे लेखनी असमर्थ है. फिर भी थोड़े से शब्दों में पाठकों के ज्ञान के लिए उनके शरीर, मुखाकृति, पहनावा, चाल ढाल आदि बातों पर कुछ परकाश डालने का प्रयास करता हूँ.

गुरुदेव गौर वर्ण के थे. सुन्दर सुगठित शरीर था, लम्बे क़द के, अनुमानतः पाँच फुट आठ इंच के लगभग अवश्य होंगे. चेहरा गोल कुछ लम्बाई लिए हुए था. माथा चौड़ा था. मुख पर ऊपर वाले होंठ तक मूछें रखते थे, न बहुत छोटी और न बड़ी.

पहनावे में शरद ऋतू को छोड़कर अधिकतर सफ़ेद कपड़े पहनते थे. घर की वेश-भूषा धोती-कुरता या बंद गले की कमीज़ जिसमें कॉलर नहीं होता था, केवल एक पट्टी होती थी , पूरी बाँहों की पहनते थे. कभी-कभी कुर्ते या कमीज के ऊपर एक साधारण बंडी या जाकट दो जेबों वाली पहिनते थे. बारीक किनारीदार मुलायम कपड़े की धोती पहनते थे जिसके नीचे घुटनों से कुछ ऊपर तक का जांगिया होता था.

जब आप दवाखाने या किसी मरीज़ को देखने जाते थे तो बंद गले का सफ़ेद कोट और सफेद चौड़ी मोरी की पेन्ट पहनते थे. पजामा कम ही पहनते थे. जब कभी बाहर जाते थे तो प्रारम्भिक दिनों में इसी वेश भूषा में जाते थे परन्तु बाद में वे साधारण कपड़ों में जैसा कि ऊपर लिखा है, जाते थे.

मुझे याद नहीं कि मैनें उनके जीवन में कभी उन्हें चमड़े का जूता पहने देखा हो. कपड़े का सफेद जूता किरमिच का (जिसे फ्लीट फुट कहते हैं) पहनते थे.

सिर पर सदा टोपी पहनते थे जिसका मिलान कुछ-कुछ गाँधी टोपी से कर सकते हैं. टोपी किसी हल्के रंग की होती थी और कभी सफेद होती थी. उसकी चौड़ाई लगभग तीन या सवा तीन इंच होगी. कभी नापी तो नहीं, यह मेरा अनुमान है.

बायें हाथ की तीसरी ऊँगली में सोने की एक साधारण बिना नग की, अंगूठी पहनते थे. वह अंगूठी उनके शरीर छोड़ने से पहले कहीं हाथ धोते में निकल गयी और खो गयी. तब उन्होंने कहा था -" कि यह भी माया का एक रूप था.

हाथ धोने में कहीं गिर गयी या क्या हुआ, चलो अच्छा हुआ." कहने का तात्पर्य यह है कि शरीर पर कोई आभूषण नाम की कोई वस्तु उनकी वृद्धावस्था में या अंत समय तक नहीं देखी गयी.

किसी समय में उनकी नाक के पास बायें गाल पर कोई फोड़ा हुआ होगा जिसमें चीरा लगा होगा. उसका चिन्ह उनके श्रीमुख पर था जिसका आकार एक तिहाई सेंटीमीटर का रेड क्रॉस जैसी आकृति का था.

अपने बायें हाथ की कलाई में समय देखने के लिए घड़ी पहिनते थे जो बहुत क़ीमती नहीं होती थी. जब सन १९६८ में वे अपने जन्म-स्थान वाले घर का जीर्णोद्धार करा रहे थे तो ऊपर काम चल रहा था. छत की मरम्मत हो रही थी. ऊपर से एक ईंट का टुकड़ा गिरा और कलाई पर बंधी घड़ी पर ज़ोर से जा टकराया. चोट लगने से तो बच गयी किंतु घडी टूट गयी. मुझसे कहने लगे -" बेटा, हमारी घड़ी ख़राब हो गयी है, इसे ठीक कराते लाना. " मैंने ग़ाज़ियाबाद आकर वह घडी मरम्मत के लिए दे दी किन्तु यह सोचकर किआपके पास समय देखने के लिए कोई घड़ी नहीं है, एक नई घड़ी लाकर उन्हें दे दी. साधारण घड़ी थी क्योकि मैं जानता था कि क़ीमती चीज़ें वे नहीं पहनते थे, न ही उनकी ऐसी आदत थे और न ही वे पसंद करते थे. जब घड़ी ठीक हो रही थी उस बीच उनकी सेवा में जाने का अवसर प्राप्त हुआ. आपने कहा-' हमें तो बेटे तुम वही घड़ी ठीक करा कर लादो, हमें वही अच्छी लगती है. " नई घड़ी आपने किसी पौत्र को दे दी और वही घड़ी जिसकी मरम्मत होकर आ गयी थी, पहिन ली. सन १९६९ के दिसंबर माह में आप अधिक रोग-गृस्त हो गए. कहीं जाते आते नहीं थे. अतः आपने वह घड़ी उतार कर कहीं रख दी. बीमारी की हालत में अपने आपको संसार से और सब लोगों से detach(अंदर से अलग) किये रहते थे और सदा परमात्मा के ध्यान में रहते थे. उनसे मिलने की मनाही इसलिए कर दी थी कि उन्हें ध्यान में बाधा न हो. इस विषय में थोड़ा सा आगे जाकर भी लिखा गया है.

१८ मई सन १९७० को आपने पार्थिव शरीर छोड़ दिया. उनके एक पौत्र की कृपा से उनकी वह घड़ी जो मरम्मत हो चुकी थी मुझे प्राप्त हो गयी और बतौर यादगार मेरे पास अभी सुरक्षित है.

महानिर्वाण के कुछ वर्ष पूर्व आपने डॉक्टरी के काम से संन्यास ले लिया था. सारा समय अपने गुरुदेव के मिशन को पूरा करने में तथा सत्संगिओं की सेवा में लगते थे. उस समय बेषभूषा में कुछ परिवर्तन आया था. सिर के बाल उन्होंने कभी बड़े नहीं रखे, आधा इंच से बड़े नहीं होते थे. कभी-कभी कोई सेवक उनके सिर की मालिश कर देता था क्योकि सेवा कार्य करते -करते दिमाग़ पर बहुत ज़ोर पड़ता था और बहुधा उनके सिर में दर्द हो जाता था. जिन सेवकों को यह बात मालूम थी वे आपके सिर में तेल मालिश करने की सेवा यदा-कदा कर दिया करते थे.

कुछ समय बाद उन्होंने दाढ़ी भी रख ली थी. कुछ दिनों तो उसका आकार छोटा ही रहा, लगभग दो इंच लम्बी रही होगी, बाद में उन्होंने उसके आकार को बढ़ने दिया. वह बहुत ही सुन्दर लगती थी. बाल सब सफ़ेद, वस्त्र सब सफ़ेद और अन्दर-बाहर सब साफ़ शफ़्फ़ाक़ था, बिलकुल निर्मल, दूध से भी अधिक निर्मल, आकाश और गंगा से भी अधिक निर्मल.

उनकी आन्तरिक सुंदरता उनके बाहर ऐसी चमकती थी कि कोई पारखी ही पहचान सकता था. एक बार की घटना है कि उनके एक कनिष्ट भाई की पुत्री का विवाह दिल्ली में करोल बाग़ स्थित एक धर्मशाला में होना निश्चय हुआ था. कन्या पक्ष वहीं एकत्रित हुए थे. गर्मी के दिन और संध्या का समय था. लगभग साढ़े छै बजे होंगे. सेवक भी संयोग से वहीं मौजूद था. गुरुदेव सफ़ेद कुर्ता, सफ़ेद धोती, सफ़ेद टोपी, सफेद जूते पहने, अपनी छड़ी पर थोड़ा सा टिके हुए धर्मशाला के सामने खड़े थे. मुख पर सफ़ेद दाढ़ी शोभायमान थी. कुछ देख रहे थे. क्या देख रहे थे यह तो मालूम नहीं, शायद अन्तर में भगवान के दर्शन कर रहे हों क्योकि बाहर तो देखने को कोई वस्तु थी नहीं. केवल ट्रैफिक (traffic) चल रहा था. उस समय एक अधेड़ आयु के सज्जन उधर होकर जा रहे थे. वे गुरुदेव की छवि देख कर वहीं ठिठक कर खड़े हो गए और एकटक होकर उनकी ओर निहारने लगे. अनायास ही उनके मुंह से निकला- " वाह, क्या हुस्न पाया है ."

ऐसी थी गुरुदेव की छवि. जिन्होंने उनको इन स्थूल आँखों से देखा है वे ही जानते हैं कि उनकी छवि कैसी आकर्षक ओर मनमोहक थी. उनसे आँखें नहीं मिलाई जा सकती थीं. चेहरे पर जलाल ओर तेज प्रकट रहता था.

मैनें ओर मेरे अन्य सत्संगी भाई-बहिनों ने, चाहे वे बैठे हों, लेटे हों, या सो रहे हों, उन्हें नंगे सिर कभी नहीं देखा. यदि सोते में टोपी अपने आप उतर जाये तो अलग बात है किन्तु वे सदा टोपी धारण किये रहते थे. आप पूछेंगे कि ऐसी क्यों करते थे. इसका उत्तर यह है कि वे चौबीसों घंटों में एक पल भी परमात्मा की हुज़ूरी से ग़ाफ़िल नहीं होते थे. सदा उसी के ध्यान में रहते थे. परमात्मा के दरबार में ओर नंगे सिर ? यह ऐसे भक्त के लिए कैसे संभव हो सकता है? यहां इस देश में अंग्रेज़ों के ज़माने में अदालतें थीं. मज़ाल है कि नंगे सिर कोई अदालत में घुस तो जाये. या तो पगड़ी बांधे होगा या सिर पर टोपी पहने होगा. जब मनुष्य-मात्र की अदालत को इतनी उच्चता दी गयी है कि नंगे सिर उसमें किसी का प्रवेश नहीं हो सकता तो क्या परमात्मा का दरबार इससे भी गया बीता है ? भक्तों के लिए तो उसमें हुज़ूरी ही हुज़ूरी है.

परमसंत डॉ. श्रीकृष्णलाल जी महाराज

सन् १९५०

अध्याय ६

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज का प्रारम्भिक जीवन

जैसा कि पहले आ चुका है, गुरुदेव के पिताजी श्री भगवत दयाल जी भटनागर, फतेहगढ़ में ओवरसियर पी. डब्लू, डी. के पद पर तैनात थे. गुरुदेव की स्कूल लीविंग तक की पढ़ाई गवर्नमेंट हाई स्कूल, फतेहगढ़ में हुई. उर्दू के साथ-साथ आपके पास एक विशेष विषय फ़ारसी भी था, किन्तु उसे छोड़कर आपने साइंस ले ली. पढ़ाई के कारण ही कुछ दिनों बोर्डिंग हाउस में भी रहे. लड़कपन में खेलकूद का बहुत शौक था, जैसे हॉकी, फुटबॉल, क्रिकेट, कबड्डी इत्यादि. साइंस की प्रयोगात्मक परीक्षा से एक दिन पहले क्रिकेट खेलते समय आपके पाँव में चोट आ गयी . घर पर आये तो पिता जी बहुत नाराज़ हुए कि इम्तहानों के दिनों में भी खेल बंद नहीं होता. वहाँ से परेशान होकर आप पूज्य लाला जी महाराज के पास गए तो पता चला कि वह कानपुर गए हुए हैं. उस समय उनके मन में बहुत दुःख हुआ. बोर्डिंग हाउस आये जहां वह रहते थे. गर्म पानी से वह अपनी चोट को सेकने लगे. उसी समय बोर्डिंग हाउस के सुपरिन्टेन्डेन्ट महोदय आ गए और आप पर क्रोधित होने लगे कि स्टूल क्यों ख़राब कर रहे हो. गुरुदेव अपनी विवशता और दर्द के कारण रोने लगे और लाला जी महाराज को याद करने लगे. थोड़ी देर में कष्ट कम हो गया और गहरी नींद आ गयी. प्रातःकाल उठने पर देखा तो दर्द बिलकुल बंद था और चोट बहुत अच्छी थी. लाला जी महाराज तो-तीन दिन के बाद कानपुर से फतेहगढ़ वापस आ गए और जब गुरुदेव उनकी सेवा में गए तो लाला जी महाराज ने उनसे पूछा कि तुम उस दिन इतने परेशान क्यों थे, तुम बराबर हमारे सामने खड़े थे और हटते नहीं थे . जब हमने तुम्हारी तकलीफ को (सल्ब कर लिया), खेंच लिया तब हम दूसरा काम कर सके.

गुरुदेव ने लाला जी महाराज के उनके प्रति प्रेम और स्नेह के विषय में एक जगह लिखा है कि "अगर इस दुनियाँ में कोई मेरा हमदर्द था या परम-हितेषी था तो वह एक ही पाक पवित्र हस्ती थी, वह थे मेरे गुरुदेव. दुनियाँ ने मुझे ठुकराया, जिसको भी मैनें प्यार किया उसी ने मुझे दुत्कारा. अगर मेरे दुःख दर्द की कोई सुनने वाला था तो वे थे मेरे गुरुदेव. उनमें वाक़ई (सचमुच) पवित्र और सच्ची मुहब्बत थी. उनके पास बैठकर प्रेम ही प्रेम लहलहाता मालूम होता था. अगर कोई मुहब्बत के लिए टूटने वाला दिल देखा, अगर दुःख-दर्द के लिए पिघलने वाला दिल देखा तो वह लाला जी के पास देखा."

सन १९१६ में गुरुदेव का विवाह हो गया. आपकी धर्मपत्नी श्रीमती चंदा देवी जी अत्यन्त सुशील, पतिव्रता और धार्मिक प्रवृत्ति की थीं. जिन सज्जनों को उनके दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनका कहना है कि वे अत्यन्त शांत प्रकृति की महिला थीं, बहुत कम बोलती थीं और साक्षात लक्ष्मी थीं.

मैट्रिक पास करने के बाद गुरुदेव ने बिसातखाने ((general merchant) की एक छोटी सी दुकान की किन्तु उसमें मन न लगा. फिर गवर्नमेंट स्कूल, फतेहगढ़, में ही लिपिक के पद पर रहे, परन्तु वहां भी जी नहीं लगा. सन १९१९ में पूज्य लाला जी महाराज के आदेश पर आप डॉक्टरी पढ़ने के लिए आगरा चले गए.

जब गुरुदेव मैडिकल कॉलेज में पढ़ते थे वह समय ऐसा था जब कि देश में अंग्रेज़ सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन चल रहा था. अधिकतर युवक इस आन्दोलन में भाग ले रहे थे. उस समय गुरुदेव डॉक्टरी की चौथी साल में पढ़ते थे. आप भी देश सेवा की भावना से प्रेरित होकर कॉलेज छोड़कर घर वापस आ गए , जिससे देश सेवा कर सकें. घर में सब इस बात से असंतुष्ट थे, कालिज छोड़कर आपने अच्छा नहीं किया. परन्तु पूज्य लाला जी महाराज ने कोई नाराज़गी नहीं दिखाई बल्कि इसे उचित ही बताया. एक दिन लाला जी महाराज ने गुरुदेव से पूछा कि क्या तुम देश सेवा का काम हमारे साथ करोगे या अकेले ? गुरुदेव ने निवेदन किया कि आपके वगैर कैसे काम कर सकूंगा, तो पूज्य लाला जी महाराज ने कहा कि हम भी काम जल्द छोड़ देंगे. दूसरे रोज़ कहने लगे - "अभी हमारा काम छोड़ना ठीक नहीं है, दो महीने बाद छोड़ेंगे. पर जब काम छोड़ेंगे तुम्हें बुला लेंगे." गुरुदेव इसी आशा को लेकर प्रसन्नता से कॉलेज वापस आ गए. परन्तु उनके घर में कुछ ऐसी घटनाएं हुईं कि उनको मैडिकल कॉलेज फिर छोड़ना पड़ा. जब वापिस आये तो सभी कुटुम्बी परेशान थे परन्तु लाला जी महाराज ने कुछ नहीं कहा और यही कहा कि जब घर की यह दशा है तो पढ़ना बेकार है. दो चार दिन के पश्चात् गुरुदेव एक दिन पूज्य लाला जी महाराज के साथ सैर करने जा रहे थे. लाला जी महाराज को परेशान देखकर गुरुदेव ने पूछा कि आप क्यों परेशान हैं? उन्होंने उत्तर दिया कि " हमारे जीवन का कोई विश्वास नहीं कि कब मृत्यु आ जाय. हम यह सोचते हैं कि हमारी मृत्यु के बाद तुम हमारे घर की देखभाल करोगे. अब तुमने कॉलेज छोड़ दिया है, अपने ही घर की देखभाल नहीं कर सकोगे तो हमारे घर की देखभाल क्या करोगे? हमारी परेशानी का कारण यही है." गुरुदेव ने निवेदन किया कि क्या मैं फिर वापिस चला जाऊं और फिर कॉलेज में पढ़ने लगूँ? आपने कहा - " हाँ, हम यही चाहते हैं. " और गुरुदेव फिर कॉलेज चले गए.

मैडिकल कॉलेज से परीक्षा पास करने के बाद गुरुदेव ने कुछ समय तक बलरामपुर अस्पताल लखनऊ में डॉक्टर के पद पर काम किया. एक वर्ष बाद वहां से काम छोड़कर सिकन्द्राबाद आ गए और अपनी निजी प्रैक्टिस प्रारम्भ कर दी. शुरू-शुरू के दिनों में प्रैक्टिस से आय कम होती थी जिससे घर का गुज़ारा मुश्किल से चलता था. वे कहा करते थे कि ऐसा भी समय था कि कभी-कभी एक ही समय भोजन मिलता था, परन्तु बाद में गुरुदेव की कृपा से वे इतने प्रसिद्ध डॉक्टर हुए कि दूर-दूर तक उनकी ख्याति फैल गयी.

गुरुदेव जब सिकन्द्राबाद में डॉक्टरी की प्रैक्टिस करने लगे थे तब से ही आपके मन में देशभक्ति कूट-कूट कर भरी थी. सत्याग्रह आन्दोलन में कई बार ऐसे भी समय आये जब गोली से घायल सत्याग्रहियों को आप अपने औषधालय ले आते

और उनकी मरहम पट्टी करके दूसरे दरवाज़े से उन्हें बाहर निकाल देते थे. पुलिस को अन्दर नहीं घुसने देते थे और जब घायल बाहर निकल जाते तब पुलिस आती तो वहाँ कुछ भी नहीं मिलता था.

दिनचर्या

गुरुदेव बड़े सवेरे सोकर उठ जाते थे. पलंग पर बैठे ही बैठे माला का जाप व भगवान का ध्यान करते रहते. नित्य कर्म से निवृत होने के पश्चात् अपनी दैनिक पूजा और भजन करते. यदि कोई सत्संगी वहां मौज़ूद होते तो उन्हें तव्वजो देते, अभ्यास कराते, सत्संग कराते. उसके बाद कुछ जलपान करके दवाखाने चले जाते. दोपहर को वहां से आकर भोजन करते, फिर कुछ समय विश्राम करते और चार बजे फिर प्रातः-काल की तरह भजन, पूजन और सत्संगियों की सेवा करते. सांयकाल कुछ समय दुकान पर बैठकर या तो टेनिस खेलने चले जाते या वायुसेवन करने चले जाते. रात को फिर भजन पूजा होता और भोजन करके सो जाते.

जब आपने प्रैक्टिस से संन्यास ले लिया तो सारा समय भजन, बंदगी और सत्संग की सेवा में लगाते थे. प्रातःकाल नित्यकर्म से निवृत होकर स्वयं आपने हाथों से चाय बनाते और जो सत्संगी या आगंतुक वहां उपस्थित होते उन्हें प्रेम पूर्वक बुला कर चाय पिलाते. उसके बाद पूजाघर में पूजा और सत्संग होता. यदि कोई भजन पढ़ने वाला सुरीले कंठ का साधक उनके सम्मुख उपस्थित होता तो उससे भजन पढ़वाते थे और सत्संग के पश्चात् थोड़ा प्रसाद लगाकर सबमें वितरित होता था. दिनभर भगवत-चर्चा चलती रहती थी. लोग आते थे, जाते थे, कोई सांसारिक बातें लेकर आता, कोई अभ्यास की बातें लेकर आता किन्तु वे सभी को संतुष्ट करते थे. जो भी उनकी सेवा में गया वह ख़ाली हाथ नहीं लौटा. यदि उसने दुनियां की कोई वस्तु मांगी उसे वह भी मिली और ईश्वर भक्ति मांगी वह तो मिली ही.

अपने अंतिम दिनों में वे अपने घर के बड़े चौक में कुर्सी डाल कर बैठ जाते थे. जब कोई भाई आता था तो बहुत प्रसन्न होकर उसका स्वागत करते और फिर उसकी कुशल-मंगल पूछने के बाद चाय-पानी की सेवा करते थे, उसके ठहरने की व्यवस्था करते थे. और जब जाने लगता तो मैने यह साक्षात् देखा था कि उनके बड़े-बड़े नेत्रों से आंसुओं की बूंदें लुढ़कती थीं और वे कहा करते थे कि जब कोई आता है तो बहुत अच्छा लगता है पर जब कोई जाता है तो अच्छा नहीं लगता, दुःख होता है.

उनके अंतिम दिनों की दिनचर्या ऐसी नहीं थी कि जिसे क्रमबद्ध किया जाय किन्तु सारी दिनचर्या ईश्वर भजन, ध्यान और सेवामय थी. चाहे कोई बीमार हो, चाहे कोई सतसंगी हो, चाहे कोई ज़रूरतमंद हो, सबके लिए वे हर समय सेवा करने को तैयार रहते थे. दूर-दूर तक जाकर अपने गुरुदेव के मिशन को फैलाते, प्राणी मात्र की सेवा करते, भूले-भटकों को राह पर लगाते, बीमारों को सांत्वना देते और दुखियों का दुःख दूर करते. शरीर रोगी था, कमज़ोर था और जब हम लोग यह कहते थे कि आप इतने अस्वस्थ होते हए भी बाहर जाते हैं और इतनी भाग-दौड़ करते हैं, यह अब कम कर

दीजिये क्योकि अब आपका शरीर इस योग्य नहीं है, तो वे साधारण स्वभाव से कहते थे कि इस शरीर को तो एक दिन जाना ही है, अच्छा है, यह प्राणी-मात्र की सेवा करते हुए ही जाय.

मैनें देखा था कि वे कभी जूते पहनकर भोजन नहीं करते थे. यहां तक कि चाय या फलाहार भी जूते पहनकर नहीं करते थे. सफर में चाहे रेल का हो या बस का हो या अन्य किसी वाहन का, वे जूते पहने-पहने कभी नहीं खाते थे. पहले जूते उतार कर हाथ धोते तब खाते थे. खाते समय परमात्मा के ध्यान में रहते थे .

जिस समय वे कुछ खाते होते, नाश्ता या भोजन. कोई फल या मिठाई, तो आस-पास जो लोग बैठे होते थे, पहले उनमें वितरण करते थे और तब स्वयं लेते थे. वे यह नहीं देखते थे कि यह व्यक्ति परिचित है या नहीं, सेवक है या नहीं. इस बात का उनमें कोई भेद-भाव नहीं था. सब को समान भाव से देखते थे. यदि उस समय कोई भिखारी भी आ जाता था तो उसे भी वह चीज़ दे देते थे.

रात को बहुत कम सोते थे. माला का जप करना उनकी पूजा का एक अंग था. क्या जप करते थे, क्या उच्चारण करते थे, यह तो वे ही जानते होंगे लेकिन माला के जप के साथ-साथ बहुधा उनके होंठ हिलते रहते थे . सोते में भी माला चलती रहती थी. नींद में आपने आप ही छूट जाये तो छूट जाए.

उनकी नींद कभी गहरी नहीं होती थी. हम लोग बहुत चौकन्ने होकर उनके चरणों में सोते थे कि कहीं थोड़ी सी भी आहट से वे जाग न जाएँ. किन्तु बहुधा यह देखा जाता था कि एक झपकी लेने के बाद वे उठकर बैठ जाते थे, साधना करने लग जाते थे. उनके अंतिम दिनों में हम लोगों ने देखा था कि वे हल्के स्वर में पुकारते थे -" अरे भाई, ,अब तो नाराज़गी छोड़ दो, अब तो आ जाओ, आते क्यों नहीं हो?" बात क्या थी? उनके जो प्रेमी आपने संस्कारों वश, अपनी अज्ञानता वश, अपनी अविद्या वश उनसे विमुख हो गए थे और उनकी सेवा में आना बंद कर दिया था, वे उनका आवाहन करते थे. और सचमुच यह देखा गया कि उनके जीवन-काल ही में या उनके निर्वाणोपरांत उन लोगों ने पलटा खाया, रोये, पछताए और बाद में उन्हीं की याद में रहकर अपना रास्ता ठीक चल रहे हैं. सच्चा फ़कीर वही है जो सबको क्षमा कर दे. उसका ह्रदय इतना विशाल हो कि उसमें किसी की बुराई दीखे ही नहीं. जिन्होंने उनके साथ बुराइयाँ कीं, उन्हें लांछन लगाए, उनके साथ दुर्व्यवहार किया, उन्हें अपशब्द कहे, उनके लिए भी वे रात-रात भर बैठ कर दुआ किया करते थे और 'अल्लाह-अल्लाह' 'राम-राम' नामों का उच्चारण किया करते थे. मालूम नहीं उनकी भलाई के लिए क्या-क्या दुआ करते थे?

संध्या के समय सैर को जाना उनका नियम था. सिकंद्राबाद में आपने निवास से जी.टी. रोड पर दिल्ली की दिशा में लगभग दो मील जाना, कुछ देर कुँए पर स्वच्छ स्थान पर बैठना और फिर दो मील वापस आना. उनकी साधारण चाल इतनी तीव्र थी कि हम लोग पीछे-पीछे ऐसे लगते थे जैसे दौड़ रहे हों. जब सैर करके लौटते, विशेषकर ग्रीष्म ऋतु में, तो

जो प्रेमी भाई उनके साथ होते थे उनको बाज़ार में कोई ठंडा पेय पिलाते, कोई मिष्ठान खिलाते थे. खूब ख़ातिर पसंद थे. घर आकर फिर सत्संग कार्य में लग जाते थे.

हम लोगों ने देखा था कि वे आपने शहर में इतने पॉपुलर (लोकप्रिय) थे कि बाज़ार में से गुज़रते समय दोनों और से, जय रामजीकी, आदाब, नमस्ते आदि प्रणाम-सूचक शब्दों की झड़ी लग जाती थी और वे एक हाथ उठाकर एक और से और दूसरा हाथ उठा कर दूसरी और से उन्हें स्वीकारते थे.

सूक्ष्म में, बाल्यकाल से लेकर वृद्धावस्था तक गुरुदेव की यह दिनचर्या थी किन्तु इस दिनचर्या में जो आश्चर्यजनक और कभी न भूलने वाली घटनाएं घटित हुईं उनमें से कुछ आगे आएँगी .

अध्याय ७

खान-पान और स्वभाव

पूज्य गुरुदेव का भोजन बहुत साधारण था. उनकी कुमार अवस्था या यौवन काल में मैने उन्हें देखा ही नहीं था, अतः उस समय के खान-पान का मुझे ज्ञान नहीं है परन्तु इतना अवश्य मालूम है कि तब भी वे सात्विक भोजन करते थे. मांस आदि नहीं खाते थे. धूम्रपान नहीं करते थे. पान खाने की आदत नहीं थी. यदि कोई प्रेमवश उन्हें पेश करता था तो वे खा लेते थे. तम्बाकू वाला पान नहीं खाते थे.

जब मैं पहले बार(लगभग सन १९४०) उनके दर्शन करने सिकन्द्राबाद गया तब दोपहर के भोजन का समय था. एक ही थाली में खाना आया था. मूंग की छिलकेदार दाल, एक या दो सूखी भाजियां और बिना घी वाली फुलकियाँ थीं. दाल में घी पड़ा हुआ था. उन्होंने उसी थाली में मुझे अपने साथ ही भोजन कराया था. मैं उनकी महानता को जनता नहीं था, उनके साथ भोजन करने की मूर्खता करने पर मन में अब ऐसा लगता है कि यह तूने ठीक नहीं किया, बेअदबी की, परन्तु साथ में अपने भाग्य को भी सराहा कि उन्होंने इस अधम को इतना प्रेम दिया. इसके बाद जब कुछ समझ आयी तो जब कभी भी भोजन का समय होता था और मैं वहां बैठा होता था तो वहां से हट जाता था. वे बहुत कम भोजन करते थे.

दूध उन्हें पसंद था. प्रातः नाश्ते में दूध लेते थे. मालईदार दूध उन्हें अच्छा लगता था. कौन-सा दूध मिलावट का है , कौन-सा दूध बर्तन को ढक कर गर्म किया गया है, यह वे बता देते थे और कभी-कभी ऐसे दूध को पीने से मना कर देते थे.

दो समय, प्रातः स्नान के बाद और अपरान्ह चार बजे की पूजा के बाद, हल्का सा नाश्ता (snacks) लेते थे. रात्रि के भोजन में बहुधा रोटी ही होती थीं, पराठे या पूरियां कम. ताज़ी गर्म पूरियां पसंद करते थे. प्याज़-लहसुन से उन्हें रूचि तो नहीं थी परन्तु परहेज़ भी नहीं था. दोनों समय के भोजन के बीच में अक्सर कुछ नहीं खाते थे. हाँ, यदि कोई प्रेमी भक्त उन्हें फल काटकर दे देता था तो वे उसमें से अधिकतर बाँट कर स्वयं थोड़ा सा खा लेते थे.

भोजन के समय यदि कोई व्यक्ति आ जाता था तो उसके लिए भी भोजन का प्रबंध किया जाता था. सन १९५६ से जीवन के अंत तक वे कभी गाज़ियाबाद और कभी सिकन्द्राबाद रहा करते थे. उनका आदेश था कि सायंकाल के भोजन में दो व्यक्तियों के लिए पक्का खाना बना रहे. यदि बाहर का कोई सत्संगी रात्रि को देर से आता था तो उसके काम आजाता था, अन्यथा वह सवेरे हम लोग खा लेते थे.

ख़ातिरपसंद थे. लड़कियों के विवाह में वे स्वयं जाकर देखते थे कि भोजन, मिठाईयां आदि समुचित मात्रा में और स्वादिष्ट बनी हैं या नहीं. वे कहते थे कि बाराती क्या किसी के घर रोज़ आने बैठते हैं, एक-दो दिन के लिए आते हैं, उनकी खूब खातिर करनी चाहिए.

वे कहा करते थे कि हक़ हलाल (नेक कमाई) का भोजन करना चाहिए. यदि किसी सत्संगी के घर का भोजन अशुद्ध कमाई का होता था तो उन्हें तुरंत दस्त लग जाते थे और जब तक उस भोजन का थोड़ा भी अंश पेट में रहता था तब तक वे ठीक नहीं होते थे. वे कहते थे कि ख़राब कमाई का भोजन हमारा जिस्म reject (अस्वीकार) कर देता है. .एक बार कहीं किसी सत्संगी के यहां ठहरे हुए थे. ऊपर का कमरा था परन्तु शौचालय नीचे था. भोजनोपरान्त दस्त होने लगे और अत्यधिक कमज़ोरी हो गयी. जब शौचालय से बाहर आये और ज़ीने पर चढ़ने लगे तो मैं पीछे-पीछे था, देख रहा था कि पाँव डगमगा रहे हैं. ऊपर जाकर मुझसे कहने लगे कि इस वक्त तो दस्तों के कारण हम इतने कमज़ोर हो गए हैं कि ज़ीना चढ़ने की शक्ति नहीं थी, will power (मनोवल) से छत पर चढ़ कर आ पाए हैं. यहां का खाना बहुत ख़राब है.

कहीं जाते थे तो अपना खर्च करके जाते थे. यदि किसी ने टिकिट लेकर गाड़ी में बैठा दिया तो उसे स्वीकार कर लेते थे. रुपये किसी से भेंट में नहीं लेते थे. यदि कोई कुछ दे भी जाता था तो उसे या तो सत्संग के काम (जैसे भवन की मरम्मत आदि) में लगा देते थे या किसी ज़रूरतमंद को किराये, इलाज आदि के लिए दे देते थे.

यदि कोई सत्संगी भाई उनके घर से बिदा होता था तो रास्ते के लिए खाना रख देते थे. जब गुरु-माता जी मौजूद थीं तब का मेरा निजी अनुभव है की वे स्वयं भोजन बना कर साथ रख देती थीं. यदि मैं कहता भी था कि माताजी, खाना रहने दीजिये, ३-४ घंटे का ही तो सफर है, गाडी छूट जाएगी, परन्तु वे आग्रह करके रोक लेती थीं, खाना साथ रख कर ही बिदा करती थीं, और आश्चर्य कि गाड़ी कभी नहीं छूटती (miss होती) थी एक-एक घंटे लेट हो जाती थी पर मिलती ज़रूर थी.

गुरुदेव का कहना था कि सफर भले ही बहुत लम्बा न हो, खाना साथ में रहना चाहिए. इसके दो कारण हैं. एक तो यह कि गाड़ी लेट हो जाय, समय कुसमय हो जाय , तो कहीं और से नहीं खाना पड़ेगा, न जाने कैसा भोजन हो, कैसी कमाई का हो. दूसरी बात यह कि स्वयं को नहीं तो किसी और को रास्ते में ज़रूरत पड़ सकती है.

जब किसी के घर जाते थे तो ख़ाली हाथ नहीं जाते थे, कुछ लेकर जाते थे. वे कहते थे कि इससे परस्पर स्नेह बढ़ता है. यदि किसी के यहां कन्या का विवाह होता था तो, और यदि कहीं लड़के का विवाह होकर बहू आयी होती थी या नवजात शिशु होता था, जन्म दिन होता था या अन्य कोई उत्सव होता था , तो कुछ रुपये देते थे और सिर पर हाथ फेरकर आशीर्वाद भी देते थे. उनका कहना था कि एक मर्यादा होनी चाहिए इस प्रकार के लेन -देन की. - केवल पांच रुपये. इससे अधिक बढ़ाने में संकोच होता है.

वे विनोदी स्वभाव के थे. कभी-कभी ख़ूब हसाते थे और स्वयं भी हँसते थे. बच्चों में वे बच्चों जैसे, वयस्कों में वयस्कों जैसे और बूढ़ों में बूढ़ों जैसे. वे एक ओर पक्के दुनियांदार थे ओर दूसरी ओर एक महान संत.

रात्रि को बड़े पलंग पर लेटते थे. मेरे बच्चे उनकी दोनों ओर लेट जाते थे. कहते " बाबा जी , कहानी सुनाओ " उन्हें खूब कहानियां सुनाते थे और सुनते -सुनते बच्चे सो जाते थे.

बेटियों और बहुओं से वे यह आशा रखते थे कि वे आदर्श गृहणियां बनें . पति के इशारे पर चलें और माता-पिता यानी सास-ससुर की सेवा करें. वे कहते थे कि पति का कहना मानना चाहिए (उन दिनों आजकल जैसी दहेज प्रथा नहीं थी और न हत्यारे पति और सास-ससुर) यदि पति कहे कि कुएं में गिर पड़ो तो गिर जाना चाहिए. उनका मतलब इससे यह था कि घर में harmony (शांति) रहनी चाहिए.

सत्संगियों में आपस में विवाह के पक्ष में थे. उनके जीवन-काल में उन्होंने ऐसे सम्बन्ध स्वयं कराये हैं और वे दम्पति सुख से रह रहे हैं. उनका कहना था कि यदि पति-पत्नी दोनों धार्मिक प्रवृति के हैं तो अच्छा है और यदि दोनों एक ही पंथ के अनुयायी हैं तो जीवन रुपी गाड़ी सुगमता से चलेगी. वे दोनों गाड़ी के दो पहिये हैं, दोनों बराबर से चलेंगे. संसार का व्यवहार भी सुगमता से होगा और ईश्वर की उपासना भी ठीक ढंग से हो सकेगी.

आधुनिक चमक-धमक, शौकीनी, दिखावट, और पाश्चात्य ढंग का रहन-सहन वे सत्संगियों के लिए पसंद नहीं करते थे. स्वयं भी उनके पास modern (आधुनिक) फर्नीचर नहीं था. साधारण चारपाइयाँ रखते थे. साधारण कुर्सियां व चाय के लिए या लिखने-पढ़ने के लिए एक छोटी मेज़ कुर्सी. रेफ्रीजिरेटर नहीं था. गुरुमाता के होते उन्होंने एक रेडियो खरीदा था. वे सन १९५० में निर्वाण को प्राप्त हुईं. उसके बाद उनके दूसरे सुपुत्र उस रेडियो को ले आये थे.

सत्संगियों के साथ प्रेम ही नहीं स्नेह का व्यवहार करते थे. प्रेम तो उनका रूप ही था और वे सबको प्रेम करते थे. परन्तु स्नेह में कुछ अपनापन, कुछ घरेलूपन का भाव होता है. बहनें उनसे भाई साहब कहती थीं और भाई लोग उन्हें चाचा जी. (क्योकि उनके पुत्र-पुत्रियां उन्हें चाचा जी कह कर ही सम्बोधित करते थे.) इसी नाते बच्चे उन्हें बाबा जी या नाना जी कहा करते थे. ग़ाज़ियाबाद में उनके दो सुपुत्र (मंझले श्री राधेकृष्ण जी और कनिष्ठ श्री गोपाल कृष्ण जी) रहते थे. परन्तु वह कहा करते थे कि गाज़ियाबाद में मेरे तीन बेटे रहते हैं. जो कुछ उन दो बहुओं के लिए या उनके बच्चों के लिए बाहर से लाते थे वैसा ही सब कुछ मेरी पत्नी और बच्चों के लिए भी लाते थे . पाठक यह न समझें कि इसमें मैं अपने लिए कहना चाहता हूँ .मेरा यह भाव कदापि नहीं है, मैं तो गुरुदेव का जो वातसल्य सत्संगी परिवार के प्रति रहा है, उसका एक उदहारण मात्र दे रहा हूँ.

उनके लिए भाई लोग उपहार स्वरुप कोई-कोई वस्त्र (जैसे धोती, कुरता . टोपी आदि) ले आते थे और बहिनें ऐसी वस्तुएं जैसे स्वेटर, मोज़े, बैठने की गद्दी बना लातीं थीं. उनकी प्रसन्नता के लिए वे इन वस्तुओं को स्वीकार तो कर लेते थे परन्तु उन्हें बाद में पहन कर बाँट देते थे. वे कहते थे कि किसी से कुछ ले लेने पर उसका कुछ बदला देना पड़ता है और वह बदला अपनी आध्यात्मिक कमाई में से देना पड़ता है.

उन्होंने कभी धन-संचय नहीं किया. सदा ईश्वर के भरोसे रहते थे. पुत्र-पुत्रियों के विवाह में समय पर भगवान बंदोबस्त कर देते थे और ऋणी भी हो जाते थे. धीरे-धीरे उसे उतार देते थे. शादी ब्याहों में तड़क-भड़क और फ़िज़ूल की दिखावट पर खर्च करना उन्हें पसंद नहीं था.

उनका यह मत था कि अपने जीवन काल में अपनी अर्जित संपत्ति में से जिस जिसको (पुत्र -पुत्रियों या अन्य सम्बन्धियों को) जो कुछ देना है वह देना चाहिए. अपने बुढ़ापे के लिए कुछ रखकर शेष सब ईश्वर का ईश्वर को लौटा देना चाहिए. ग़रीबों में, बेसहारों में, अपाहिजों में, बिधवाओं में, अनाथों में ईश्वर का रूप देखो और दान कर दो. पीछे के लिए कुछ मत छोड़ जाओ. अगर किसी बदले की भावना से दान करोगे तो अगले जन्म में दस गुना मिलेगा., वह तुमने ईश्वर की बैंक में जमा कर दिया. और अगर उसका कोई एवज़ नहीं चाहते हो तो मरते वक्त साफ़ जाओगे, उसका कोई संस्कार नहीं बनेगा.

मैंने उन्हें कभी उद्विग्न होते नहीं देखा. शांत और कोमल स्वभाव के थे.

उनके पास एक टूटने वाला दिल था. दूसरों को दुखी देखकर सच्चे दिल से दुखी होते थे जैसे वह उनका अपना दुःख हो, और उस दुःख के निवारण के लिए वे भरसक उपाय करते थे. किसी बीमार की बीमारी में उसका इलाज करते थे. वे स्वयं एक कुशल डाक्टर थे परन्तु फिर भी अन्य डाक्टरों के पास या अस्पतालों में स्वयं ले जाते थे और आवश्यकता पड़ने पर उसका खर्च भी स्वयं करते थे. ऐसे एक नहीं अनगिनती उदाहरण हैं जहां उन्होंने ग़रीबों की, विधवाओं की, बेसहारों की और अपनी शरण में आये व्यक्तियों की अथक परिश्रम से सेवा की है. सत्संगियों को और असहायों को बीमारी में अपने घर लाकर अपने घर रखते थे और इलाज करवाते थे.

किसी की ख़ुशी में वे सच्चे दिल से खुश होते थे. परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उसको सराहते थे और यदि कोई अनुत्तीर्ण होता तो वे उसे साहस बँधाते. वे कहा करते थे कि परीक्षा देते समय या कोई अन्य सांसारिक कार्य करते समय उसके फलाफल की आशा लेकर मत चलो. अपना काम ईश्वर के ध्यान में करते जाओ. जो होगा वह अच्छा ही होगा. ईश्वर की इच्छा में अपनी इच्छा लय कर दो. राज़ी-ब-रज़ा हो जाओ.

भविष्य में होने वाली बातें यदा-कदा किसी को बता देते थे परन्तु ऐसा करना उनके स्वभाव में नहीं था. यदि भविष्य में किसी का अमंगल होते देखते थे तो उसे संकेत भर कर देते थे. अपने प्रेमीजनों की उन्होंने प्राण रक्षा कई अवसरों पर की है. आगे छपी घटनाओं में कई ऐसी बातों का विवरण दिया गया है.

भीतर कुछ और बाहर कुछ (hypocracy) उन्हें बिलकुल पसंद नहीं था. वे स्वयं अंदर-बाहर से साफ़ थे. जो अंदर था वही उनके मुख पर था और ऐसी ही आशा वे अपने सेवकों से रखते थे. किसी भाई या बहिन को यदि उनसे कुछ कहना होता था तो उसके लिए उन्हें वाया मीडिया (बिचौलिया) पसंद नहीं था. यदि कोई सहानुभूतिवश किसी की बात उन तक लेकर जाता था तो वे कहते थे कि तुम कौन हो ? वह खुद क्यों नहीं आकर कहते ?

Appeasement policy (ठकुर सुहाती) उन्हें नहीं आती थी. बात को स्पष्ट कहते थे. यदि कोई बात कठोर भी हो तो उसे सरलता से कहते थे. लड़के लड़कियों का आपस में आज़ादी से मिलना वे अच्छा नहीं समझते थे. उनका आदेश था कि किसी भी स्त्री के पास अकेले में नहीं बैठना चाहिए. न मालूम माया (शैतान) कब धोखा दे जाये. इसका प्रभाव अभ्यासी पर ऐसा पड़ता है जैसे नन्हे पौधे पर पाले का. अपने मन पर कभी विश्वास मत करो, सदा सावधानी बरतो. बच्चों से प्रेम तो करते थे परन्तु घुलते-मिलते नहीं थे.

शिक्षा में उनका बड़ा प्रोत्साहन रहा है, विशेष कर स्त्रियों तथा लड़कियों के लिए. जिनके पास ट्यूशन करने के लिए धन नहीं होता था उन्हें वे स्वयं पढ़ाते थे. उन्होंने एक कन्या पाठशाला सिकन्द्राबाद में खोली थी जिसके वे आजीवन प्रबंधक रहे. यह स्कूल आज भी ' स्वामी दयाल पुत्री पाठशाला ' के नाम से मौजूद है जहां हाई स्कूल तक की पढ़ाई होती है. एक विधवा सत्संगी बहिन (नैनो देवी) को स्वयं पढ़ा कर उस स्कूल में अध्यापिका लगवा दिया था. अब वे जीवित नहीं हैं. कई सत्संगी भाइयों को पढ़ा कर उनकी सांसारिक उन्नति करा दी.अनेकों सत्संगी परिवार के लड़के उनके घर पर रहकर उनकी देख-रेख, संरक्षण में विद्या प्राप्त करते थे.

चिकित्सा क्षेत्र में वे स्वयं एक नामी गिरामी डाक्टर थे. रोग-निदान का वरदान उन्हें अपने गुरुदेव महात्मा रामचंद्र जी महाराज से प्राप्त था. परन्तु वे कहा करते थे कि एलोपैथिक पद्धति में बहुत से रोग जड़ से नहीं जाते हैं, होम्योपैथिक पद्धति में रोग जड़ से जाते हैं. वे स्वयं अपने दवाखाने में होम्योपैथिक औषधियां रखते थे और उनका प्रयोग खूब करते थे. अपने अनुभव की बहुत सी बातें उन्होंने मुझे बताई थीं और उन्हीं की सुकृपा से मैं डाक्टर बना. मुझे तो कुछ आता जाता नहीं है, उन्होंने ही डाक्टरी मानो मेरे ऊपर stamp कर दी (छाप लगा दी) है.

कन्याओं की आयु विवाह योग्य होते ही उनका विवाह कर देना चाहिए, ऐसा उनका मत था. लड़कियां अधिक उम्र तक क्वाँरी रहें, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता था. उनका कहना था कि लड़के की सीरत (गुणों) को देखना चाहिए, केवल

सूरत को ही नहीं. जिन लड़कियों ने उनके प्रस्तावित लड़कों को सूरत के कारण अस्वीकार कर दिया वे आज भी पछताती हैं . दहेज़ के विरोधी थे. जो ख़ुशी से दे वह ठीक है.

वे कहा करते थे कि किसी से कोई वायदा करते हो तो उसे पूरा करो वरना वायदा करो ही मत. करना भी पड़े तो ईश्वर को बीच में ले आओ ' ईश्वर चाहेगा तो अमुक बात करूंगा'- इस प्रकार कहना चाहिए.

पर-दोष देखने और बुराई करने के विरोधी थे.दूसरों की बुराई करना तो दूर, सुनते भी नहीं थे. एक बार उन्होंने मुझसे गाँधी जी के तीन बंदर मंगवाए थे जिन्हें वे अपने कमरे में रखते थे. बुराई के विषय में वह एक कथा सुनाया करते थे जो कुछ-कुछ इस प्रकार है :-

जब हज़रत मौहम्मद साहब (पैग़म्बर रसूल) सल्ले. के जाने का समय आया तो उन्होंने अपने चारों खलीफाओं (गुरुमुख शिष्यों) को अलग-अलग बुलाकर कहा कि हम अपना यह चोग़ा (वस्त्र) आपमें से किसी एक साहब को देना चाहेंगे. बताइये आप इसका क्या उपयोग करेंगे ? अलग-अलग ख़लीफ़ाओं ने अलग-अलग बातें निवेदन कीं. अंत में हज़रत अबूबक्र सिद्दीक़ी साहब, ख़लीफ़ा अब्बल (सर्व प्रथम गुरुमुख शिष्य) की बारी आयी तो उन्होंने निवेदन किया कि अगर यह चोग़ा मुझे इनायत किया जाय तो तमाम उम्र (आजीवन) मैं ख़ल्क़ ख़ुदा (ईश्वर की श्रष्टि) की ऐबपोशी (दोषों को ढकना) करूंगा जैसे यह चोग़ा जिस्म (शरीर) की परदापोशी करता है.इस बात पर खुश होकर पैग़म्बर साहब ने वह चोग़ा आपको इनायत फ़रमाया (दे दिया)

नौकरों से घर जैसा व्यवहार करते थे. उन्हें पढ़ाते भी थे और उनकी उन्नति के इच्छुक रहते थे. मुझे याद है कि एक ग़रीब घर का लड़का, शिव पूजन, उनके घर नौकर था. वह तीव्र बुद्धि नहीं था. फिर भी स्वयं उसके साथ मेहनत करके उसे पढ़ाया. आज वह कहीं कर्मचारी है और संसार में सुख पूर्वक रह रहा है.

प्राणिमात्र पर दया करना उनका स्वभाव था, चाहे वह मनुष्य हो या अन्य कोई जीवधारी. मकान की मरम्मत कराते समय उन्होंने सब तरफ दीवारों में छज्जे के नीचे सुन्दर-सुन्दर घर चिड़ियों के रहने के लिए बनवा दिए थे.

एक बार रात्रि को वे अपने घर के आंगन में सो रहे थे. बहुधा रात में उठते थे. रात को जब उठे तो उन्होंने श्री जयनारायण गौतम से (जो उनके निकट ही नीचे बिस्तर पर सो रहे थे) कहा कि देखो एक काले रंग का बूढा सा कुत्ता दरवाज़े के बाहर गली में लेटा है. वह बीमार है. यह दूध (जो उनके अपने पीने के लिए पास के स्टूल पर रखा था) उसे पिला आओ. जब गौतम जी दूध लेकर चले तो उनसे कहा -" देखो, ऐसे नहीं पियेगा. उससे कहना कि मैनें भेजा है." गौतम जी दरवाज़ा खोल कर बाहर गए. कुत्ता वहां लेटा था. गौतम जी ने उसे जगाया और वह दूध पीने के लिए उसके सामने रख दिया परन्तु कुत्ते ने नहीं पिया. वह उठकर जाने लगा. गौतम जी ने उसे पुकारा और कहा कि इस तरह नहीं

जाओगे, यह दूध आपके लिए चाचा जी ने भेजा है, इसे पीना ही पड़ेगा. यह सुनकर कुत्ता रुक गया और दूध पीकर कहीं चला गया.

अपनी प्रैक्टिस में सदा अच्छी गुणवत्ता की दवाएं प्रयोग में लाते थे और यही उपदेश अपने उन सेवकों को भी देते थे जो किसी भी पद्धति के चिकित्सक थे. उनका कहना था कि नुख्सा महंगा नहीं होना चाहिए. ग़रीबों को दवा मुफ्त देते थे. दवाख़ाने में प्रयोग की जाने वाली दवाओं पर नाम का लेबिल लगाने का उनका आदेश था.

घर जाने की केवल दो रुपये फीस लेते थे. अपनी बिरादरी का लिहाज़ रखते थे, फीस नहीं लेते थे. जब आपके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. हरिकृष्ण जी डाक्टरी पास कर चुके तो वे दवाख़ाने में आपके पास बैठने लगे. कुछ दिनों बाद आपने डाक्टरी से सन्यास ले लिया और सारा समय ईश्वर भजन तथा अपने गुरुदेव के मिशन की सेवा में लगाने लगे.

एक बार आपने मुझे आर्सेनिक (Arsenic Album) नामक दवा की प्रक्रिया समझाते हुए एक सच्ची घटना सुनाई. उन्हीं की दूर की रिश्तेदारी में कोई बृद्धा हैज़े से बीमार हुई. उसके परिवार में आप ही चिकित्सा करते थे. कई प्रकार की दवाएं दी गयीं किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ. हालत बिगड़ती गयी, बेचैनी, प्यास और कमज़ोरी बहुत थी, रोगणी करबट तक नहीं ले सकती थी. लगता था की अंतिम समय आ गया है. आपको बुला भेजा गया. आपने आकर देखा की रोगणी को चारपाई से उतारकर कर नीचे लिटा रखा था जैसे मृत्यु से पूर्व करते हैं. सांस चल रही थी. अंतदृष्टि से देखा तो रोगणी बहुत बेचैन थी. अंत समय निकट जान पड़ता था. आपके विचार में आया की इस घोर कष्ट से तो इसकी मृत्यु हो जाय वही अच्छा है. आपने आर्सेनिक नामक दवा का इंजेक्शन भरा (आर्सेनिक संखिया होता है जो एक घातक विष है.) और लगाने के लिए तैयार हुए. इंजेक्शन भरते समय उस रोगणी के परिवार वालों ने कहा कि डॉक्टर साहब, यह तो बचेगी नहीं, आप मरते समय यह सुई लगाकर अब और कष्ट न दें तो अच्छा है. आपने उन्हें सांत्वना देकर कहा कि मृत्यु तो दीख रही है परन्तु एक बार और कोशिश कर लेने दीजिये. अंतिम साँस तक आशा नहीं छोड़नी चाहिए, उपाय तो करना ही चाहिए. यह कहकर वह इंजेक्शन लगा दिया. कुछ ही सेकिंडों में बृद्धा सम्भल गयी,होश में आ गयी और कहने लगी कि मुझे धरती पर क्यों डाल रखा है. उसे उठा कर पलंग पर लेटाया गया और वह कुछ समय में स्वस्थ हो गयी. उस रोगणी के समस्त लक्षण होम्योपैथिक पद्धति से आर्सेनिक एल्बम नामक औषधि के थे.

उपरोक्त औषधि का एक रोगी उन्होंने मुझे स्वयं ले जाकर दिखाया था. उनके पड़ोस में उन दिनों एक ज़मीदार (उन दिनों अंग्रेजी राज था) श्री भजन लाल डिगाले रहा करते थे . उनका पुत्र जिसकी कुमार अवस्था थी, मियादी बुखार (typhoid fever) से पीड़ित था. किसी वैद्य का इलाज चल रहा था. परन्तु गुरुदेव सहानुभूतिवश देखने चले जाते थे. हवेली की पहली मंज़िल पर एक बड़ा सा लम्बा कोठा था. रोगी एक पलंग पर लेटा हुआ था, अत्यंत दुर्बल और बेचैन था. उसकी शैया के दोनों ओर दो-दो या तीन-तीन और पलंग पड़े थे. घर में डिगाले साहब, उनकी पत्नी और वह पुत्र - तीन ही व्यक्ति थे. इतने सारे पलंग देखकर मेरी समझ में इसका अर्थ नहीं आया. वह रोगी कभी एक पलंग पर, कभी दूसरे पर तो

कभी तीसरे पर बहुत धीरे-धीरे किसी का सहारा लेकर शय्या बदलता रहता था. इस प्रकार की बेचैनी आर्सेनिक प्रभृति के रोगी का विशेष लक्षण है. बाद में वह रोगी मृत्यु को प्राप्त हुआ. पूज्य गुरुदेव से उन्होंने इलाज नहीं कराया था.

एक अन्य केस इसी औषधि का उन्होंने मुझे और बताया था. उन्हीं के एक सुपुत्र के एक घुटने में वात रोग जैसी कोई बीमारी लड़कपन में हुई थी जिसके कारण पीड़ा और ज्वर दोनों रहते थे . एलोपैथिक पद्धति से आराम तो आता था लेकिन रोग पुनः उभर आता था. उन्हीं दिनों अलीगढ में डॉ. बैनर्जी, जो एक सुप्रसिद्ध होम्योपैथिक चिकित्सक थे, प्रैक्टिस करते थे. उन दिनों उनकी फीस ४० रूपये थी. पूज्य गुरुदेव ने अलीगढ़ से बुलाकर उन्हें घर पर दिखाया. रोगी का बहुत देर तक परीक्षण करने के बाद उन्होंने arsenic alb. . (आर्सेनिक एल्बम ३०) की केवल एक मात्रा दी. रोगी में बेचैनी, अत्यधिक दुर्बलता और मंद ज्वर आदि के लक्षण देखकर ही उन्होंने उस औषधि का निदान किया था. गुरुदेव के पूछने पर कि क्या इस औषधि से ही रोग अच्छा हो जायेगा और यदि न हुआ तब क्या होगा ? डॉ. बैनर्जी ने उत्तर दिया " no other medicine is indicated, otherwise he should be prepared for death" (इस औषधि के अतिरिक्त और कोई औषधि निदान में नहीं आती. अन्यथा रोगी को मृत्यु के लिए तैयार हो जाना चाहिए.) पूज्य गुरुदेव का इतना पक्का विश्वास होमियोपैथी पर और डॉ. बैनर्जी के निदान पर था कि उन्होंने और कोई औषधि नहीं दी और उपरोक्त औषधि से ही उनके सुपुत्र निरोग हो गए.

इस प्रकार मुझे गुरुदेव ने होम्योपैथिक पद्धति की अनेकों बार प्रयोगात्मक (प्रैक्टिकल) ढंग से शिक्षा दी थी जिसका लाभ मैने अपने परिवार में भी उठाया और अपने व्यवसाय में तो उठा ही रहा हूँ. एक बार जब मैं कलकत्ते में था तो मेरी मझली बेटी जो छोटी आयु की थी और केवल तुतला कर ही बोल पाती थी टाईफॉएड ज्वर से पीड़ित हुई. जैसा कि पहले कहीं आया है उन दिनों मेरी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी. अतः महंगा इलाज कराने की मेरी सामर्थ्य नहीं थी. एक दो डाक्टरों से होम्योपैथिक औषधि लाया भी परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ. बुखार

१०४ से कम नहीं होता था. उसे स्पंज करने पर भी थोड़ी देर के लिए कम हो जाता था परन्तु फिर बढ़ जाता था. जीवन से निराशा होने लगी और एक निराशा-जनक विचार यह भी आया कि यदि दैवयोग से इसकी मृत्यु हो गयी तो मत्यु का डाक्टरी सर्टिफिकेट कहाँ से आएगा क्योकि तब कलकत्ता में बिना डाक्टरी सर्टिफिकेट के किसी मृतक की श्मशानघाट में क्रिया नहीं करते थे. हम दोनों पति-पत्नी इसी चिंता में बैठे थे कि बच्ची ने अपनी तोतली भाषा में कुछ शब्द कहे जो मेरी समझ में नहीं आये. मैने पत्नी से पूछा कि यह क्या कह रही है तो उन्होंने उत्तर दिया कि बुखार तेज़ है, उसके कारण यह तो ऐसे कहते ही रहती है. जब मैने दुबारा पूछा तो उन्होंने कहा कि यह दूसरी चारपाई पर जाना चाहती है. मैने देखा कि यह मानसिक बेचैनी है अतः औषधि बाजार से लाकर आर्सेनिक अल्बम ३ दी जिससे थोड़ी देर में उसका ज्वर १०२ रह गया और दो तीन दिन में बच्ची स्वस्थ भी हो गयी.

कहने का तात्यपर्य यह है कि उन्होंने जो कुछ भी सिखाया उसे मौखिक ही नहीं प्रयोगात्मक रूप से भी सिखाया था.

पूज्य गुरुदेव का कहना था कि जो भी व्यक्ति जिस धर्म में पैदा हुआ है उसे उसी धर्म के कर्मकाण्ड का पालन करना चाहिए. वे हिन्दुओं के लगभग प्रत्येक बड़े त्यौहार को मनाते थे परन्तु गृहस्थ से सन्यास लेने के पश्चात उन्होंने यह सब स्वयं न करके इसका भार अपने पुत्रो और पुत्र बधुओं को सौंप दिया था. परन्तु वे कुछ ऐसे पर्वों पर जो अवतारों से संबंधित होते थे उन्हें दूसरी तरह मनाते थे. वे राम नवमी पर व्रत रखते थे और सिवाय चाय के, दिन में कुछ नहीं लेते थे. रात्रि को जब कृष्ण जन्म के समय मंदिरों में घंटे बजने की ध्वनि आती थी तब वे भोजन करते थे. अपने अंतिम दिनों में मुसलमानों के रमजान मास में सारे दिन व्रत रखते थे और संध्या को सूर्यास्त के बाद जब रोज़ा अफ्तायारने की नमाज़ की अज़ान के आवाज़ अथवा गोला छूटने की सांकेतिक ध्वनि होती थी तब वे भोजन करते थे.

देश भक्ति की भावना उनमें कूट-कूट कर भरी थी. इसका कुछ विवरण अन्यत्र आ चुका है. पाकिस्तान के आक्रमण करने के कारण हमारे देश और पाकिस्तान में जो युद्ध हुआ था उस समय आपकी काफी बृद्ध अवस्था थी और शरीर भी अस्वस्थ रहता था. उस समय अपने अपने ज़िले के ज़िलाधीश को पत्र लिखा था कि मैं एक योग्यता प्राप्त डाक्टर हूँ, अपनी सेवाएं देश को अर्पित करना चाहता हूँ, मुझे लड़ाई के मैदान में घायलों की सेवा करने का अवसर दिया जाये. ज़िलाधीश महोदय ने उनकी इस भावना की सराहना की परन्तु साथ में उनकी बृद्धावस्था के कारण उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था.

उनका कहना था कि जो जिस देश में पैदा हुआ है उसका देश के प्रति कर्तव्य है कि उसकी स्वतंत्रता बनाये रखने में अपना पूर्ण योगदान दे, चाहे वह धन से हो, तन से और चाहे किसी और प्रकार से. समाज के प्रति भी वह अपने कर्तव्यों को पूरी तरह निभाए. उस देश में पैदा होने के नाते उसके ऊपर एक प्रकार का यह ऋण है जो प्रत्येक देशवासी को उतारना चाहिए.

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के प्रति उनके ह्रदय में बहुत सम्मान था. उन्हें वे एक सत्यवादी और उच्चकोटि के संत के रूप में देखते थे. स्व. प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री के निधन के दिन आप ग़ाज़ियाबाद में ही सत्संग भवन में ठहरे हुए थे. प्रातःकाल की पूजा के समय जब मैने उन्हें यह समाचार सुनाया तो वे बहुत उदास हो गए और कहने लगे कि एक महान नेता व् सच्चा देश सेवक चला गया.उस दिन उन्होंने भोजन नहीं किया था. जब शास्त्री जी का शरीर विसर्जन हो गया उसके पश्चात् ही उन्होंने भोजन ग्रहण किया था.

शास्त्रीजी के प्रधानमंत्री के समय देश में पाकिस्तान युद्ध के पूर्व खाद्यान्न का कुछ संकट था जिसके कारण शास्त्रीजी ने देशवासियों से अपील की थी कि सप्ताह में एक दिन (सोमवार को) जनता अनाज रहित भोजन करे. इस

अपील को ध्यान में रखते हुए पूज्य गुरुदेव सोमवार को भोजन नहीं करते थे, रात्रि के समय थोड़े से उबले हुए चने खा लिया करते थे.

अध्याय ८

सन्तमत क्या है ?

मनुष्य जीवन का आधार यह है कि वह संसार में रहकर यहां के व्यवहारों और कर्तव्यों को धर्मशास्त्र के अनुसार पूरा करते हुए ईश्वर की प्राप्ति कर ले. ईश्वर प्राप्ति के अनेकों रास्ते हैं, परन्तु सबसे सरल साधन सन्त-मत में है. इसके लिए वक्त के पूरे सच्चे सतगुरु का मिलना अनिवार्य है.

सन्त-मत का आधार केवल सतगुरु पर निर्भर है. यदि इसको समझने में गलती हो गयी तो सारी ईमारत खण्ड-खण्ड हो जाएगी और जैसा लाभ होना चाहिए नहीं होगा.

हमारे यहां का तरीक़ा जज़्बुल्ल सलूक (भक्त-ज्ञानी अथवा पहले भक्ति फिर ज्ञान) का है. प्रेम के वशीभूत होकर गुरु अपनी शक्ति से शिष्य की सुरत (attention) को ऊपर खेंच देता है, आत्मा साथ जाती है और ऊंचे स्थान का आनन्द लेती है.

संतमत में लक्ष्य उस आदि शक्ति (एकेश्वर, निराधार, निर्गुण, सबका मालिक. परमपिता परमेश्वर) का बांधते हैं जो सबका आधार है. उस तक पहुँचने का माध्यम सतगुरु है.

देवी देवताओं की संतमत में पूजा नहीं होती लेकिन किसी का निरादर भी नहीं किया जाता. सिवाय उस 'एकेश्वर' के किसी और को मत पूजो. वही पूजने योग्य है. लेकिन प्रारम्भ में 'उससे' वास्ता नहीं होता. इसलिए उसकी ज़ाहिरी शक्ल 'सतगुरु' को उस वक्त तक पूजते हैं जब तक 'उससे' सिलसिला जुड़ न जाये. उसके बाद परमात्मा को ही पूजते हैं जो कि दरअसल पूजने लायक़ है. इज़्ज़त सबकी वाजिब है लेकिन परिस्तिश (पूजा) एक ही होनी चाहिए.

सतगुरु वह है जो दयाल देश से जीवों के उद्धार के लिए प्रगट हुआ हो या वह व्यक्ति जिसने ऐसे गुरु की संगति में रहकर आत्मा का साक्षात्कार कर लिया हो. उसको सूफी भाषा में 'मुराद' और संतों की भाषा में 'गुरुमुख' कहते हैं. इन्हीं को आचार्य कहते हैं. हमारे यहां अपने उत्तराधिकारी आचार्य की नियुक्ति लिखित रूप में वर्तमान आचार्य द्वारा की जाती है.

शुरू-शुरू में गुरु का ध्यान ही परमात्मा का ध्यान है.

गुरु धारण कर लेने के बाद उसके बताये हुए साधनं करने चाहिए किन्तु चलते-फिरते या कोई काम करते समय भी यह ख्याल रखना चाहिए कि मेरी जगह गुरु ने ले ली है और मैं वही हूँ जो वह है. यह सहज-योग है.

संतमत में अभ्यास के लिए कोई पाबन्दी नहीं है. पूजा का समय नियत कर लेना अपने को अनुशासन में लाना है क्योकि अनुशासन आवश्यक है. फिर भी अभ्यास के लिए निश्चित समय और निश्चित स्थान की बंदिश नहीं है. प्रत्येक व्यक्ति, दस वर्ष से ऊपर का बच्चा, जवान, बूढा, स्त्री व पुरुष इसके अभ्यास को सब समय और सब जगह कर सकता है. शरीर, वस्त्र और स्थान की पवित्रता अनुशासन में आती है परन्तु मन की पवित्रता मूल है.

संतमत में सुरत-शब्द का अभ्यास कराया जाता है जिसे सुरत-शब्द-योग कहते हैं. लेकिन जिन सत्संगियों को शुरू में शब्द सुनाई नहीं देता उनको तब तक गुरु मूर्ति का ध्यान करने को बता देते हैं. जब शब्द जाग्रत हो जाता है तब शब्द सुनने का अभ्यास किया जाता है. जिनको गुरु धारण करने को बताया जाय उनको गुरु का ही ध्यान करना चाहिए. मॉनिटर या शिक्षक जिनके साथ वे सत्संग कर रहे हैं या जिनसे उपदेश (दीक्षा) गुरु ने दिलाया हो उनका ध्यान नहीं करना चाहिए.

हमारे यहां संतमत में माया से लड़ाई नहीं लड़ते, उसका विरोध नहीं करते. माया को 'माँ' का रूप मानकर, उसका सहारा लेकर आदर करते हुए, बच कर निकल जाते हैं. सारी सृष्टि, प्रकृति की एक-एक वस्तु, सारे ब्रह्माण्ड माया के चक्कर में नाच रहे हैं. यह बड़ी विचित्र है. मनुष्य की आत्मा माया के आवरणों में जकड़ गयी है. उसे उन बंधनों से मुक्त करा कर अपने असली रूप का दर्शन कराना ही संतमत की शिक्षा है.

संतमत में अभ्यासी जब तक यम-नियम का पालन नहीं करता तब तक आगे नहीं बढ़ सकता. जो यह चाहते हैं कि हमें नाम (दीक्षा) दिया जाय और सत्संग में शामिल कर लिया जाय उनके लिए यह ज़रूरी है कि पहले यम नियम का पालन करें और अपनी रहनी-सहनी ठीक करें .

५ यम हैं - १.अहिंसा २. सत्य ३. आस्तेय ४. ब्रह्मचर्य ५. अपरिग्रह

५ नियम हैं.- १. शौच २. संतोष ३. तप ४. स्वाध्याय ५. ईश्वर प्रणिधान

बुराई को छोड़कर नेकी पर आना चाहिए. तम अवस्था और रज अवस्था से उठकर 'सत' पर आना चाहिए. जब तक ऐसा नहीं होगा तब तक आप गुरु कृपा के अधिकारी नहीं बनेंगे. गुरु के प्यारे हो जाने पर सतगुरु आपको नीचे से ऊपर उठाकर आत्मा का अनुभव करा देंगे.

संतों का तरीक़ा सारे संसार में एक ही है चाहे वह कोई भी धर्म हो. युग-युग से एक ही तरीक़ा चला आ रहा है और वह है गुरु चरणों में सच्चा प्रेम और समर्पण. संतो का तरीक़ा ' प्रेम और भक्ति' का है और यही रास्ता ईश्वर प्राप्ति के लिए सबसे सरल और सबसे छोटा है.

संतमत में 'गुरु' शब्द दो तरह से प्रयोग होता है. 'गुरु' नाम है उस आदि-शक्ति का जो तमाम सृष्टि का आधार है, जो एक है, जो न कभी पैदा होता है और न कभी मरता है. हमेशा से है और हमेशा रहेगा. वही अमर आनन्द, अमर जीवन और अमर शांति का स्रोत्र है. सब चराचर और स्थावर जंगम उसी से उतपन्न होते हैं और उसी में समा जाते हैं.

जीवों के उद्धार के लिए वह मनुष्य शरीर धारण करता है और सन्त रूप में अवतरित होता है और उन्ही की सरल भाषा में समझाता है, रास्ता दिखाता है और उनके मन की ग्रंथि खोलकर आत्मा को आवरणों से मुक्त करा कर परमात्मा की प्राप्ति करा देता है.

दूसरे वे लोग हैं जिनके पिछले संस्कार नाम मात्र के लिए शेष रह जाते हैं. गुरु की शरणागत होते ही उन संस्कारों का झीना परदा उनकी आत्मा से हट जाता है और फिर उनमें और गुरु में कोई भेद नहीं रहता. ये लोग फ़िदायी यानी गुरु पर सम्पूर्णतया न्योछावर होते हैं और गुरुमुख शिष्य कहलाते हैं. गुरु के चोला छोड़ने के बाद ये लोग जीवों के उद्धार का काम, जो संतमत का मिशन है, जारी रखते हैं. इन लोगों को भी सन्त और गुरु कहते हैं.

संतमत में कोई धार्मिक भेद-भाव जात-पांत का नहीं होता. हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई , ऊँच-नीच, कोई भी हो सब के लिए समानता है. संतमत के रास्ते पर चलकर ईश्वर-प्राप्ति करना, हमेशा-हमेशा की ख़ुशी प्राप्त करना और आवागमन के चक्र से छूटना -इसका सभी को समान अधिकार है.

जितने भी अवतार हुए हैं, चाहें वे किसी भी धर्म या मज़हब के हों, उस आदि शक्ति की, जो सबका आधार है, कुछ कलाएं लेकर अवतरित हुए हैं. संतमत में उस आदि शक्ति की उपासना की जाती है जो सम्पूर्ण कलाओं की श्रोत है. एक है ईश्वर और एक है परमेश्वर. ईश्वर केवल एक ब्रह्माण्ड का मालिक होता है और परमेश्वर सारे ब्रह्माण्डों का मालिक होता है. सूफियों में एक को 'खुदा' और दूसरे को 'ख़ुदाये अज़ीम ' कहते हैं. इसी तरह ईसाई धर्म में god (गॉड) और गॉड ऑलमाइटी (god almighty) कहते हैं.

मनुष्य सृष्टि का अंग है. सृष्टि के परमात्मा ने कुछ नियम बना दिए हैं. उन नियमों पर चलना चाहिए. जिस समाज के आप अंग हैं, जिस धर्म (religion) में आप पैदा हुए हैं, उनके नियमों पर चलो. यहां तक तो सब बताया ही जाता है. यह कर्मकाण्ड है जो सब धर्मों का अलग-अलग है. संतमत इसमें कोई आपत्ति नहीं करता. लेकिन यहां शिक्षा इस बात की दी जाती है कि परमेश्वर से मिलकर अपनी हस्ती (व्यक्तित्व) मेट दो.

अन्य मतों का ख़तम (last) यह है कि बुराई छोड़कर भलाई, नेकी पर चलो. लेकिन हमारे यहां प्रारम्भ यहां से कराते हैं.

संतमत की एक विशेषता यह है कि अन्य मतों में गुरु शिष्य को अभ्यास बता कर छोड़ देते हैं परन्तु हमारे यहाँ यह नहीं है. संतमत में गुरु कृपा परछाईं की तरह सदा साथ रहती है और गुरु अपनी इच्छाशक्ति से शिष्य को अभ्यास में सहायता देते रहते हैं.

दूसरी विशेषता यह है कि गुरु अपनी शक्ति और अपना बल देकर वे बातें आप से छुड़ाते हैं जो परमात्मा की प्राप्ति के रास्ते में बाधक हैं. गुरु हर समय ईश्वर में लीन है, हर समय ईश्वर से शक्ति लेता है और उस शक्ति को आपको दान देता है.

संतमत में जितना तप और अभ्यास है, सब मन और इन्द्रियों को वश में करने का है और सिद्धांत यह है कि आत्मा को मन से न्यारा करके अपने असली प्रीतम परमात्मा में लय कर दिया जाय जो हमारा सच्चा पिता है.

यहाँ सिद्धियां नहीं मिलतीं, यहाँ दुनियां की चीज़ें नहीं दी जातीं, यहाँ मान और आदर नहीं मिलता, उसे तो कुचला जाता है, जिससे मन का मर्दन हो, दुनिया से लगाव छुड़ाया जाता है और ऐसी अनमोल वस्तु 'परमात्मा का प्रेम' दिया जाता है जो उससे मिला कर एक कर देता है.

सच पर चलने से ही परमात्मा प्रसन्न होता है. सच्चाई ही परमेश्वर है. इसी रास्ते पर चलने से 'वह ' मिलता है.

जब तक किसी सन्त की सहायता नहीं मिलती तब तक यह रास्ता तय नहीं होता. जीवात्मा मन के चंगुल से नहीं छूटती और आत्म-साक्षात्कार नहीं हो सकता. मन बड़ा बलवान है. इससे जीतना मनुष्य शक्ति के बाहर है.

पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी कहा करते थे कि हमें इस बात का गर्व था कि सांसारिक मामलों में जो कोई भी इरादा करेंगे उसमें हम सफल होंगे. दुनियाँ एक तरफ होती थी और वे एक तरफ और उसमें उनको सफलता मिलती ही

थी - ऐसी थी उनकी इच्छा शक्ति. किन्तु वे यह भी कहते थे कि मन को वश में करने के मामले में हम असफल होते थे. अपने इरादे और बलबूते पर हम मन से नहीं जीत सके. इस मन की backing (पीठ) पर दुर्गा माता हैं. वह बड़ी शक्तिशाली हैं. ऐसी शक्तिशाली माता से मनुष्य की क्या मज़ाल है जो लड़ सके,जीतना तो दूर रहा. सन्त रास्ता चले होते हैं, उनमें इतनी शक्ति होती है कि वे दुर्गा से आसानी से निकल ले जाते हैं.

दूसरे तरीकों से मन को मारते हैं. हमारे यहाँ उसे मारते नहीं हैं, उसे ऊंचा रस दे देते हैं जिसे पाकर वह उससे घटिया आनन्द को छोड़ देता है. जब मन को आत्मा का आनन्द मिलने लगता है तब वह इन्द्रियों के आनन्द और सांसारिक वस्तुओं के आनन्द को स्वयं ही छोड़ देता है क्योकि वह उस आनन्द को फीका और झूठा समझने लगता है. मन तो बेजान है, जड़ है. उसमें आत्मा शामिल है. जब वह किसी चीज़ को पसंद करता है और उसका रस लेना चाहता है तो वह आत्मा को वहां ले जाता है जहां उसका इच्छित पदार्थ है. आत्मा की धार जब उस पर पड़ती है तब उसमें से आनन्द मिलता है.

मनुष्य का चित्त (attention) कहीं और हो तो उसमें आनन्द नहीं आता है. जैसे बीमारी में स्वादिष्ट वस्तुएं भी खाने में आनन्द नहीं आता है, स्वस्थ अवस्था यानी जब तंदरुस्ती ठीक होती है तब आनन्द आता है.

साधारणतया तीन साधन हैं. (१) मनुष्य शरीर में जो अनहद शब्द हो रहे हैं , गुरु से उनका ज्ञान प्राप्त करके शब्द की धार को पकड़ो और ऊपर की और चढ़ाई करो . (२) गुरु मूर्ति का ध्यान करो. (यह केवल उन साधकों के लिए है जिन्हें यह ध्यान बताया जाये.) (३)जो नाम गुरु ने दिया है उसका हर समय, हर परिस्थिति में सुमिरन करो. (४) एक मात्र सरल साधन यह है कि सतगुरु से प्रेम करो और उस पर अपना सब कुछ न्यौछावर कर दो. (यह केवल प्रेमी भक्तों के लिए है.)

संतमत में अपने आपको गुरु के समक्ष समर्पण (surrender) कर देते हैं . गुरु के मन से मन मिल जाय, जो गुरु के ख्याल में आये, वह तुम्हारे ऊपर भी उतर जाय, जो गुरु चाहे वही तुम करो, यही समर्पण है. सूफियों में इसको 'निस्बत' कहते हैं - गुरु शिष्य का आत्मिक सम्बन्ध.

संतमत को संक्षिप्त रूप में यहाँ बता दिया गया है. इसे समझ लेने का बाद सबसे पहला काम है ' सतगुरु की खोज '. बिना सतगुरु के मिले और उनकी शरणागत हुए कुछ न होगा.

अध्याय ९

गुरु की आवश्यकता और पहिचान

हमारे यहां संतमत में पहली चीज़ 'सतगुरु' की तलाश है. बिना देहधारी गुरु धारण किये कोई भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकता. हमारे यहां का तरीक़ा ' श्रद्धा और विश्वास' का है. पहला विश्वास परमात्मा पर, दूसरा संत-मत के सिद्धांतों पर और तीसरा सतगुरु पर. जो गुरु के सिवाय इधर-उधर भटकते फिरते हैं, उनको फ़ायदा नहीं होता.

असली गुरु ईश्वर है. सच्चे भक्त के द्वारा उस तक पहुंच हो सकती है. उसका ध्यान ही ईश्वर का ध्यान है. देहधारी गुरु का धर्म है यह है कि वह जिज्ञासु को सही रास्ता बता दे और समय-समय पर सहायता देता रहे.

गुरु को समझने में ग़लती नहीं करनी चाहिए. वे उच्च-कोटि के मनुष्य होते हैं . उनका व्यक्तित्व स्वार्थ-रहित और पवित्र होता है. वे प्रेम की मूर्ति होते हैं और उनका जीवन प्राणियों के उद्धार के लिए होता है. उनकी आत्मा निर्लेप और बिलकुल शुद्ध होती है. वे बुराई-भलाई का अनुभव भली प्रकार कर सकते हैं क्योकि उनकी बुद्धि निर्लेप होती है. जो उनका कहना मानते हैं और उनके आदेशों पर चलते हैं, खुश रहते हैं. जो उनके कहने का ख्याल नहीं करते वे तक़लीफ़ उठाते हैं और बाद में पछताते हैं.

जिस गुरु के ध्यान के साथ-साथ जीवन में एक बार भी आपको प्रकाश नज़र आया है तो समझ लीजिये कि वह सच-खण्ड तक पहुंचा हुआ है. उसका दिया हुआ 'नाम' लो, चाहे वह 'राम' हो, 'कृष्ण' हो, 'ॐ' हो, 'अल्लाह' हो या और कोई नाम हो. जिस नाम को जप कर उसने परमात्मा किए प्राप्ति की है वही नाम तुम्हे भी परमात्मा की प्राप्ति करा देगा.

आध्यात्मिक जगत के नाम पर आजकल बड़ा धोखा चल रहा है. सैकड़ों आदमी तरह-तरह के ढोंग रच कर भोले-भाले नासमझ लोगों को ठगते फिरते हैं. इसलिए गुरु बनाने या किसी पर विश्वास करने से पहले सावधानी से जाँच कर लें कि हम अपने आपको जिसे सौंप रहे हैं वह वास्तव में महापुरुष ही है, कोई ढोंगी तो नहीं है ? महापुरुषों को जांचना भी कोई आसान बात नहीं है जब तक कि वह स्वयं अपनी पहिचान न देना चाहें ताकि अनाधिकारियों की भीड़ न लगे. इसलिए वे अपने आप को छिपाये रखते हैं.

गुरु उसको कहते हैं जिससे अच्छी, आकर्षक और प्यारी चीज़ दुनियां में और कोई न हो और जिसके लिए दुनियां की हर वस्तु को छोड़ा जा सकता हो.

अगर गुरु सच्चा है तो उसका प्रेम आखीर में परमात्मा तक पहुंचा देता है .

गुरु की पहिचान बड़ी मुश्किल है. तो भी जिज्ञासुओं के लिए कुछ मोटी-मोटी बातें लिखीं जाती हैं :-

(१) पहली पहिचान यह है कि उसके सत्संग में जाकर बैठ जाइये और देखिये की वहाँ पर शांति है या नहीं. यदि उसका (संत का) मन शांत होगा तो ज़रूरी है कि वहां का वातावरण शांत होगा और जैसे धूप का मारा हुआ आदमी छाया में आकर शांति और शीतलता अनुभव करता है उसी प्रकार से संसार के दुखों से परेशान आदमी सच्चे संत की संगति में आकर शांति और आनंद का अनुभव करता है.

(२) उसके सत्संग में जाकर ध्यान पूर्वक उसकी बात-चीत सुनें और देखें कि आपके प्रश्नों के उत्तर या उनके विषय में उसमें कोई बात है या नहीं. यदि है तो वह व्यक्ति आत्म-ज्ञानी (सूफियों का रौशन ज़मीर) है और आध्यत्म की कमाई किये हुए है.

(३) उसके सत्संग में बैठकर आपको अपनी कमियों का भान होता है या नहीं. यदि होता है तो वह ज्ञानी है और उसका आचरण बहुत ऊंचा है.

(४) वह तीन चीज़ों से ऊपर होगा - (१) कामिनी (२) काञ्चन और (३) यश.

(५) वह ईश्वर का पूर्ण भक्त होगा. सिवाय ईश्वर के दूसरी बात नहीं करेगा. उसका आपसे कोई स्वार्थ नहीं होगा. उसकी कथनी और करनी एक समान होगी.

(६) यह देखें कि यह भेस उसने धनोपार्जन के लिए तो नहीं धरा है.

(७) वह किसी की बुराई तो नहीं करता.

(८) ऐसे व्यक्ति की संगति में बैठने से अपनी इन्द्रियां वश में आने लगती हैं और आचरण सम्बन्धी साधारण कमियाँ दूर होने लगती हैं.

(९) यदि कुछ दिनों के सत्संग से दुनियां के बन्धन ढीले होने लगें और ईश्वर से प्रेम पैदा होने लगे तो यह समझें कि वह परमात्मा का भक्त है.

(१०) उसकी बातों में असर होगा. उसका जीवन परमार्थी जीवन होगा. उसके मस्तक पर अधिकारी जिज्ञासु को ज्योति (holo) प्रकाश का घेरा दृष्टिगोचर होगी.

(११) संत की शिक्षा सीना-ब-सीना (दिल से दिल को) होती है. यदि उससे प्रेम का नाता जुड़ जाए और चरित्र निर्माण हो जाय तो बिना कुछ किये या सुने आध्यात्मिक विद्या शिष्य में उतरती चली आती है और मालूम भी नहीं होता. दूर बैठे भी आध्यात्मिक शिक्षा होती रहती है.

(१२) संत के प्रकट होते ही परमार्थ की बाढ़ सी आ जाती है. उनके पास लोगों की भीड़ जमा होने लगती है और जो अधिकारी होते हैं वे परमार्थी बन जाते हैं. संत केवल आध्यात्म की शिक्षा देते हैं. धार्मिक कट्टरता से दूर होते हैं. धर्म के बाहरी रीति-रिवाज़ों और बन्धनों से छुड़ा कर स्पष्ट कह देते हैं कि सिवाय सच्चे मालिक परमपिता परमात्मा के और किसी की भक्ति न करो और उसे सिवाय अपने घट के और कहीं मत ढूंढो. तुम्हारा ही घट असली मंदिर है . उसी में वह सच्चा मालिक दर्शन देगा.

(१३) गुरु न तो शरीर (नर देह) है और न मन. वह इससे पृथक है. वह शुद्ध आत्मा है और वही गुरु है.

(१४) उसका जीवन परमार्थी होगा. वह बिना भेद-भाव के परमार्थ की शिक्षा देकर जीवों को अपनी और आकृष्ट करेगा.

(१५) संत-जन जिज्ञासु की बाहरी हालत नहीं देखते. भीतरी हालत देखकर शिक्षा देते हैं. अधिकारी जिज्ञासु की ओर आकृष्ट होते हैं और अनधिकारी से दुनियां दिखावे के लिए मिलते हैं लेकिन उसकी और आकृष्ट नहीं होते. यह भी कह देते हैं कि तुम्हारा हिस्सा मेरे पास नहीं है, दूसरी जगह जाओ.

(१६) वे लोग मज़हब, मत, पंथ, संप्रदाय, वर्णाश्रम का तनिक भी लिहाज़ नहीं रखते और समझा देते हैं कि हमारा तुम्हारा सम्बन्ध केवल आत्मिक है.

(१७) संत के पास बैठकर आनंद का अनुभव होता है. यदि सौभाग्य से ऐसा कोई वक्त का पूरा संत मिल जाय, वही गुरु है. वह तुम्हें भवसागर से पार करने आया है. उससे प्रेम करो.

(१८) कभी-कभी संत अपनी मौज़ से निज व्यक्तित्व में ऐसा सामान पैदा कर लेते हैं जिससे संसारियों को घृणा होती है परन्तु परमार्थ के लिए यह हानिकर नहीं होते. यह इसलिए करते हैं कि संसारी लोग उन्हें परेशान न करें.

(१९) दूर दराज़ यानी परदेस में बैठे हुए भी आध्यात्मिक शिक्षा होती रहती है.

(२०) हरेक अपने को सच्चा गुरु ही बतलाता है. फिर हम कैसे जानें कि कौन सच्चा और कौन झूंठा है. इसका उत्तर तो यही हैं कि सूरज निकला हुआ है या नहीं, इसकी जाँच के लिए किसी प्रमाण की आवश्यकता नहीं पड़ती . हम मोमबत्ती जलाकर या टोर्च से सूरज को नहीं देखते. सूरज निकलते ही हर व्यक्ति स्वयं जान जाता है कि सूरज निकल आया है. इसी

प्रकार जब किसी महापुरुष का प्राकट्य मनुष्यमात्र के उद्धार के लिए होता है, आत्मा ख़ुद-ब-ख़ुद अनुभव करती है और उस तरफ खिंच जाती है और तब सब वार्तालाप और तर्क- वितर्क बंद हो जाते हैं. सच्चाई स्वयं अपनी साक्षी है. उसके लिए किसी अन्य साक्षी की आवश्यकता नहीं होती. जब ऐसी महान आत्माएं आती हैं तो उनका प्रतिबिम्ब हमारे भीतर भासता है और सारा संसार पुकार उठता है कि यही सत्य है. फिर भी कुछ ऐसी बातें हैं जिनको देखकर असली और नक़ली की पहिचान की जा सकती है.

(२२) पहली बात यह है कि वह व्यक्ति शास्त्रों के अर्थ और आशय को भली भांति समझता होगा. शब्दों की बनावट और तोड़-मरोड़ से उसका कोई सम्बन्ध न होगा. उसकी दृष्टि उनके असली आशय पर होगी जिस दृष्टि से वे लिखे गए हैं और उसके कथन में जान होगी और उसके कहने का असर सुनने वालों पर होगा.

(२३) दूसरी बात यह है कि वह पापों से अछूता और पवित्र होगा. अन्य विद्याओं में यह देखने की आवश्यकता नहीं होती कि वह कैसा है. उस वक्त हमें यह देखना होता है कि इसका विद्या-ज्ञान कैसा है. यह देखने की आवश्यकता नहीं पड़ती कि इसकी रहनी-सहनी कैसी है. यदि वह चाल-चलन का अच्छा भी नहीं है परन्तु विद्या-ज्ञान अच्छा रखता है तो भली प्रकार पढ़ा सकता है और विद्वान बना सकता है. लेकिन रूहानियत (आध्यात्म) में इसके विपरीत पहली जो चीज़ देखनी होती है व यह है कि उसकी रहनी-सहनी कैसी है और तब यह देखना होता है कि उसकी पढ़ाई-लिखाई कैसी है. जो व्यक्ति अच्छे चाल-चलन का नहीं है वह कभी आध्यात्म विद्या की शिक्षा नहीं दे सकता क्योकि वह उसे स्वयं भी नहीं आती. जब उसके पास कुछ है ही नहीं तो वह देगा क्या ?

(२४) तीसरी बात यह है कि उसमें शिष्य के लिए प्रेम और सहानुभूति होनी चाहिए और उसका कोई स्वार्थ शामिल नहीं होना चाहिए.

गुरु बहुत देख-भाल कर करना चाहिए. अगर एक उम्र भी लग जाये तो कोई हर्ज़ नहीं. दूसरे की देखा-देखी या कहने से गुरु नहीं करना चाहिए. जब पूर्ण निश्चय हो जाय तब गुरु करना चाहिए. कुछ दिन सत्संग करो. उन महापुरुष को आप पिता, भाई, दोस्त कुछ भी मान लो और फिर देखो कि उनसे आपको लाभ होता है या नहीं.

जब एक बार गुरु धारण कर लो तो उसका दरवाज़ा छोड़ कर मत जाओ. आप किसके शिष्य बनते हैं ? क्या आदमी के ? नहीं, आप तो ईश्वर को गुरु धारण करते हैं. जिस शरीर में ईश्वर बसता है वह तो मिटटी का बना हुआ है. वह तो मंदिर है. मंदिर की पूजा तो नहीं करते, उसके भीतर जो मूर्ति होती है पूजा उसकी की जाती है.

किसी के कहने से किसी हालत में गुरु को न छोड़ें जब तक स्वयं उसमें कोई बुराई न देखें. गुरु के ख़िलाफ़ किसी की बात मत सुनो. अगर कोई बात सुनने में आ जाय और वह गुरु के ख़िलाफ़ हो तो गुरु से साफ़-साफ़ कह दो. वह तुमको असलियत बता देंगे. अगर इस पर भी तुम्हें तस्सली न हो तो ऐसे गुरु को छोड़ दो.

जो लोग गुरु के ख़िलाफ़ हों उनके संग से बचो. यदि गुरु की बुराई होती है तो उस जगह को छोड़ दो. यदि वहां ठहरना ही पड़े तो स्पष्ट कह दो कि मैं ऐसा सुनने के लिए तैयार नही हूँ. दुनियां की मुरब्बत की वजह से परमार्थ का नुक़सान मत करो. जहां तक बने, दोनों को निभाएं. यदि ऐसा अवसर आ जाए कि एक को छोड़ना पड़े तो दुनिया पर लात मार दें,यहां तक कि माँ-बाप, स्त्री व संतान तक को परमार्थ के मुक़ाबले में क़ुर्बान कर दें.

गुरु का प्रेम (यदि वास्तव में वह ईश्वर का अपनाया हुआ है) ईश्वर का साक्षात्कार करा देगा. दुनियाँ से पार करा देगा.

उपरोक्त्त बातों का ध्यान रखते हुए जब तक पूरी तस्सली न हो जाय तब तक किसी को गुरु धारण नहीं करना चाहिए चाहे कोई कुछ भी कहे. यदि गुरु करने में जल्दी की तो बजाय फ़ायदे के नुक़सान होगा.

जब एक बार सोच समझ कर और परख कर गुरु धारण कर लो तो उन पर अपना सब कुछ न्योछावर कर दो, उन्हीं को आदर्श मानकर उनकी पवित्र मूर्ति अपने ह्रदय में रख कर अपने घट में घुसो और आत्मसाक्षात्कार करने की क्रिया सीखो.

अगर ठोकरें भी मारे तो भी गुरु का दरवाज़ा छोड़कर मत जाओ. कहा है --

द्वार धनी के पड़ रहै, धका धनी का खाय

एक बार शरण ग्रहण कर ली तो छोड़ना कैसा ? हम तो उसके हो गए , अब जो चाहे वह करे.

मरेंगे यारो तलब में हक़ की,

जो नाम तालिब लिखा चुके हैं .

अंतिम बात तत्व की यह है कि गुरु और शिष्य का सम्बन्ध प्रेम का होता है. शिष्य फ़िदायी हो यानी गुरु के प्रेम में सब कुछ उस पर बलिहार कर दे, जीते जी मर जाय. ऐसे शिष्य और मुर्दे के बीच में एक ही अंतर होता है. मुर्दे का कोई लक्ष्य नहीं होता परन्तु शिष्य के सामने उसका लक्ष्य होता है.

प्रेमी शिष्य कहता है कि ऐसा तो हो नहीं सकता कि वह मालिक न मिले. मिलकर ही रहेंगे. तेरी इच्छा यह है कि हम बुरे कहलायें तो यही सही. लेकिन अगर तू चाहे कि हम तुझे छोड़ दें, ऐसा तो हो ही नहीं सकता. विचार उठा करें, संध्या पूजा चाहे हो या न हो, एक तेरा ख्याल न छूट जाय. किसी कवि ने कहा है -

यार की गलियों में क्यों कर यार जाना छोड़ दे

किस तरह बुलबुल चमन से आशियाना छोड़ दे.

अब्र बारा छोड़ दे, बिजली तड़कना छोड़ दे

रूह क़ालिब छोड़ दे या जिस्म को जॉ छोड़ दे

मैं न छोडूंगा तुझे चाहे ज़माना छोड़ दे

यह प्रेम मार्ग है, ठठोली नहीं है. " जो तोहि प्रेम करन को चाव, सर धर तली गली मोर आव". हँसते-हँसते इस प्रेम मार्ग में मिटने वालों के उदाहरणों से पुस्तकें भरी पड़ी हैं . यदि ऐसे मर मिटने वाले प्रेमी भक्त न होते तो संसार को प्रेम की शिक्षा देता कौन ?

दो रास्ते हैं. एक कर्म का और दूसरा दया का. कर्म का रास्ता ऋषियों का है और दया का रास्ता संतों का. कर्म के रास्ते के लिए तमाम क़ायदे और क़ानून हैं. दया के रास्ते के लिए न कोई क़ायदा है और न कोई क़ानून. उसकी दया ही दया है. सब कुछ उसी पर छोड़ दीजिये. वह मालिक है, चाहे जो कुछ करे. सारे जीवन मनुष्य से वह नहीं हो सकता जो उसकी दया से एक पल में हो जाता है. पलक मारते तमाम जन्मों के कर्म कट जाते हैं और फिर यदि उसका 'प्रेम' मौज़ूद है तो चाहे हज़ारों जन्म हों और वह महा कष्ट में कटें, क्या परवाह है- केवल प्रेम का सहारा चाहिए.

अगर इस जन्म में तुम्हारी मोक्ष नहीं हुई तो जब जन्म लोगो तुम्हारा गुरु भी तुम्हारे साथ जन्म लेगा जब तक कि मोक्ष न हो यानी अगर तुममें आत्मा या परमात्मा का प्रेम है तो

जब-जब जन्म लोगो कोई न कोई आदमी ऐसा मिलेगा जिसमें आत्मा या परमात्मा का प्रेम होगा और वही तुम्हारा गुरु होगा. यह आत्मा और परमात्मा का प्रेम कभी मरता नहीं, दब जाता है. इसीलिए कहा जाता है कि गुरु कभी मरता नहीं .

गुरु हर व्यक्ति नहीं हो सकता. जिसके लिए ऊपर से हुक्म होता है वही यह सेवा कर सकता है . इस काम में धोखा बहुत है.

अध्याय १०

आध्यात्मिक शिक्षा का तरीक़ा

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज की आध्यात्मिक शिक्षा को हम दो भागों में बाँट सकते हैं. एक तो ' चक्रबंधन' या 'चक्रबेधन' और दूसरा ' प्रेम '.

यह चक्रबंधन विद्या आदि काल से चली आ रही है. पहले संत महात्मा इसको गुप्त रखते थे और यदाकदा किसी को अधिकारी देखते थे तो उसे इस विद्या को गुप्त रूप से सिखा देते थे. जैसे-जैसे समय बदलता गया, जनसाधारण की बढ़ती हुई दुखी और दीन दशा को देखकर संतों का ह्रदय द्रवित हुआ, धार्मिक संकीर्णता की बेड़ियों को तोड़कर उन्होंने इसे, जो भी उनकी शरण में आया, बांटना शुरू कर दिया. पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी के गुरुदेव आचार्य दिगन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज ने यह विद्या एक महान सूफी संत हज़रत मौलाना फ़ज़्ल अहमद खां साहब (परमात्मा उनकी आत्मा को शांति दे) से प्राप्त की. समय और परिस्थितियों के अनुसार उसमें कुछ सरलता का पुट दिया जिससे वह जन-साधारण तक पहुँच सके.

पूज्य गुरुदेव ने मनुष्य मात्र की गिरती हुई हालत को देखकर इस विद्या को और भी सरल बना दिया. उन्होंने चक्रबेधन विद्या यदा-कदा कुछ ही सेवकों को दी. उनका कथन था कि इस ज़माने में लोगों को फुर्सत कम है, स्वास्थ्य भी पहले जैसे लोगों का सा नहीं है और इख़लाक़ी हालत (आचरण) भी कमज़ोर है, अतः उन्होंने 'प्रेम' मार्ग अपनाया. वे स्वयं प्रेम की मूर्ति थे. जो भी उनके संपर्क में आया उसे यही कहते सुना कि ' मुझ से जितना प्यार करते थे उतना शायद ही किसी से करते थे ' . प्रेम का मार्ग ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुगम और छोटा मार्ग है. इसमें कोई बंधन नहीं है. हर आयु का व्यक्ति (स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े) सभी इसे सुगमता से कर सकते हैं.

चक्रों का भेद

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी एक कुशल डॉक्टर थे. मनुष्य शरीर की बनाबट का उनको सम्पूर्ण ज्ञान था. साथ ही साथ वे एक पूर्ण संत थे और चक्रबंधन विद्या में पारंगत थे. कौन सा चक्र मनुष्य शरीर में किस जगह स्थित है, यह सभी राजयोगी जानते हैं परन्तु पूज्य गुरुदेव इसको अपने मौखिक प्रवचनों में मनुष्य शरीर में इंगित करके खूब समझाते थे.

वे कहा करते थे कि पैग़म्बर हज़रत महौम्मद साहब ने जब चालीस दिन का रोज़ा रखा और चिल्ला चढ़ाया तब त्रिकुटी पर दूज का चन्द्रमा दिखाई दिया. उससे ऊपर पूर्णिमा का चन्द्रमा, और उससे भी आगे सूर्य के दर्शन होते हैं. यह

केवल कल्पना नहीं है. संतों ने इसका अनुभव किया है. वे जब अंतर कि चढ़ाई करते हैं तो जिस-जिस आंतरिक चक्र पर पहुंचते हैं वहां का हाल बताते हैं. उस चक्र पर कैसा शब्द हो रहा है, उसका क्या रूप है, वह किस देवी या देवता का स्थान है, इत्यादि . (पाठक चक्रों के विस्तृत वर्णन के लिए गुरुदेव की 'घटमार्ग' नामक पुस्तक देखें.)

मनुष्यों की देह में नीचे (गुदा का स्थान - मूलाधार चक्र) से लेकर ऊपर (ब्रह्मरन्ध् - सिर की चोटी के स्थान) तक २१ चक्र होते हैं. छै चक्र गुदा से लेकर माथे तक हैं (क्रमश : गुदा चक्र, इन्द्रीचक्र, नाभिचक्र , ह्रदयचक्र, कण्ठचक्र , आज्ञाचक्र).

इनसे ऊपर के छै चक्र (सहसदल कँवल, त्रिकुटी, सुन्न, महा सुन्न, भँवर गुफा, सत खंड) दिमाग़ में होते हैं जहाँ ग्रे मैटर (gray matter) है. उससे ऊपर के छै चक्र (अलख, अगम, अनामी और ३ गुप्त चक्र) ब्राइट मैटर(brtight matter) में हैं. जो ग्रे मटर में हैं उनका सम्बन्ध ब्रह्माण्ड से है, वहां भी छै लोक हैं जिनका जगाना इससे सम्बन्ध रखता है.

अधिकतर संतों ने १८ चक्रों का हाल लिखा है किन्तु गुरुदेव ने २१ चक्रों का होना बताया है. तीन चक्र गुप्त हैं जो वर्णन में नहीं आ सकते, केवल अनुभव किये जा सकते हैं. किसी एक चक्र पर पहुंचकर ठहर जाना संतों का लक्ष्य नहीं होता. इसलिए वे बराबर ऊपर उठते जाते हैं जब तक कि सब चक्रों को पार करके दयाल देश में नहीं पहुँच जाते. दयाल देश संतों का देश है. सत्यलोक असली बैठक उस परमात्मा की है जो तमाम ज्ञान और आनंद का भंडार है.

सब धर्मों ने और संतों ने इस बात को माना है कि ' पिण्डे सो ब्रह्माण्डे ' . परमात्मा ने मनुष्य को अपने रूप पर बनाया और अपना अंश दिया. इसीलिए परमात्मा अंशी और मनुष्य अंश कहलाया. जो गुण परमात्मा के हैं वही अंश रूप में मनुष्य में हैं. मनुष्य शरीर (जो दृष्टिगोचर होता है) तीन शरीरों की मिलौनी है . (१) स्थूल (२) सूक्ष्म और (३) कारण. परमात्मा के भी तीन शरीर हैं- (१) विराट (२) हिरण्यगर्भ , और (३) अव्यक्त .

जैसे मनुष्य चोले में आज्ञाचक्र पर आत्मा की बैठक है, नर देह में उसकी चैतन्य धाराएं या किरणें फैली हुई हैं और जैसे नर देह में आत्मा का स्थान ही असली ज्ञान का ,अमर जीवन और सच्चे आनंद का स्थान है, इसी तरह 'सत्य लोक' जिसे सत लोक भी कहते हैं, असली बैठक उस परमपिता परमेश्वर (मालिके कुल) की है जो तमाम ज्ञान और आनंद का भण्डार है.

इससे मालूम हुआ कि सच्चा सुख प्राप्त करने के लिए हरेक जिज्ञासु को आवश्यक है कि अपनी आत्मा को अपने स्थूल शरीर यानि बारह परदों (छै चक्र स्थूल शरीर के और छै मन के) (सूक्ष्म शरीर के) से हटा कर ऊपर की और चढ़ाई करे और निर्मल देश के छटे चक्र पर , जो कि असली भण्डार आत्मा का है, पहुँचावे तभी सच्चा सुख मिल सकता है और आवागमन के चक्र से छूट सकता है. यह चक्र अठारहवाँ स्थान है.

जिस विद्या से उपरोक्त लक्ष्य की प्राप्ति हो जाय उसे हिन्दुओं में 'राजयोग ' या 'चक्रबंन्धन ' और सूफियों में 'नक्शबंदी' कहा है. इसका प्रारम्भ तो आदिकाल से है परन्तु शुकदेव जी और राजा जनक के समय से इसका हवाला मिलता है.

अब प्रश्न यह उठता है कि वहां तक पहुंचे कैसे? केवल सच्चा देहधारी गुरु ही वहां पहुंचा सकता है, और कोई ज़रिया नहीं है. इसलिए सच्चे गुरु की तलाश करनी चाहिए. इसमें कोई संदेह नहीं है कि सच्चे गुरु का मिलना बहुत मुश्किल है परन्तु यह दुनियां आलमे इमकान है (इसमें कोई बात असंभव नहीं है) जिसको सच्ची लगन लगी है और जो सच्चा खोजी है उसको ज़रूर एक न एक दिन गुरु मिल जायेंगे. किसी किसी के तो घर पर ही आकर कृपा करते हैं, यह लेखक का निजी अनुभव है.

साधारण स्त्रियों में पंद्रह चक्र खुले होते हैं, शेष सब बंद होते हैं. उनकी बनावट ही ऐसी होती है. कुछ स्त्रियां भी ऐसी होती हैं जिनके अठारह चक्र खुले होते हैं, जैसे मीरा बाई, सहजो बाई, इत्यादि. साधारण स्त्रियों के चक्र देवी देवताओं के स्थान तक ही खुले रहते हैं. इससे यह मतलब नहीं है कि स्त्रियां अठारहवें स्थान तक पहुंचने की अधिकारी नहीं हैं . गुरु की सेवा और कृपा से सब कुछ हो सकता है और होता है. यहां बात केवल बनावट (constitution) की है. स्त्रियां अधिकतर देवी देवताओं की पूजा करती हैं.

जानवरों यानी पशुओं में केवल तीन चक्र खुले रहते हैं. गुदा, इन्द्रि और नाभि. पेट भर लेना नाभि चक्र, इन्द्रिय भोग कर लेना, इन्द्रिय चक्र और पड़े रहना (आलस) गुदा चक्र. इन्हीं ३ चक्रों से वे अपना सांसारिक जीवन व्यतीत करते हैं . शेष सब बंद रहते हैं. उनको खोला नहीं जा सकता, उन पर डॉट लगे होते हैं यानी चक्र की जगह केवल बिंदु होते हैं.

जैसा कि ऊपर आ चुका है, मनुष्यों में सबसे निचला और पहला चक्र गुदा के स्थान पर होता है जिसे मूलाधार भी कहते हैं. इस चक्र के अधिष्ठाता गणेश जी हैं जिनका रंग लाल है. पंडित लोग पूजा कृते समय मिटटी का डेला रखकर गणेश जी का आह्वान करते हैं. यह चक्र पृथ्वी (मिटटी) प्रधान है. दूसरा चक्र इन्द्री के स्थान पर होता है जिसे स्वाधिष्ठान भी कहते हैं. इसका तत्व जल है. यह ब्रह्मा जी (उत्पत्ति करता) का स्थान है. तीसरा चक्र नाभि के स्थान पर है. इसे नाभि चक्र कहते हैं. यह विष्णु जी का स्थान है जो पालनकर्ता हैं. यहां का रंग सफेद है. चौथा चक्र दिल के स्थान पर है जिसे 'ह्रदय चक्र' कहते हैं. यहां के अधिष्ठाता शिव भगवान हैं पाँचवा चक्र कण्ठ के स्थान पर है. यह दुर्गा का स्थान है. छठा चक्र आज्ञा चक्र है जो दोनों भोहों के बीच का स्थान एक इंच (कहीं पर ३ इंच भी लिखा है) भीतर की और है. वहीं प्रकाश है. जब मनुष्य तम में बरतता है तो यह प्रकाश नहीं आता. तम माने इन्द्रियां और उनके भोग. इन्द्रियों को वश में करने पर ही प्रकाश दिखाई देगा. यह छैह चक्र पिण्ड शरीर के कहलाते हैं. इससे ऊपर के ६ चक्र और उनसे ऊपर ब्रह्माण्ड के चक्र हैं.

इसका तरीक़ा किसी वक्त के पूरे संत सतगुरु से सीखना चाहिए. जो स्वयं रास्ता चल चुका है वही रास्ता बताएगा भी. इस रास्ते में खुश-ऐतक़ाद (विश्वासी) और मज़बूत इरादे (जिनकी इच्छा शक्ति बलबान हो) वाले ही क़ामयाब होते हैं. कम मेहनत यानी आलसी और मठ्ठरों के लिए यह रास्ता नहीं है

और मतों में पहले मूलाधार (गुदा चक्र) को जाग्रत करने का अभ्यास कराते हैं. प्राणायाम और हठयोग की क्रियाओं से जब उस स्थान को जाग्रत कर लेते हैं तब इन्द्रिय के स्थान पर आ जाते हैं . वहाँ से भी प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं से उसे और ऊपर उठा कर नाभि चक्र, ह्रदय चक्र, कण्ठ चक्र और ऊपर के चक्रों तक ले जाते हैं. यह क्रियाएं बड़ी कठिन हैं. इसमें समय बहुत लगता है और प्रत्येक व्यक्ति का स्वास्थ भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता.

संतों का तरीक़ा इससे न्यारा है. इनके यहां नीचे के तीन चक्र (गुदा, इन्द्रिय और नाभि) को छोड़ दिया जाता है. अभ्यास ज़्यादातर ह्रदय चक्र या आज्ञा चक्र से शुरू करतें हैं. इन चक्रों के साधन से नीचे के चक्र अपने आप जाग्रत हो जाते हैं, समय की भी बचत हो जाती है. गुरु के बताये अभ्यास के करने से ऊपर की चढ़ाई करके जो गुरु कृपा और गुरु की मदद के बिना नहीं होती, सत्पुरुष के धाम और उसके बाद संतों के धाम यानी दयाल देश तक पहुंच जाता है जहां से लौट कर फिर आवागमन के चक्र में नहीं पड़ता. गुरुदेव जिज्ञासु की पात्रता देखकर ह्रदय चक्र या आज्ञा चक्र से शुरू कराते थे.

यह हुआ अभ्यास जो नीचे से ऊपर को किया जाता है. दूसरा है 'सत्संग' . यह क्रिया ऊपर से नीचे की तरफ होती है. इसमें गुरु या सत्संग कराने वाला अपने ख्याल को परमात्मा के चरणों में लगाता है और वहाँ से ईश्वर की कृपा (जिसे सूफी ' फ़ैज़ ' कहते हैं, सिख भाई 'अमृत ' कहते हैं, ईसाई लोग 'ग्रेस' (grace) कहते हैं. अपना-कर सत्संगियों पर अपनी इच्छा शक्ति से फैलाता है. इस तरह ऊपर से कृपा की धार को लेकर नीचे मिलाता है जिसमें अभ्यासी यह ख्याल करता है कि प्रकाश या आत्मा की धार ऊपर से आ रही है और हमारी चोटी के स्थान (medulla oblongata) पर उतरती हुई सारे शरीर में प्रवाहित हो रही है. उस धार में वह चार चीज़ों का आभास करता है - ज्ञान, प्रेम, प्रकाश और आनंद. इसी से जीवन है. यदि यह धार नहीं है तो जीवन सम्भव नहीं है.

संतों के पास दो ही चीज़ें हैं. एक दीनता और दूसरा प्रेम. वह इन्हीं से जन-साधारण की सेवा करते हैं. वह सब पर अपनी कृपा की धार डालते हैं. यदि अभ्यासी का ध्यान उधर लगा हुआ है, वह सचेत है और उस धार को ग्रहण कर रहा है तो अवश्य लाभ होगा.

हमारा असली रूप क्या है ? हम आत्मा हैं, हम ईश्वर हैं. हमारे असली रूप पर मन और माया के पर्दे पड़ गए हैं जिनसे वह छिप गया है. अभ्यास यह है कि इन पर्दों को झीना (thin) करते चलो. बादल जितने गहरे होंगे, सूरज का प्रकाश उतना ही दबा हुआ होगा. यदि वे झीने होते जायेंगे तो सूरज का प्रकाश उतना ही साफ़ नज़र आएगा, अपनी

इन्द्रियों का दमन करो, मन की इच्छाओं को इतना झीना करो जिसके बिना काम न चले तब देखोगे कि प्रकाश ही प्रकाश है.

गुरु या परमात्मा का प्रेम तो गुरु हर समय देते ही रहते हैं और परमात्मा का प्रेम उसके अंतर के अंतर में मौजूद ही है,और उसी से उसका रिश्ता उस परमात्मा से मिला हुआ है. अगर ऐसा न हो तो किसी से उसका रिश्ता बंध ही नहीं सकता और घर की तरफ लौटने के कोई मायने नहीं हैं. लेकिन गुरु या परमात्मा का प्रेम उसी समय इंसान क़बूल करता है, जब वो इन्द्रियों के भोग, इन्द्रियों की वासनाओं और बुद्धि के तर्क से ऊंचा हो जातां है.

गुरु के बताये हुए ध्यान करनेआत्मा को शक्ति मिलती है और प्रेम पैदा होता है. और शब्द के सुनने से मन शुद्ध होता है, जिससे आचरण ठीक होते हैं और आदमी सत पर आ जाता है.

शब्द सुनाई देने पर ज़ुबान (जिह्वा) से ' ॐ ' के जाप की ज़रूरत नहीं है. उस शब्द को ही 'ॐ' ख्याल करना चाहिए और अगर शब्द भी बंद हो जाता है और कुछ होश नहीं रहता तो ये हालत बहुत अच्छी है.

' शून्य' के स्थान पर 'ॐ' की आवाज़ हर समय आपको बुला रही है. यही वह डोर है जिसको पकड़ कर अभ्यासी ईश्वर तक पहुँचता है. यह सीधी सड़क है. हम उसे पकड़ नहीं पाते. जब तक मन वासनाओं से और इच्छाओं से ख़ाली नहीं होगा, हमें संत की परख नहीं आएगी. इच्छाओं और वासनाओं का का पर्दा उस आवाज़ को घेरे हुए है. यदा कदा गुरु के सत्संग से यह पर्दा थोड़ी देर के लिए हट जाता है तो हम आनंद का अनुभव करते हैं. ज्यों ही वह पर्दा फिर से पड़ा, आनंद जाता रहता है. वह तो गुरु कृपा थी जिससे वह temporary (अस्थायी) तौर पर हट गया था. निज कृपा यही है कि वासनाओं की डोर को काट दें ताकि वह पर्दा सदा के लिए दूर हो जाये और हम उस आनंद के भंडार में समा जाएँ.

(२)

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज की आध्यात्मिक शिक्षा का तरीक़ा प्रेम का तरीक़ा था. प्रेम के माध्यम से ही उन्होंने पूज्य लाला जी महाराज से आध्यात्मिक शिक्षा प्राप्त की और प्रेम के माध्यम से ही उन्होंने इसका प्रचार और प्रसार किया. उनमें इतना प्रेम भरा हुआ था कि जिसकी कोई थाह नहीं ले सकता था. हाँ, जो भी उनके सम्पर्कमें आया, बालक, बूढा, जवान, महिलाएं, बहनें, बेटियां, उनमें से प्रत्येक को यही कहते सुना गया कि जितना प्रेम गुरुदेव उनसे करते हैं, अन्य किसी से नहीं करते.

वे कहा करते थे कि हमारे यहां गुरु कृपा पर अधिक भरोसा किया जाता है. यह प्रेम का मत है. गुरु सदा ईश्वर प्रेम के आनंद में मग्न रहते हैं. यदि आपका उनके साथ प्रेम होगा तो उसके साथ-साथ उनकी आत्मा का प्रकाश भी आपके पास पहुंच जायेगा. जब गुरु अपना दिल ईश्वर-प्रेम से भर लेता है और लगातार चौबीसों घंटे भरता ही रहता है तो वह भीतर

से इतना लबालब हो जाता है कि छलकने (overflow करने) लगता है और जो वातावरण उसके चारोँ तरफ होता है उसे तर (saturate) कर देता है जिसका प्रभाव वहां बैठे लोगों पर पड़ता है और वे भी शांति तथा ईश्वर-प्रेम का अनुभव करते हैं.

गुरुदेव ऐसे ही संत थे. उनके चरणों में बैठकर स्वतः भीतर से प्रेम हिलोरें मारता था, अश्रुपात होने लगता था, तबियत यही करती थी कि इन्हें छोड़कर कहीं मत जाओ. ऐसा आकर्षण था उनके प्रेम में.

कभी-कभी उनके चरण-स्पर्श करने पर ऐसा लगता था जैसे बिजली ने हल्का सा करंट मार दिया हो. उस आनंद में शरीर की सुधि खो जाती थी.

संत का जो तेज है उसके साथ-साथ ईश्वर प्रेम मौजूद है. मौखिक यह कह देने से वह शिष्य में प्रवेश नहीं करता. संत के मस्तिष्क में या ह्रदय में जो ईश्वर प्रेम है वह परस्पर प्रेम द्वारा ही शिष्य के मस्तिष्क में उतर जाता है. सूफी भाषा में यह ' इल्म सीना ' है 'इल्म सफ़ीना' नहीं (आंतरिक विद्या है, मौखिक नहीं) मुख से नहीं कहा जाता, मन से मन में उतर जाता है.

इस प्रेम मार्ग में शिष्य का गुरु के प्रति पूर्ण समर्पण होना चाहिए और गुरु को शिष्य से प्रेम तथा सहानुभूति होनी चाहिए. केवल प्रेम और दीनता ही एकमात्र ऐसे माध्यम हैं जिनके द्वारा गुरु से शिष्य में आध्यात्मिकता प्रवेश हो सकती है. इससे सरल और कोई दूसरा साधन नहीं है.

प्रेम के साथ उनका जीवन ' सेवा' को लिए हुआ था. कोई भी हो, उसे सांसारिक अथवा शारीरिक कष्ट में देखकर उनका ह्रदय द्रवित हो उठता था. विधवाओं की सेवा, उनकी बीमारी में अपने खर्च पर दूर-दूर ले जाकर उनका इलाज कराना. किसी सत्संगी भाई या बहिन के घर कोई बीमार हो तो वहां वह अपना दवाखाना बंद करके दौड़े चले जाते थे, उसे सांत्वना देते जिससे उसका आधा दुःख तो वैसे ही हर लेते थे, फिर स्वयं एक सुयोग्य चिकित्सक के नाते उसका परीक्षण करते, रोग निदान करते और औषधि आदि का प्रबंध करते. किसी से कुछ लेने का तो प्रश्न ही नहीं उठता.

बीमार सत्संगियों को बहुधा अपने निवास पर लाकर रखते थे, उनके भोजनादि और दवा की भी व्यवस्था करते थे और जब वह ठीक हो जाता तब उसे जाने की आज्ञा देते थे. उनका सारा व्यवहार प्रेम-मय था. प्रेम के द्वारा ही उन्होंने अपने प्रेमी-सेवकों को ' दीन ' और 'दुनियां' (लोक और परलोक) दोनों दीं.

वे कहा करते थे कि प्रेम में दूरी नहीं होती. सेवक का निजी अनुभव है कि उसकी पत्नी बचपन से ही बीमार रहती थीं. विवाहोपरांत भी बीमारी वैसी ही रही, बल्कि बढ़ती गयी. आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी किन्तु उन्ही की कृपा से उनका प्रेम मिला हुआ था. जब कभी रोग ने अधिक प्रभाव दिखाया तो रोना आ जाता था और बिना सूचना दिए आप

दौड़े चले आते थे. अपने हाथों से पत्नी को उठाकर तांगे में लिटाते और डॉक्टर के यहां अपने खर्चे पर जाते. यहां तक कि उसकी चप्पलें अपने हाथों से उठाकर तांगे में रख लेते थे. मुझ से कह देते थे कि आप अपनी नौकरी पर जाइये. ऐसा अनेक बार हुआ. तीन बार उसे जीवन दान दिया. उनकी ऐसी ऐसी बातें लिखने से तो किताबें भर जाएँगी. कहने का आशय यह है कि अगर कोई दुःख दर्द में तन, मन, धन से साथ देने वाला था, अगर कोई सच्ची सहानुभूति रखने वाला था, अगर कोई दर्द-मंद था, टूटने वाला दिल रखता था और दूसरों के लिए अपने आप को क़ुर्बान करने वाला था, सच्चा हितेषी और हमदर्द था, सच्चा पिता था, तो वे थे.

वे कहा करते थे कि 'गुरु' कहने में दूरी का आभास होता है, कोई रिश्ता मान लेना चाहिए. उनके पुत्रवत सेवक उन्हें ' चाचा जी ' कहते थे. उनके अपने बेटे भी उन्हें ' चाचा जी ' शब्द से सम्बोधित करते थे. बहनें 'भाई साहब' बच्चे 'बाबा जी' ' नाना जी' ' मांमाँ जी' जैसा रिश्ता उनके माता-पिता मानते थे, तदनुसार सम्बोधित करते थे.

सत्संगियों में आपस में प्रेम पूर्वक व्यवहार करते देखकर उन्हें बहुत अच्छा लगता था. वे कहते थे कि जहां आपस में मोहब्बत से रह रहे हों वहीं सतयुग है. जहां एक दूसरे से differ करते हों (भेद भाव) वहीं कलियुग है. दैवी जीव वहाँ है जहां सबके साथ प्रेम है cooperation (सहयोग) है.

इश्क़े मजाज़ी (वासना-युक्त प्रेम) और इश्क़े हक़ीक़ी (सच्चे मालिक या गुरु से प्रेम) में कोई खास फ़र्क़ नहीं है, सिर्फ़ ख़्याल का मोड़ना है, नज़रों का बदलना है. प्रेमी शिष्य को कोई साधन नहीं करना पड़ता. वह गुरु की रहनी-सहनी को निगाह में रखता है. कोई काम दिखाने के लिए नहीं करता है बल्कि गुरु की ज़रूरत का कुल सामान जुटा कर अलग हो बैठता है. उसको बतलाना नहीं पड़ता. वह गुरु के ख़्याल को भाँपता है और उसी के मुताबिक़ कार्यरत होता है. ऐसा शिष्य उत्तम शिष्य है.

गुरु की सेवा करने से गुरु का प्रेम मिलता है और गुरु अपनी दयालुता से जिज्ञासु की आंतरिक उन्नति करता है. इस बात को अपने निज अनुभव के आधार पर मैं, दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहूंगा कि एक मात्र गुरु की सेवा (चाहे वह कितनी भी तुच्छ क्यों न हो) करने से ही गुरु का प्रेम मिलता है. शिष्य में इतनी योग्यता कहाँ कि वह गुरु से प्रेम कर सके. थोड़ी सी सेवा से प्रसन्न होकर गुरु प्रेम का बीज शिष्य में डाल देते हैं.चंद्र और चकोर की नाईं, गुरु की रहनी-सहनी के अनुरूप अपने जीवन को प्रेम पथ पर सेवा में ढाल देने से वह प्रेम का बीज प्रस्फुटित और पल्लवित होता है और तब एक दूसरे के देखे बिना चैन नहीं पड़ता. विरह वेदना जाग्रत हो उठती है. सब क़ायदे क़ानून खत्म हो जाते हैं. दुनियां के बंधन टूटते जाते हैं, एक दूसरे में लय होते जाते हैं. निस्बत क़ायम हो जाती है, आंतरिक सम्बन्ध जुड़ जाता है, telepathy की स्थिति आ जाती है, जो बात एक सोचता है वह दूसरे पर उतर जाती है. यही था उनकी प्रेम साधना का उद्देश्य. वे कहा करते थे कि प्रेम में दूरी नहीं है.अगर सच्चा प्रेम है तो प्रियतम (गुरु) और प्रेमी (शिष्य) हर वक्त साथ रहते हैं

यदि गुरु सच्चा है तो उसका प्रेम आख़िर में परमात्मा तक पहुंचा देता है. प्रेम के आकर्षण में 'पिण्ड' , 'अण्ड' और 'ब्रह्माण्ड ' के सब चक्र स्वतः ही खुलते चले जाते हैं. अनहद शब्द सुनाई देते हैं, किन्तु सतगुरु के प्रेम के आकर्षण में प्रेमी शिष्य आंतरिक चढ़ाई करता चला जाता है और चक्रों या शब्दों के फेर में नहीं पड़ता. यदि उस और उसका ध्यान आकर्षित भी होता है तो इस अन्देशे से वह कहीं उस स्थान पर अटक कर न रह जाये, सतगुरु उसे वहां ठहरने नहीं देते, प्रेमाकर्षण में ऊपर चढ़ा देते हैं . जब शिष्य पूर्णता को प्राप्त हो जाता है, फिर ये बंदिशें नहीं रहतीं .

प्रेम सेवा से बढ़ता है. गुरु की सेवा शरीर से करो, रुपये-पैसे से सत्संग की सेवा करो. गुरु की तंदुरुस्ती और उसके उद्धार के लिए परमात्मा से प्रार्थना करो. सबका भला चाहो. जो सेवा कर सको, करो. जो काम करने के लिए बतलाया जाय उसे दिल लगा कर ख़ुशी से करो. इससे गुरु के दिल में और ज़्यादा मौहब्बत होती है जिसका असर शिष्य पर पड़ता है और गुरु के प्रति उसका प्रेम बढ़ता है.

गुरु अपना और परमात्मा का प्रेम हर समय देते ही रहते हैं. परमात्मा का प्रेम तो उनके अंतर के अंतर में मौज़ूद ही है. उसी से उनका रिश्ता परमात्मा से जुड़ा हुआ है. अगर ऐसा न होता तो फिर किसी का उससे रिश्ता बन ही नहीं सकता और अपने असल घर (दयाल देश) की तरफ़ लौटने के कोई मायने ही नहीं. लेकिन गुरु या परमात्मा का प्रेम उसी समय शिष्य ग्रहण करता है जब इन्द्रियों के भोग, वासनाओं और बुद्धि की चतुराई से ऊपर हो जाता है.

आत्मा और परमात्मा का प्रेम कभी मरता नहीं. दब जाता है. इसी कारण यह कहा जाता है कि गुरु कभी मरता नहीं सिर्फ बिछुड़ना हो जाता है.

एक तरीक़ा ऐसा है, जो पूज्य गुरुदेव ने अपने कुछ प्रेमी-जनों के साथ उपयोग किया, जिससे थोड़े दिनों में अस्थायी तौर पर आत्मा का अनुभव हो जाता है और आचरण की पूर्णतयः शुद्धि, मन की गढ़त और बुद्धि की शुद्धि बाद में होती रहती है. यह तरीक़ा विशेष दशाओं में ही काम में लाया जातां है. इसमें दो शर्तें बहुत ज़रूरी हैं. पहली यह कि गुरु 'पूर्ण' हो दूसरी यह कि शिष्य 'फिदायी' हो यानि गुरु पर पूर्णतया न्यौछावर हो और सिवाय परमात्मा के दर्शन के और कुछ न चाहता हो. गुरु की आज्ञा पालन के सिवाय उसे और कोई धुन न हो. जब ये दोनों हालतें मिलती हैं तभी आसानी से काम बनता है. यह तरीक़ा "कश्फी ' कहलाता है अर्थात गुरु अपनी खेंच शक्ति द्वारा शिष्य की सुरत को ऊपर लेजाकर दर्शन करा देता है, परन्तु ऐसे दर्शन स्थायी नहीं होते. अभी संस्कार कटने शेष हैं, इच्छाओं पर विजय प्राप्त करनी है, मन और माया के देश से पार जाना है, तब कहीं स्थायी हालत होती है. यह शिष्य को गुरु के शरणागत रहते-रहते स्वयं करना पड़ता है. वह रास्ते से भटकता नहीं.

दूसरा तरीक़ा 'कस्बी' है जिसमें शिष्य को अपनी महनत और अभ्यास से गुरु का सहारा लेकर ऊपर की चढ़ाई करनी पड़ती है

वे कहा करते थे कि कोई भी मज़हब, पंथ या मत आपको पत्थर नहीं बनाता कि पत्थर की तरह हो जाओ, बल्कि बताता है कि संसार में सबसे प्रेम करो, यहां तक कि उससे भी जो तुम्हारी जान का दुश्मन है लेकिन हरेक में जलवा (दर्शन) अपने प्रीतम का देखो. यही सीधा सच्चा रास्ता इस असली प्रेम को प्राप्त करने का है.

असली प्रेम वह है जो दूसरों की भलाई के लिए हो और उसमें अपना कोई स्वार्थ शामिल न हो. इस हिसाब से सिवाय परमेश्वर के (या गुरु जो उसका देहधारी रूप है) और उन भक्तों के जो उसमें लय हो चुके हैं और ईश्वर के गुण प्राप्त कर चुके हैं, और कोई सच्चा प्रेम नहीं कर सकता.

वे कहा करते थे कि जिन चीज़ों से अपने और गुरु के बीच फ़र्क आवे उन्हें छोड़ दो, ज्ञान की तलवार से काट दो. हम तो प्रेम मार्ग पर चलने वाले हैं. हमारा प्रियतम तो ईश्वर है. उसे पाने के लिए कुछ भी करना पड़े, क़बूल है. चाहे नीच बना दो, चाहे हिन्दू या मुसलमान या और कुछ, पर हमें हमारे प्रीतम ईश्वर से मिला दो. जो हमारे वंश के पूर्वज हैं, जिनकी कृपा के बूते पर हम इस रास्ते पर चल रहे हैं, वे चाहे हिन्दू हैं या मुसलमान, इस बात को मन में मत लाओ. जहां सांसारिक मामला हो वहां दुनियाँ से डर कर रहना चाहिए लेकिन परमार्थ के मामले में ज़रूरत पड़ने पर समाज कजे सब बंधन तोड़ देना चाहिए.

इस सिलसिले की निस्बत -(आत्म सम्बन्ध) माशूक़ाना ही, इसमें पहले मुर्शिद (गुरु) को प्रेम पैदा होता है और फिर मुराद (शिष्य) को, और दोनों मिलकर एक हो जाते हैं. यही असली तालीम है, यही प्रेम मार्ग है. जितनी उसमें कमी रहती है उतनी ही कमी तालिब (जिज्ञासु) में रह जाती है. अगर दोनों मिलकर एक हो जाएँ तो सिर्फ नाम के लिए फ़र्क़ रह जाता है. उसी को निस्बत (आंतरिक सम्बन्ध) की मज़बूती कहते हैं. यही सच्चा प्रेम मार्ग है

जो अभ्यासी आशिक़-मिज़ाज़ (प्रेमी स्वभाव) के होते हैं अर्थात जिनमें प्रेम का भाव अधिक होता है उन्हीं को गुरुमूर्ति का ध्यान करने की इज़ाज़त दे देते हैं. ज़ुबान (मुख) से नहीं कहते. हरेक अभ्यासी के लिए गुरुमूर्ति का ध्यान नहीं बतलाया जाता. ह्रदय पर गुरुमूर्ति का ध्यान, या अंदर शब्द का अभ्यास, या प्रकाश का ध्यान - यह अभ्यासी की हालत पर निर्भर करता है. जैसा जिसको ठीक समझते हैं वैसा अभ्यास उसके लिए तज़बीज करते हैं. शब्द का अभ्यास देरपा (lasting) और बेहतरीन (श्रेष्ठ) है. यह सीधी सड़क है जिसमें भटकाव नहीं है. प्रकाश और गुरुमूर्ति का ध्यान डिग सकता है. पर यदि यदि गुरु से प्रेम पैदा हो गया और गुरु मुक़्क़मिल (पूर्ण है) तो अकेला वही प्रेम का खिचाव निकाल ले जाता है. निरन्तर प्रेम से गुरु और शिष्य के बीच आंतरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है तो एक के विचार दूसरे के ऊपर उतर आते हैं. सूफियों में इसे 'निस्बत ' कहते हैं . अगर किसी ने गुरु से निस्बत हासिल कर ली यानी उससे आंतरिक सम्बन्ध जोड़ लिया है तो वह दूर बैठे भी फ़ायदा उठा सकता है.

गुरु के निजी रूप का (प्रकाश रूप का) नूरानी रूप का ध्यान किया जाता है. चाहे ध्यान में पहले उसका स्थूल शरीर दीखता हो मगर वह नूरानी (प्रकाश रूप) है . अगर गुरु की तस्बीर का ध्यान करते हो तो यह तो मूर्ती पूजा हो गयी. जिसका ध्यान करोगे वही मिलेगा. अगर तस्बीर या मूर्त्ति का ध्यान करते हो तो मरने के बाद वही मिलेगी. इज़्ज़त के तौर पर घर में तस्बीर का रख लेना और बात है. सामने बैठकर भी जो ध्यान किया जाता है वह उनके नूरानी रूपों (प्रकाश रूप) का ध्यान किया जाता है. वह प्रकाश बराबर सूक्ष्म होता जाता है और आगे जाकर सत्पुरुष से मिला देता है.

अगर सच्चा गुरु मिल गया है तो वही तीर्थ व्रत है. कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है.

राम सन्देश मासिक पत्रिका

आपने अपने गुरुदेव पूज्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज की आध्यात्मिक शिक्षा के प्रचार-प्रसार के लिए एक मासिक पत्रिका का प्रकाशन जारी किया. इसका सबसे पहला अंक एटा से लगभग १९५२-५३ के आस-पास निकला था जो एक छोटे समाचार पत्र के एक पन्ने का था. तदुपरांत यह जारी न रह सका. सितम्बर १९५४ से राम-सन्देश ग़ज़ियाबाद से प्रकाशित होता रहा है और इस प्रकाशन के अब ३२ वर्ष हो रहे हैं. सत्संग के प्रकाशनों के लिए आपने रामाकृष्ण कॉलोनी ग़ाज़ियाबाद, में एक छापाखाना (printing press) भी खोला था जिसमें अनेकों प्रकाशन छपे, ,परन्तु उचित प्रबंध न होने के कारण उसमें बहुत नुक्सान उठाना पड़ा . अतःउसे बंद कर दिया गया.

अध्याय ११

संस्मरण

(१)

पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के जीवन की विभिन्न घटनाएं चाहे वह उनके गुरुदेव पूज्य महात्मा राम चंद्र जी महाराज से सम्बन्धित हों अथवा उनके प्रेमी सेवकों से संबंधित हों, समय-समय पर रामसन्देश मासिक पत्रिका में प्रकाशित होती रहीं हैं. उन सबको इस छोटी सी पुस्तिका में देना सम्भव नहीं है, अतः केवल थोड़ी सी घटनाएं ही यहां दी जाती हैं.

(१) एक समय की बात है कि गुरुदेव ग्रीष्म ऋतु की एक संध्या को फतेहगढ़ में अपने एक मित्र के साथ गंगा जी के किनारे वायु सेवन के लिए गए. लौटने में देर हुई. कृष्ण पक्ष की अँधेरी रात थी, चारों और अंधकार छाया हुआ था जिसके कारण रास्ता ठीक नहीं दिखाई देता था. गुरुदेव आगे-आगे थे और उनका मित्र पीछे-पीछे था. एक पगडंडी सी दिखाई दी उस पर दोनों चल पड़े. आगे जाकर वह अचानक एक ओर को कूद गए. वहां एक गहरा कुआँ था ओर वह पगडंडी नहीं थी बल्कि कुँए की वह नाली थी जिसमे से पानी खेतों में जाता था. उन्होंने भगवान को धन्यवाद दिया कि यदि एक ओर को न कूदते ओर सामने ही कूदते तो कुएं में गिर जाते. जब लौट कर आये तो पूज्य लालाजी की सेवा में गए. उन्होंने पूछा कि तुम कहाँ गए थे. गुरुदेव ने सब हाल बता दिया. पूज्य लाला जी ने कहा तुम बहुत बेपरवाह हो गए हो, मुझे तुम्हारे साथ हर समय रहना पड़ता है .अगर तुम उस समय कुएं में गिर जाते तो तुम्हें कौन निकालता. ऐसी असावधानी ठीक नहीं है. सावधानी से रहना चाहिए.

वास्तव में सच्चा गुरु प्रेमी शिष्य के साथ सदा परछाई की तरह रहता है ओर हर संकट से उसको निकालता है.

(२) पूज्य गुरुदेव महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज लड़कपन में ही जबकि वे विद्यार्थी जीवन में थे , पूज्य लाला जी महाराज की सेवा में जाने लगे थे. जब लगभग छह महीने व्यतीत हो गए तब उन्हें ज्ञात हुआ कि लाला जी महाराज दीक्षा भी देते हैं ओर तब जिज्ञासु 'शिष्य' कहलाने योग्य होता है. आपने भी निवेदन किया कि आपको भी दीक्षा देकर शिष्य बना लिया जाय. परन्तु लाला जी ने उत्तर दिया कि अभी ठहरो और प्रतीक्षा करो. तुम्हारे विचार अभी शुद्ध नहीं हैं. गुरुदेव को यह बात अच्छी नहीं लगी. प्रेम अँधा होता है. पूज्य लाला जी पर गुरुदेव में प्रेम जन्मजात था. उन्होंने सोचा कि सबको तो दीक्षा देते हैं किन्तु मुझ पर यह कृपा नहीं की. दिल में सोचा कि क्या ही अच्छा हो कि मैं लाला जी को हलाक़ कर दूँ (जान से मार दूँ) ताकि वे यदि मुझे दीक्षा नहीं देते तो दूसरों को भी न दे पायें. मन में ऐसा विचार लेकर

जब गुरुदेव वहां से चले तो पूज्य लाला जी ने उनसे कहा - ऐसा मत सोचो, नाराज़ मत होओ. सवेरे प्रसाद ले आना, मैं तुम्हें दीक्षा दे दूंगा. अगले दिन उनकी दीक्षा हो गयी.

(३) गुरुदेव का अपने लड़कपन में आर्यसमाज की और झुकाव था जिसके कारण उनके मन में जाति भावना की झलक लाला जी महाराज ने देखी. शायद इसीलिए उन्होंने दीक्षा के लिए कुछ समय और प्रतीक्षा करने के लिए कहा था. हमारे इस आध्यात्मिक परम्परा के पूर्वज मुसलमान थे और यह बात गुरुदेव को ज्ञात थी. इसीलिए कि कोई जात-पाँत का भेद भाव उनके मन में न रहे, पूज्य लालाजी ने गुरुदेव से कहा था कि तुम्हारे विचार अभी अशुद्ध हैं. उन्होंने गुरुदेव को भी परामर्श दिया था कि तुम परमसन्त मौलवी अब्दुल ग़नी खां साहब के पास भौगाव चले जाओ और उनसे दीक्षा ले लो. शायद धार्मिक भेद-भाव की भावना ही मन में छिपी रही होगी जिसके कारण उन्होंने पूज्य मौलवी साहब से उपदेश नहीं लिया और यही निवेदन किया - " लाला जी, आप शिष्य बनाएंगे तो उपदेश ले लूँगा अन्यथा और किसी के पास मैं नहीं जाऊँगा. इस मामूली सी बात को जड़ से उखाड़ डालने के लिए पूज्य लाला जी महाराज ने गुरुदेव की लड़कपन की बुद्धि को किस तरह शुद्ध किया यह आगे पढ़िए.

एक मुसलमान सज्जन जिनका नाम अब्दुल सलाम था, पूज्य लाला जी की सेवा में आया करते थे. पूज्य गुरुदेव के मित्र थे. सामाजिक विचारों के होने के कारण गुरुदेव उनके साथ पान तक नहीं खाते थे. जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि गुरुदेव ने दीक्षा ले ली है तो वह बोले कि तुम अब मुसलमान हो गए हो. नाम बदल लो.

उसी दिन से गुरुदेव ने घर के बर्तनों में खाना-पीना छोड़ दिया. रोटी हाथ पर रख कर खाते थे और पानी चुल्लू से पी लेते थे. आपने यह सब बातें पूज्य लाला जी महाराज को लिख दीं और यह भी लिखा कि कहिये तो नाम बदल लूँ. उनका पत्र पढ़ कर पूज्य लाला जी परेशान हो गए. बेचारे आधी रात को चलकर छात्रावास में पहुंचे और गुरुदेव से बड़े प्रेम भरे शब्दों में कहा- " मैं इसी वजह से कहता था कि अभी उपदेश मत लो. तुम जान लेने लगे. मैने तुम्हें (अपनी शरण में) ले लिया. अब तो मैं तुम्हें छोड़ूंगा नहीं, तुम भले ही छोड़ दो."

पूज्य लाला जी महाराज ने गुरुदेव को अपना मुख्य आध्यात्मिक उत्तराधिकारी बनाया था और आज्ञापत्र द्वारा उनको सम्पूर्ण आचार्य पदवी (इज़ाज़त ताआम्मा) लिखित रूप में दी थी और यह आदेश दिया था कि मेरी मृत्यु के बाद इस इज़ाज़तनामे (आज्ञा पत्र) को भौगांव जाकर पूज्य मौलवी अब्दुलगनी खां साहब से तसदीक़ करा लेना.

पूज्य लाला जी के निर्वाण के बाद एक दिन गुरुदेव भौगांव पूज्य मौलवी साहब की सेवा में गए और उनके द्वार पर पहुंच कर किसी सेवक के द्वारा अपने आने की सूचना भेजी.पूज्य मौलवी साहब प्रेम के अथाह सागर थे, जातिभेद से बहुत ऊंचे थे और पूज्य लाला जी महाराज के शिष्यों को विशेष प्रेम और आदर देते थे. उस समय उनकी बृद्धावस्था थी और वैसे

भी शरीर से दुर्बल थे. स्वयं बाहर निकल कर आये, गुरुदेव की अगवानी की और घर में ले जाकर अपने पास बिठाया, कुशल क्षेम पूछी और भोजन के लिए आग्रह किया.

जहां तक मेरा निजी अनुभव है , कोई भी संत महात्मा, चाहें वह किसी भी धर्म या सम्प्रदाय का हो, आगुन्तक को अपने यहां से बिना भोजन कराये नहीं जाने देता. अयोध्या जी के परमहंस बाबा राममंगल दास जी महाराज से उनके किसी प्रेमी ने पूछा कि - " महाराज, आपकी उपासना क्या है ." उन्होंने सरलता पूर्वक उत्तर दिया कि, " मेरी उपासना यह है कि इस आश्रम से कोई उपासा न जाये." अन्य संतों का भी, जिनसे मुझे सम्पर्क करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ वे भी भोजन करने का ही आग्रह करते थे किन्तु मैं कहीं तो खा लेता था और कहीं नहीं भी खाता था. एक दिन मैने गुरुदेव से पूछा कि यदि कोई संत या फ़क़ीर भोजन या जलपान के लिए आग्रह करे तो मुझे क्या करना चाहिए. उन्होंने आदेश दिया कि उसे आदर-पूर्वक स्वीकारना चाहिए.

अस्तु, गुरुदेव के मन में जो जातिभेद का बीज अंश रूप में मौजूद था वह सामने आकर दीवार बन गया और उन्होंने पूज्य मौलवी साहब के आग्रह को टाल दिया. आज्ञापत्र की तसदीक़ के लिए उन्होंने कहा कि, " इस वक्त इसे मेरे पास छोड़ जाओ, मुंशी जी की (वे पूज्य लाला जी महाराज को मुंशी जी कहा करते थे) इज़ाज़त की तसदीक़ की क्या ज़रूरत है. अगर उनका यही मंशा था तो मैं तसदीक़ कर दूंगा, तुम आकर ले जाना."

गुरुदेव वापिस आगये. बैठ कर इस घटना पर सोच विचार किया और अपनी इस मामूली सी कमज़ोरी पर उनका ध्यान गया. कुछ दिनों बाद वे फिर पूज्य मौलवी साहब की सेवा में भौगांव गए और अपने आने की सूचना अन्दर भेजी. उस समय मौलवी साहब बहुत बीमार थे और इतने कमज़ोर थे कि चलना-फिरना भी उनके लिए दूभर था. उनकी जगह अगर कोई और व्यक्ति होता तो ऐसी परिस्थिति में किसी सेवक के द्वारा गुरुदेव को अन्दर अपने पास बुला लेता. परन्तु पूज्य मौलवी साहब का इख़लाक़ (आचरण) इतना उच्च कोटि का था कि वे उस बीमारी की हालत में भी दो सेवकों के कंधों पर हाथ रखे सहारा लेकर द्वार तक गुरुदेव की अगवानी करने आये, गले से लगाया, दोनों के नेत्र सजल हो गए और घर में जाकर गुरुदेव ने बड़ी श्रद्धा और प्रेम पूर्वक भोजन ग्रहण किया. आज्ञापत्र की तो तसदीक़ हो चुकी थी, केवल यह धार्मिक भेद-भाव का झीना सा पर्दा टूटना शेष था जो इस घटना से टूट गया. पूज्य मौलवी साहब ने तसदीक़ किया हुआ आज्ञापत्र पूज्य गुरुदेव को दे दिया जिसमें पुरानी वह तिथि पड़ी थी जब पहली बार तसदीक़ के लिए आये थे.

गुरुदेव ने कई बार अपने प्रवचनों में कहा है कि " हम तो प्रेम के मार्ग पर चलने वाले हैं. हमारा तो प्रियतम ईश्वर है.उसे पाने के लिए कुछ भी करना पड़े, स्वीकार है. चाहे नीच बना दो, चाहे हिन्दू, चाहे मुसलमान या और कुछ, पर हमें हमारे प्रियतम ईश्वर से मिला दो. जो हमारे आध्यात्मिक वंश के पूर्वज हैं जिनकी कृपा के बूते पर हम इस रास्ते पर चल रहे हैं, वे चाहे हिन्दू हैं या मुसलमान इस बात को मन में मत लाओ."

पूज्य लाला जी महाराज ने गुरुदेव को मोक्ष दे दी थी और यह बात उन्होंने अपने रजिस्टर में दर्ज़ कर रखी थी.

(४) सन १९१७ की बात है कि गुरुदेव ने स्वप्न देखा कि पूज्य लाला जी साहब के छोटे भाई महात्मा रघुवर दयाल जी (जिनको प्रेमी-जन " चाचा जी " कह कर पुकारते थे) लोगों को ध्यान करा रहे हैं और एक के बाद एक कई आदमी उनसे लाभान्वित हो रहे हैं. उस समय उनकी अवस्था अवधूतों जैसी है और जो भी उनसे तवज्जो लेता है, अवधूत हो जाता है. स्वप्न में ही आपने देखा कि चच्चा जी महाराज ने गुरुदेव को बुलाया और अपने सामने बैठने को कहा. गुरुदेव आँखें बंद किये उनके सामने बैठे थे और पूज्य चाचा जी तवज्जो शुरू करने ही वाले थे कि लाला जी साहब आ पधारे और कहने लगे कि इसके लिए अभी इसकी ज़रूरत नहीं है, इसको अभी दुनियाँ के खिलौनों से खेलने दो. पूज्य लाला जी ने स्वप्न में ही अपनी जेब से एक कागज़ निकाल कर गुरुदेव को दिया और कहा कि, " कुछ दिन इससे खेलो. " इसके बाद गुरुदेव की आँख खुल गयी. अगले दिन पोस्टमैन ने वैसा ही कागज़ लाकर दिया जिसमें लिखा हुआ था कि तुम्हारी नियुक्ति गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में लिपिक के पद पर की जाती है. आपने लिपिक का कार्यभार सम्भाल लिया और लगभग डेढ़ वर्ष तक उस पद पर कार्य किया.

(५) एक रात को पूज्य गुरुदेव पूज्य लाला जी महाराज कि यहां सो रहे थे. रात को लाला जी ने पीने के लिए पानी माँगा. जब तक गुरुदेव पानी लेकर आये तब तक लालाजी साहब की आँख लग गयी. गुरुदेव पानी लिए उनके सिराहने खड़े रहे कि कब आँख खुले और मैं पानी पेश करूँ. भोर हो गयी तब तक गुरुदेव पानी लिए खड़े ही रहे. लाला जी साहब जब उठे तो उन्हें पानी लिए देख कर कहने लगे-" नन्हे, क्या तुम रात भर पानी लिए खड़े रहे ?"

यह प्रेम और सेवा की अद्भुत घटना है.

(६) गुरुदेव डाक्टरी पढ़ने के लिए आगरा गए तो प्रवेश आवेदन पत्र में अपनी आयु कुछ कम लिख दी और उन्हें प्रवेश मिल गया. जब प्रवेश-पत्रों की छानबीन की गयी तो जिन्होंने ग़लत फ़ार्म भरा था वे लड़के निकाल दिए गए. गुरुदेव ने घबरा कर पूज्य लाला जी महाराज को पत्र लिखा जिसका उत्तर आया- " ताज्जुब है कि तुम्हें परमात्मा पर भरोसा नहीं है. वह सर्वशक्तिमान है, जो चाहे कर सकता है. उस पर भरोसा रखो, अपना सर्टिफिकेट दे दो और सही-सही बात कह दो और उसकी क़ुदरत का तमाशा देखो."

उन दिनों अस्पताल के सुपरिन्टेन्डेन्ट अँगरेज़ हुआ करते थे. गुरुदेव ने उनके सामने अपना प्रमाण-पत्र पेश किया और स्पष्ट कह दिया कि मेरी आयु २३ वर्ष है, गलती से २१ वर्ष लिखी गयी है. सुपरिन्टेन्डेन्ट कहने लगे " तुम्हारी असली आयु २१ वर्ष है और गलती से २३ वर्ष लिखी गयी है." गुरुदेव के प्रमाण-पत्र पर लिख दिया " by appearance 21" और कॉलेज में प्रवेश कर लिया.

(७) गुरुदेव को पूज्य लाला जी महाराज से बहुत प्रेम था. उन दिनों फतेहगढ़ में दूध की मलाई बहुत प्रसिद्ध थी. पूज्य लाला जी महाराज को मलाई पसंद थी. कुछ दिनों तक गुरुदेव का यह नियम रहा कि नित्यप्रति जब वे पूज्य लाला जी के दर्शन करने जाते थे तो उनके लिए एक दोने में मलाई ले जाते थे और वे प्रेम पूर्वक उसे खा लेते थे. उन्ही दिनों उनके एक भतीजे उनके घर आये. अगले दिन जब मलाई ले गए और उनके सामने रखी तो पूज्य लाला जी महाराज ने उसे आपने भतीजे की तरफ़ सरका दिया. गुरुदेव सोचने लगे कि हम लाये तो इनके लिए थे किन्तु इन्होने उसे दूसरे को दे दी. कई दिनों तक यही क्रम चलता रहा. शुरू में गुरुदेव को उन भतीजे से ईर्ष्या हुई किन्तु उन्होंने सोचा कि जब लाला जी इन्हें प्यार करते हैं, अगर पिया दूसरे को चाहता है तो हमारा भी यह कर्तव्य (फ़र्ज़) है कि हम भी उसे प्यार करें अगले दिन से गुरुदेव दो जगह मलाई लाने लगे, एक लाला जी के सामने और दूसरी उनके भतीजे के सामने रख देते थे.

गुरुदेव कहा करते थे कि अपनी तरफ़ देखो और अपने प्रेम को शुद्ध और निस्वार्थ बनाते चलो. तुम्हें क्या मतलब कि तुम्हारा प्रियतम किसको प्यार करता है और किसको नहीं करता :-

तुझे सामने बैठा के मैं , यादे-ख़ुदा करूँ

तू मुझे देखे न देखे,. मैं तुझे देखा करूँ.

(८) पूज्य गुरुदेव को बालकपन से ही अपने गुरुदेव पूज्य लाला जी महाराज से बहुत प्रेम था क्योकि वे उनकी पूर्व जन्म की बिछुड़ी हुई आत्मा थे. उन्होंने स्वयं इस बात का उल्लेख कई बार किया था.

यह घटना दिल्ली की है. ७ नवम्बर सन १९६८ का दिन था. मैं उनके श्री चरणों में बैठा हुआ था. श्रीमुख से फ़रमाया कि हमें right (अधिकार) है कि हम अपने गुरुदेव के पत्रों की तारीफ़ करें लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि हम दूसरे संतों के पत्रों को criticise (आलोचना) करें. उन्होंने आगे कहा कि उनके गुरुदेव के पत्र किसी विशेषता से भरे होते थे और उनमें कोई न कोई दुनियाबी (सांसारिक) गुल्थी सुलझायी होती थी. हमने संतमत के अन्य आचार्यों के पत्र देखे हैं और वे बहुत अच्छे हैं लेकिन उनमें ज़्यादातर इसी बात पर ज़ोर दिया दिया गया है कि अपने इष्ट का निरन्तर ध्यान बांधो और अभ्यास करो इत्यादि. इसमें कोई शक (संशय) नहीं कि यह निचोड़ है, लेकिन अभ्यासियों की मुश्किलें इससे दूर नहीं होतीं. हमारे नित्य के जीवन में (और अभ्यास में भी) ऐसी पेचीदा बातें आ जाती हैं जिनका सुलझाना आवश्यक होता है. पूज्य लाला जी साहब के जितने भी पत्र होते थे उनमें यही विशेषता होती थी कि आध्यात्मिक शिक्षा के साथ-साथ कोई न कोई पेचीदा बात भी सुलझायी गयी होती थी.

गुरुदेव ने आगे कहा है कि हमारे पास लाला जी के बहुत से ख़त थे जो सारे छप नहीं सके. सन १९१९ तक के ख़त नष्ट हो गए क्योकि लाला जी का जो पत्र हमारे पास आता था उसे हम बड़े प्यार से अपने कुर्ते के अंदर की जेब में रखते थे. लड़कपन के नाते कहिये या जो भी कहिये हम उस ख़त को अपने दिल से चिपटा कर रखते थे क्योकि ऐसी पवित्र वस्तु

के लिए उससे अच्छी जगह और कौन सी हो सकती है ? जब कभी कपड़े धोबी के यहां जाते थे तो वे पत्र नष्ट हो जाते थे क्योकि हमें उन्हें निकालने की याद नहीं रहती थी.

गुरुदेव ने आगे कहा कि हम अपने पत्रों में पूज्य लाला जी को 'माशूक़े -मन' या ' महबूबे-मन ' करके सम्बोधित करते थे जिसका अर्थ है 'मेरे प्रियतम' लड़कपन की बात है, हम प्रेम-वश उन्हें इस तरह लिखते थे और हम यह नहीं जानते थे कि हम ऐसा क्यों करते हैं. एक बार हमने किसी की सिफारिश की तो उन्होंने कृपा करके मंज़ूर कर ली और अपने पत्र में लिखा :-

तुम्हें चाहूँ , तुम्हारे चाहने वालों को मैं चाहूँ ,

डूचँदा क्यों न चाहूँ तू मेरे प्यारे का प्यारा है.

(९) गुरुदेव का एक रिश्तेदार लड़का यदा-कदा उनके घर रहा करता था. एम.ए. की पढ़ाई कर रहा था. देखने में बहुत सीधा-सादा था. उसने गुरुदेव से कहा कि मुझे भी अपने गुरुदेव (पू. लाला जी महाराज) के दर्शन कराओ . जब गुरुदेव ने पूज्य लाला जी महाराज से उसके विषय में चर्चा की और उसका निवेदन सामने रखा तो लाला जी महाराज ने कहा कि उसे निकाल दो, अपने घर मत आने दिया करो. वह अपनी बहन तक के पास बैठने लायक नहीं है. बाद में मालूम हुआ कि उस व्यक्ति ने hydrocynic acid (एक प्रकार का घातक विष) देकर तीन आदमियों को मार डाला था.

(१०) एक समय की बात है कि गुरुदेव पूज्य लाला जी महाराज के साथ कानपुर से मोटर कार द्वारा लखनऊ जा रहे थे. कार पूज्य डॉ. श्यामलाल साहब की थी. पिछली सीट पर पूज्य लाला जी और उनकी धर्मपत्नी जी बैठी थीं. अगली सीट पर डॉ. श्याम लाल जी बैठे थे और गुरुदेव गाड़ी चला रहे थे. जब लखनऊ निकट आया तो गुरुदेव ने गाड़ी की चाल कम कर दी ताकि उनकी जगह डॉ. श्यामलाल जी ले लें. गुरुदेव को गाड़ी चलाने का अभ्यास कम था. पूज्य लाला जी ने पूछा कि गाड़ी क्यों हलकी की.? डॉ. श्याम लाल जी ने उत्तर दिया कि लखनऊ पास आ गया है, भाई साहब को चलाने का अभ्यास कम है. पूज्य लाला जी ने कहा- " क्या गाड़ी तुम दोनों चला रहे हो?" आगे चलकर जब अमीनाबाद से होकर जा रहे थे और कार दो बैलगाड़ियों के बीच में से निकल रही थी, अचानक एक दूसरी मोटर गली में से तेज़ी से निकली. दुर्घटना का होना निश्चित था. पूज्य लाला जी के श्रीमुख से निकला, " हैं. यह क्या?" गाड़ी का इंजन एक दम फेल हो गया और वह रुक गयी. दुर्घटना होते-होते बची.

(११) एक दिन पूज्य लालाजी महाराज गुरुदेव से कहने लगे- " देखो श्रीकृष्ण, तुम्हें एक गुर बताते हैं. अगर तुम दुनियां में खुश रहना चाहते हो तो अपनी इच्छाओं को कम करते चले जाओ. अगर एक जूता या दो जूते मौजूद हैं तो तीसरा कभी मत खरीदो. अगर दो-तीन सूट मौज़ूद हैं तो चौथा-पाँचवाँ कभी मत बनवाओ. तुम भी खुश रहोगे और

दूसरों की भी मदद करते रहोगे. और जो तुमने अपनी इच्छाओं को बढ़ा कर अपनी ज़िंदगी खर्चीली बना ली तो खुद भी दुखी रहोगे और सारे परिवार को दुखी रखोगे, उनकी आवश्यकताओं को पूरा नहीं .

दूसरी नसीहत पूज्य लाला जी ने यह की कि जो व्यक्ति तुमसे नसीहत (राय, परामर्श) न मांगे, कभी उसको नसीहत मत दो. ज़ाहिरदारी (लोकदृष्टि) में तो यह गलत सा मालूम देता है. शेख सादी कहते हैं :

अगर बीनम कि नाबीना व चाह अस्त

वगर ख़ामोश बिनशीनम गुनाह अस्त

(**भावार्थ :** अगर देखें कि अँधा जा रहा है और सामने कुआँ है तो चुप रहना और रास्ता न बताना पाप है.)

मगर पूज्य लाला जी ने इसके विपरीत कहा है. गुरुदेव कहा करते थे कि उन्होंने इसे स्वयं आज़माया है और बिलकुल सही पाया है. आप ज़बरदस्ती किसी की भलाई के लिए कुछ कहिये तो वह इसे मानेगा नहीं बल्कि उसके विपरीत चलेगा और अपना नुक़सान करेगा. जब वह आपसे राय मांगे और आप उसे राय देंगें तब वह उसे मानेगा और उसकी क़दर करेगा. चाहे बेटा भी हो, इशारा दे दें, कभी force न करें (मज़बूर न करें) वर्ना वह कभी वैसा नहीं करेगा.

इस दुनियां का एक अजीब क़ायदा है कि बड़ी मौहब्बत से, उसकी भलाई के लिए किसी को कोई बात बताई जाये तो वह यह समझता है कि इन्हें क्या पड़ी है, ज़रूर इनका कोई न कोई मतलब होगा जो यह ऐसी बात कर रहे हैं क्योकिं दुनियाँ में सब मतलब से काम करते हैं. आप कितना भी निस्वार्थ होकर उसे समझाएँ लेकिन वह यही समझेगा कि इसमें तो मेरा बहुत नुक़सान है. गुरुदेव ने लिखा है कि यह उनका निजी अनुभव है और यह भी कहा है कि यदि आप चाहें तो आज़मा कर देख लें.

(१२) एक जिज्ञासु जो दिल्ली में रहते थे, गुरुदेव के परिचित थे. वे पूज्य लाला जी के दर्शनों के बहुत इच्छुक थे. गुरुदेव उन्हें अपने साथ पूज्य लाला जी साहब के पास फतेहगढ़ ले गए. संध्या का समय था. सब भाई आँखें बंद किये बैठे थे और आत्मिक आनंद का अनुभव कर रहे थे. आपने उन सज्जन को सत्संग में बैठा दिया और स्वयं दूसरी ओर से जाकर

पू. लाला जी के पास जा बैठे. थोड़ी देर पश्चात सत्संग बंद करा कर उन्होंने गुरुदेव से कहा-" श्रीकृष्ण, तुम आ गए ? मुझको सवेरे से तुम्हारी याद आ रही थी ओर तबियत दखने को चाहती थी. अच्छा किया जो आ गए." थोड़ी देर बाद पूछा कि पूजा में फैज़ (कृपा) की क्या हालत थी ? गुरुदेव ने निवेदन किया कि फ़ैज़ खूब आ रहा था और तबियत खूब लग रही थी, सब आनंद में मस्त थे. पूज्य लाला जी ने पुनः कहा -" यह ठीक है, लेकिन बताओ फिर हमने सत्संग क्यों बंद कर दिया

." गुरुदेव ने अज्ञानता प्रकट की. तब लाला जी ने कहा कि एक नया आदमी अभी सत्संग में आकर बैठा है, उसके विचार पवित्र नहीं हैं. ऐसी हालत में सब अभ्यासियों के मन पर उसके विचारों का प्रभाव पड़ रहा था, जिससे संभव था कि औरों का चित्त भी अपवित्र हो जाता. सत्संग समाप्त होने पर गुरुदेव ने प्रार्थना की कि उन सज्जन को अपनी शरण में ले लें . पूज्य लाला जी ने कहा कि शुरू में जब तुम मेरे पास आये थे तब मेरी जवानी की उम्र थी और मैं मेहनत कर सकता था और तुम्हारे साथ मेहनत की, लेकिन अब बुढ़ापा है, वैसी मेहनत नहीं हो सकती. अब तुम्हारा काम है कि मेहनत करो और लोगों को बनाओ. जब तैयार करके लाओगे तब रंदा और रोग़न मैं कर दूंगा.

फिर उन सज्जन को बुलाकर कहा कि अभी तुम्हारा वक्त शुरू करने का नहीं आया है. मैं जब देहली आऊं, उस वक्त मिलना.

(१३) एक बार गुरुदेव पूज्य लाला जी साहब के साथ रेल में यात्रा कर रहे थे. सामान ऊपर की बर्थ पर रखा हुआ था. अचानक आपके मन में आया कि सामान ठीक से नहीं रखा है अतः उन्होंने उसे ठीक से लगा दिया. थोड़ी देर बाद फिर वही विचार उठा और पुनः सामान दुसरे ढंग से लगा दिया. जब गुरुदेव सामान रख चुके तो पूज्य लाला जी ने पूछा कि यह सामान तुमने दो बार क्यों उल्टा पलटा ? उत्तर में गुरुदेव ने निवेदन किया कि वे स्वयं नहीं जानते कि उन्होंने ऐसा क्यों किया. उन्हें ऐसा विचार उठा था कि सामान ठीक तरह नहीं रखा है अतः उन्होंने उसे दूसरी तरह रख दिया. पूज्य लाला जी ने कहा कि, " यह तुमने नहीं किया बल्कि हमने करवाया है. हम सोचते जाते थे और तुम करते जाते थे. जब तक विचारों में यगानियत (एक भाव) और समर्पणता नहीं आती, यानी एक के विचार दूसरा ग्रहण नहीं करता, पूरी तालीम नहीं उतरती.

(नोट: इसी को सूफियों में 'निस्बत' कहते हैं - गुरु शिष्य का आत्मिक सम्बन्ध स्थापित होना)

(१४) सन १९१६ की बात है कि पूज्य लाला जी महाराज (जो उस समय नौकरी में थे) अपने डिप्टी साहब के साथ दौरे पर क़ायमगंज गए हुए थे. गुरुदेव को उनके दर्शनों की इच्छा हुई और बिना पता मालूम किये चल पड़े. कुछ रेल से और कुछ पैदल चल कर शाम तक क़ायमगंज पहुंचे. पता लगा कि डिप्टी साहब का कैम्प ३-४ मील दूर एक गांव में है. गुरु दर्शन की तीव्र लालसा उन्हें गांव ले पहुंची परन्तु वहां पता चला कि आज सांयकाल ही लाला जी वापस क़ायमगंज पहुंच गए हैं. गुरुदेव भी लौट कर क़ायमगंज आये. रात बहुत बीत चुकी थी, पता ठिकाना मालूम नहीं था, सुनसान सड़कों पर भटकते फ़िरे. एक घर की खिड़की में से कुछ प्रकाश दिखाई दिया. पता-ठिकाना जानने के आशय से वहां पहुंचे. लैंप जल रहा था और एक सज्जन बैठे थे. कौन थे वे सज्जन - स्वयं लाला जी महाराज बैठे हुए अपने लाड़ले शिष्य के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे और अपने पास आने को मूक में पथ प्रदर्शित कर रहे थे.

बड़े प्रेम पूर्वक दोनों का मिलन हुआ. पूज्य लाला जी ने कुछ खाने की वस्तु अपने पास रख छोड़ी थी वह गुरुदेव को प्रेम पूर्वक खिलाई और उनकी सारीथकन हर ली.

यह गुरु-शिष्य के उत्कट प्रेम के आकर्षण की एक छोटी सी आदर्श घटना है.

(१५) करुणा तथा साहस से भरी एक घटना है जिससे उनके अद्भुत एवं दिव्य व्यक्तित्व में झाँकने का अवसर मिलता है. उनकी पुत्री को पढ़ाने जो पंडित जी आते थे उनके गांव में एक डकैती के दौरान महिलाओं से बड़ी बदसलूकी की गयी जिसमें एक महिला को काफ़ी शारीरिक कष्ट पहुंचा था जिसके लिए उस महिला को सिकन्द्राबाद के गवर्नमेन्ट अस्पताल में भर्ती करा दिया गया था. संयोग से वहाँ डाक्टर ड्यूटी पर नहीं था जिससे महिला की हालत ख़राब होती जा रही थी. उन दिनों सरकारी डाक्टर का बहुत दबदबा होता था. शाम को पंडित जी ने आकर यह सारा क़िस्सा गुरुदेव को बताया तो गुरुदेव इतना भावविभोर हुए कि फौरन तांगा मंगवाकर पंडित जी को साथ लेकर सरकारी अस्पताल गए और मरीज़ को अपने साथ ले आये और घर पर रखकर इलाज शुरू कर दिया. न उन्हें डाकुओं की फिकर थी और न पुलिस का खतरा. अगले रोज़ सरकारी डाक्टर को आने पर क़िस्सा पता लगा. उन्होंने इसको अपना अपमान समझा और पुलिस लेकर गुरुदेव के घर चले आये. गुरुदेव पर अभियोग था कि वो बिना आज्ञा मरीज़ को लेकर चले आये हैं. गुरुदेव उस समय खाना खा रहे थे. जब उन्हें इस बात की इत्तला दी गयी तो भी वह बड़े इत्मीनान से खाना खाते रहे, कोई घबराहट या आक्रोश उनके चेहरे पर नहीं था. पूरा खाना खाने के बाद उन्होंने अपनी बंदूक मंगाई और उसे थामकर थानेदार से बातचीत की. काफ़ी देर तक ऊंचे स्वर में बातचीत की आवाज़ें सुनाई देती रहीं. फिर गुरुदेव ने थानेदार तथा डाक्टर को मरीज़ की पीड़ा तथा डाक्टर के कर्तव्य का भान कराया. डाक्टर ने महसूस किया कि मानवता के नाते गुरुदेव ने जो किया वह ठीक किया है. थानेदार भी लज्जित होकर चला गया. कौन है आज के ज़माने में ऐसी निस्वार्थ हमदर्दी रखने वाला जो कि अपनी जान तथा आजीविका का ख़तरा मोल लेकर सेवा करे ?

(१६) पूज्य लाला जी महाराज को गुरुदेव से बहुत प्रेम था जिसके कारण वे उनकी बुराई सुनने को भी तैयार नहीं थे. एक बार की बात है कि एक धनाड्य व्यक्ति पूज्य लाला जी की सेवा में गए. रहने वाले सिकन्द्राबाद के ही थे जहाँ गुरुदेव रहा करते थे. पूज्य लाला जी ने आदेश दिया कि वे गुरुदेव के साथ बैठकर पूजा कर लिया करें. कुछ दिनों बाद जब वे फिर लाला जी साहब से भेंट के लिए गए तो उन्होंने उनसे पूछा कि क्या वे गुरुदेव के साथ बैठकर पूजा करतें हैं ? उन्होंने उत्तर में कहा कि जब भी वे गुरुदेव के साथ पूजा करने के लिए आये तब वे मिले नहीं या उनके कमरे का दरवाज़ा बंद मिला. यह बात पूज्य लाला जी साहब को पसंद नहीं आयी और उनसे कहा -" क्या मैनें आपको ख़ुफ़िया (detective) का दरोग़ा बना कर भेजा था जो आप मेरे पास शिकायत करने आये हैं. "

" कबीर मेरे साध की निन्दा न करै कोय "

(१७) एक बार पूज्य लाला जी साहब की पुत्री का विवाह था. सारा प्रबन्ध गुरुदेव के सुपुर्द था. लाला जी के एक निकट सम्बन्धी इस बात से असंतुष्ट थे. उन्होंने अवसर देखकर गुरुमाता (लाला जी साहब की धर्मपत्नी जी) से कहा कि श्रीकृष्ण एक टोकरा कचौड़ियां और एक थाल मिठाई का अपने घर ले गए हैं. यह शिकायत पूज्य लाला जी के कानों तक पहुंची. उन्होंने कहा- " ठीक है और मुझ को मालूम है, लेकिन यह मेरे कहने से हुआ है. मैनें ही उससे ऐसा करने को कहा था."

कई दिन बाद उन्होंने गुरुदेव से एकांत में कहा कि यह हालत है रिश्तेदारों की.

अध्याय ११

(२)

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी कुछ स्मृतिया जो प्रियजनों व सेवकों से सम्बंधित हैं.

(१८) पूज्य गुरुदेव का एक नौकर जिसका नाम मक्खन था, उसका एक पुत्र सिकन्द्राबाद में पढ़ता था. उसने अपने एक साथी विद्यार्थी की पारस्परिक झगडे में हत्या कर दी जिसके कारण उसे फांसी की सज़ा हो गयी. सुप्रीम कोर्ट में भी उसकी अपील रद्द हो गई.

उन्हीं दिनों सिकन्द्राबाद में वार्षिक भंडारा हो रहा था, वह बूढा मक्खन रो रो कर गिड़गिड़ाता हुआ गुरुदेव के चरणों में माथा रगडता था और कहता था कि-" बाबू जी, मेरे बेटे को बचा लो " बड़ा ह्रदय विदारक दृश्य था. गुरुदेव में दया उमड़ पड़ी, उनके नेत्र सजल हो गए और उसे सांत्वना दिलाते हुए कहा कि मक्खन, ईश्वर ने चाहा तो तुम्हारा लड़का फांसी से तो बच जायेगा लेकिन उसे उम्र कैद ज़रूर होगी. तुम राष्ट्रपति के पास mercynpetition (जीवनदान की याचना) कर दो. उसने इस आदेश का पालन किया और गुरुदेव की कृपा से उस लड़के का मृत्यु दंड आजीवन कारावास में बदल दिया गया.

उस लड़के ने कारावास में बहुत अच्छा आचरण किया. जेल में ही रहकर उसने एम. ए. पास किया और सज़ा की अवधि से पूर्व ही उसे जेल से मुक्त कर दिया गया. अब वह कहीं शिक्षक के पद पर लगा हुआ है और उसकी आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी है.

(१९) पूज्य गुरुदेव (महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज) ने ग़ाज़ियाबाद (उ.प्र.) में लगभग सन १९५४-५५ में एक कॉलोनी बसाई थी जिसका नाम रामकृष्णा कॉलोनी है. उसी कॉलोनी में भाई साहब सरदार करतार सिंह जी ने एक मकान बनवाकर सत्संग को दान कर दिया था. उसी को 'सत्संग भवन' कहते थे. गुरुदेव जब ग़ाज़ियाबाद पधारते थे तो इसी सत्संग भवन में ठहरते थे. भवन में उनके छोटे सुपुत्र श्री गोपालकृष्ण भटनागर सपरिवार एक कमरे में रहते थे और बाद में जब उनका मकान बन गया तो वे उसमें चले गए थे.

उन दिनों गोपाल बाबू का बड़ा पुत्र जिसकी आयु लगभग ६-७ वर्ष रही होगी छत पर से गिर पड़ा. उसके सिर में गंभीर चोट आयी, कान से खून बहने लगा और बच्चा बेहोश हो गया. तुरन्त उसे अस्पताल में दाखिल करवाया गया जहां उसकी गंभीर दशा देखकर डाक्टरों ने उसका जीवन ख़तरे में बताया. संध्या हो चुकी थी और सूर्य छिप गया था.. गुरुदेव उन दिनों सिकन्दराबाद में थे. उन्हें सन्देश भेजकर ग़ज़ियाबाद बुलाया गया. उन्होंने अस्पताल जाकर बच्चे को देखा, नब्ज़ (नाड़ी) की हालत ख़राब थी. तब तक रात के ग्यारह बज चुके थे. उन्होंने एक गहरी दृष्टि बच्चे पर डाली और वहां से चलने लगे. गोपाल बाबू को निराश देखकर उन्होंने कहा कि-" बेटे, घबराओ नहीं. अब हम इस बच्चे के लिए दुआ करने जा रहे हैं.

उस दिन कृष्ण जन्माष्टमी थी. घर आने पर उन्हें कुछ खाद्य पदार्थ पेश किया गया जो उन्होंने नहीं खाया. कहा कि आज हमारा व्रत है. पलंग पर लेट गए और कभी' अल्लाह ' -' अल्लाह ' और कभी 'राम राम ' कहते रहे.

रात्रि के बारह बज चुके थे. वार्ड से नर्स निकलकर बाहर आयी और बताया कि बच्चे का खून बहना बंद हो गया है. अब वह बच जायेगा. उधर पूज्य गुरुदेव से विनती की गयी कि अब व्रत पूरा हो चुका है, आप कुछ खा लीजिये. तब उन्होंने एक कटोरी खीर स्वीकार कर ली. अब वह बच्चा बड़ा हो गया है, अच्छी नौकरी पर है और बाल-बच्चेदार है. गुरुदेव ने उसको प्राणदान दिया.

(२०) सन १९६२ की बात है. मेरी पत्नी को, जिसको आतों की टी.बी. बताई गयी थी, बुखार आने लगा और दस्त होने लगे. मेरी तीन छोटी-छोटी बच्चियां उस समय नादान थीं और पढ़ रहीं थीं. जितने इलाज अपने या अपनी हैसियत के मुताबिक़ दूसरों से करा सकते थे,किये. दस्त और बुख़ार दोनों ही बढ़ते गए. जीवन की आशा जाती रहीं, लेकिन मेरी पत्नी ने साहस नहीं छोड़ा. उन दिनों दशहरे का भण्डारा सिकन्द्राबाद में हो रहा था. मेरे पास राम-सन्देश का कुछ हिसाब किताब था. खाट से लगी मेरी पत्नी ने मुझे साहस बंधाया और मुझसे सिकन्द्राबाद जाने को कहा . मैं यह सोचकर सिकन्द्राबाद के लिए चल पड़ा कि वहां जाकर हिसाब दे दूंगा और गुरुदेव के दर्शन करके तुरन्त लौट आऊंगा. मेरे मन में यह विश्वास हो चुका था कि मेरे लौटने तक पत्नी मुझे जीवित नहीं मिल सकेगी. आँखों में रास्ते भर गुरु प्रेम के आंसू टपकते रहे और मन में यही आता रहा कि हे प्रभु ! आपकी इच्छा पूरी हो. मैं सत्य कहता हूँ कि अपनी पत्नी के जीवन की भीख मांगने मैं नहीं गया था.

दोपहर ढल चुका था. गुरुदेव अपने मकान के पीछे के कमरे की बराबर वाली कोठरी में कुर्सी पर बैठे हुए थे और सामने भोजन की थाली लाकर रखी गयी थी. मैने प्रणाम किया . मेरी आँखों में आंसू देखकर पूछा - " क्या बात है ? बहू की तबियत कैसी है? " मैने निवेदन किया कि शायद मेरे लौटने तक जीवित नहीं मिलेंगी. उनके बड़े-बड़े नेत्रों से आंसू निकलने लगे. रोटी का एक ही कौर तोडा था कि चिल्ला कर नौकर को आवाज़ देने लगे -

" शिवपूजन !, शिव पूजन ! इनके लिए खाना लाओ." और आधा मिनिट भी नहीं बीता था कि कुर्सी से उठकर मुझे आज्ञा दी " बैठो, यह खाना खाओ. ". मेरा कंठ रुँधा हुआ था. उनका प्रेम मेरे रोम-रोम में छाया हुआ था. मैने कुसी पर बैठकर उनकी आज्ञा का पालन किया. वे घबराते हुए उस छोटी-सी कोठरी में जल्दी-जल्दी एक सिरे से दूसरी तरफ बड़ी व्याकुलता से टहल रहे थे. मेरे हिसाब की कॉपी हाथ में लेते हुए मुख मण्डल पर तेज प्रकाशित हो गया और मुझसे कहा कि ' जाओ अगर तुम्हारी क़िस्मत में दुनियाँ ही भोगनी है तो भोगो " मैं न तो तब और न अब उनके इस वाक्य का अर्थ समझ पाया. वे मुझे क्या देना चाहते थे जो इस घटना के बीच में आने से दे न सके. यह वे ही जानें.

तुरन्त ग़ाज़ियाबाद के लिए वापस चल दिया .चलते समय उन्होंने मुझे एक सेब दिया और कहा - "इस सेब का रस निकालकर थोड़ा-थोड़ा बहू को देते रहना. " वापिस आने पर मैने अपनी पत्नी को जीवित पाया, सेब का रस निकला गया और आधी-आधी चम्मच करके दिया जाने लगा. जिस रोगी को पिछले तीन दिनों से दवा तो दूर पानी की एक बूँद तक नहीं पच रहीं थी उसे वह सेब का रस अमृत तुल्य हो गया और बहुत ही थोड़े समय में रोगिणी स्वस्थ हो गयी. यह जीवन दान था.

इसी सन्दर्भ में इससे कुछ ही दिन पूर्व की बात है कि गुरुदेव कासगंज गए थे. वहां मेरी माता जी मेरे बड़े भाई साहब के पास रहती थीं. उनसे कहा था कि तुम्हारी बहू का जीवन अब अधिक नहीं है. वहां जाकर उसकी कुछ सेवा कर लो.

(२१) एक बार दशहरे के वार्षिक भंडारे पर बड़ी भयंकर वर्षा हुई. उन दिनों दिल्ली से सिकन्द्राबाद के लिए प्रायवेट बसें चला करती थीं. पूज्य सरदार जी भाई साहब दिल्ली से फूंस में पैक किये हुए दो बंडलों में चाय के प्याले भंडारे में उपयोग के लिये लाये थे. मैं साथ में था. सिकन्द्राबाद हम लोग काफी रात गए पहुंचे. बस अड्डे पर कोई रिक्शा नहीं था और उस वर्षा में बिजली फेल हो जाने के कारण सारे शहर में अन्धकार छाया हुआ था. सड़कें पानी और कीचड़ से भरी हुईं थीं. रह-रह कर भूकंप के झटके आते थे और शहर में पुराने मकान गिरने लगे थे. त्यों -त्यों करके हम दोनों कंधे पर प्यालों का बोझा लादे उस अन्धकार में पूज्य गुरुदेव के निवास पर पहुंचे. वहां कुछ अन्य भाई पहले से ही आएं हुए थे. वर्षा लगातार हो रहीं थी और गिरे हुए मकानों से पीड़ित लोगों की आवाज़ें आ रहीं थीं.. ऐसे अवसर पर चोरों ने भी घरों में घात लगायी, उसकी भी आवाज़ें आ रहीं थीं.

पंडित काशीनाथ जी की धर्मपत्नी उन दिनों बहुत बीमार थीं. उनके घुटने मुड़ नहीं सकते थे. वे कमरे में शय्या पर लेटी हुईं थीं. दीपक के मंद प्रकाश में गुरुदेव उनके पास खड़े हुए थे. हम सब कह रहे थे कि मकान की एक दीवार फट गयी है, बाहर आ जाइये और इन्हें भी निकाल लेते हैं परन्तु वे गंभीर मुद्रा में वहीं खड़े रहे और उन घबराई हुई महिला से कहा -'बेटी, घबराओ नहीं. यहां मैं मौजूद हूँ. कोई नुक़सान नहीं होगा.'

कुछ देर बाद भूकम्प के झटके बंद हो गए तब वे बाहर निकले. उन्होंने ऐसे संकट के समय में खतरा मोल ले कर भी अपने सेवक की बीमार धर्मपत्नी की जीवन रक्षा की.

(२२) सन १९६९ की घटना है . मेरी ज्येष्ठ पुत्री सीता रानी ने २० वर्ष की आयु में इंग्लिश लिटरेचर में एम. ए. पास कर लिया था. वह और भी पढ़ना चाहती थी परन्तु मैं नहीं चाहता था. पूज्य गुरुदेव पढ़ाई के लिए प्रत्येक को सदा उत्साहित करते थे और कहा करते थे कि खूब पढाई करनी चाहिए जिससे मानसिक उन्नति हो और सोई हुई शक्तियों का विकास हो. उसने गुरुदेव से कहा कि -" बाबा जी, मैं डबल एम. ए. करना चाहती हूँ. आप पापाजी से कह दीजिये." उन्होंने कहा कि बेटी तुम खूब पढ़ो. फिर क्या था, उसने समाजशास्त्र की एम.ए. क्लास में प्रवेश ले लिया. कॉलेज के प्रिंसिपल की पुत्रियां उसकी सहपाठिनी थीं और प्रिंसिपल महोदय (जो बाद में मेरठ यूनिवर्सिटी के वाइस चांसलर बने) मेरे साथ के पढ़े हुए थे. उसने बिना मुझको बताये फीस भी माफ़ करवा ली. भगगवान ने मुझे सब कुछ दिया है और उसकी कॉलेज की फीस मेरे लिए कोई बोझ नहीं बनती किन्तु उसने बाल-स्वभाव से यही सोच कर ऐसा किया होगा कि उसकी पढ़ाई का बोझ कुछ हल्का हो जायेगा. उसने २२ वर्ष की आयु में डबल एम.ए. कर लिया था.

इसी बीच में जब वह पढ़ रही थी तब गुरुदेव ने मुझे बुलाकर कहा कि हमने तुम्हारी लड़की की शादी तय कर दी है. तुम अपने यहां सत्संग रख लो और इस बात को अपने घर में किसी को मत कहना. न तो मुझे यह मालूम था कि कहाँ विवाह तय कर दिया है और न कि यह कि लड़के का नाम क्या है और क्या करता है.

नश्चित दिन सत्संगी आये. उनमें से एक दम्पति को मेरे घर ठहरा दिया और उनको बुला कर कहा कि हमने तुम्हारे लड़के की शादी तय कर दी है. उन्हें यह भी नहीं मालूम हुआ कि कहाँ तय कर दी है, न उनके पूछने का साहस हुआ. उन्होंने प्रसन्नता पूर्वक अपनी स्वीकृति दे दी. परन्तु ये बाद में बताया गया कि दिल्ली निवासी श्री के. एस. सक्सेना के ज्येष्ठ सुपुत्र जो उन दिनों मौलाना आज़ाद मेडिकल कॉलेज, दिल्ली में पढ़ते थे, उनके साथ गुरुदेव ने सीता का वैवाहिक सम्बन्ध निश्चय किया था.

इस घटना के कई वर्ष बाद उन दोनों का विवाह फरवरी १९७३ में हुआ. उनके सम्बन्ध में गुरुदेव ने कहा था कि इन दोनों का पूर्व जन्म का सम्बन्ध है, इस विवाह को कोई टाल नहीं सकता. दोनों पक्षों की प्रार्थना पर गुरुदेव ने इन दोनों बच्चों को आशीर्वाद दिन था. उन दिनों गुरुदेव बहुत बीमार थे और यह आभास हो रहा था कि वे इनके विवाह होने

से पहले ही शरीर छोड़ जायेंगे. इसीलिए उनसे यह प्रार्थना की गयी थी कि आप कृपया इन बच्चों को अपना आशीर्वाद दे दें.

२२ जून, १९६९ का दिन था. सिकन्द्राबाद के सत्संग भवन में दरी बिछाई गयी. बीच में उनके बैठने के लिए आराम कुर्सी डाल दी गई . एक और स्त्री-वर्ग और दूसरी और पुरुष-वर्ग बैठे थे. अनायास ही दूर-दूर के कुछ सत्संगी भाई बहिन आ गए थे. उस समय गुरुदेव ने ज़ोर से आवाज़ दी ' आईये बाबू ज्योति स्वरुप, आप भी आ जाईये.' श्री ज्योति स्वरूप,(जिन्हें सब लोग पेशकार साहब कहा करते थे) सड़क के दूसरी पार के मकान में रहते थे. जिस समय उन्हें पुकारा गया उस समय वे गुरुदेव के मकान के अन्दर प्रवेश कर रहे थे. दिखाई देना तो क्या उनके पैरों की आहट भी नहीं सुनाई देती थी. हम सबको आश्चर्य हुआ कि गुरुदेव को यह कैसे मालूम हुआ कि पेशकार साहब दरवाज़े से आने वाले हैं.

डॉ . शक्ति कुमार को गुरुदेव ने अपनी दायीं और बैठाया और सीता रानी को बायीं ओर. दोनों का तिलक किया, दोनों बच्चो ने गुरुदेव को पुष्प मालायें पहिनाईं ओर चरण छुए. वे ही मालायें बदल कर बदल कर गुरुदेव ने दोनों बच्चो को पहिना दीं और फफक कर रो पड़े. उस वातावरण में ऐसा प्रेम छाया हुआ था कि क्या बड़े ओर क्या बच्चे सभी की आँखों से अश्रुधाराएँ बह रही थीं. कुछ देर यह वातावरण रहने के बाद प्रसाद वितरण हुआ. बाद में गुरु महाराज ने कहा कि ये बच्चे बड़े भाग्यशाली हैं. ख़ानदान के सारे बुज़ुर्ग इन्हें आशीर्वाद देने के लिए यहां मौजूद थे.

इन दोनों का विवाह बसंत पंचमी के दिन ८ फरवरी सन १९७३ को हुआ था जिस दिन पूज्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज की जन्म शताब्दी थी.

(२३) ग़ाज़ियाबाद से सिकन्द्राबाद गुरुदेव के दर्शनों के लिए मैं स्कूटर पर जाता था क्योंकि इसमें समय की बचत हो जाती थी. कभी-कभी मेरी धर्मपत्नी भी मेरे साथ होतीं थीं. एक बार गर्मी के दिन थे, शायद मई या जून का महीना होगा. मौसम साफ़ था, तेज़ धूप खिली हुई थी. दोपहर भोजन के बाद हम दोनों सिकन्द्राबाद के लिए चल पड़े. जब तीन चौथाई रास्ता तय हो गया तो दुपहरी की खिली हुई धूप में कहीं से एक बादल की टुकड़ी आयी ओर हमें पानी से खूब तर-बतर कर गयी. एक मिनिट में ही यह सारा तमाशा हो गया. सारे वस्त्र भीग गए. मेरे मन में दुविधा थी कि भीगे कपड़ों में जाएँ कि न जाएँ. सिकन्द्राबाद कुल ५-१/२ मील रह गया था. मेरी पत्नी ने साहस बंधाया ओर हम लोग उसी दशा में सिकन्द्राबाद पहुंच गए. जाकर चरण छुए. इस पुस्तक में अन्यत्र कहीं आया है कि गुरुदेव के चरण छूने में बिजली के हल्के से करंट जैसा आभास होता था.

मेरी धर्मपत्नी को देखते ही लगा कि मानो वे हमारा इंतज़ार ही कर रहे हैं. उन्होंने सिर गुरुदेव के चरणों में रख दिया. सम्पूर्ण शरीर में करंट सी दौड़ गयी. कुछ सुधि नहीं थी. बस सिर चरणों में था, आशीर्वाद युक्त दोनों हाथ सिर पर

थे. कभी-कभी भीनी-भीनी आवाज़ सुनाई दे रही थी कि पुचकार से रहे हों. बाक़ी सुध नहीं थी. " बेटी, आप भींगी कहाँ? यहां तो वर्षा नहीं है. वह बोली, " जी, वहां रास्ते में तो काफ़ी बरसा है."

तब हमारे कपड़े बदलवाए. ख़ुद बीमार थे. चाय आदि के बाद, चिंतित से थे कि कहीं यह बीमार न हो जाय. लिटाकर पेट देखा व फ़रमाया " बेटी,पानी का असर नहीं हुआ है, चिंता मत करो."

मुझे भी कपड़े देकर आदेश दिया कि मैं कपड़े बदल लूँ, जिसका मैंने पालन किया. वे कपड़े उनके आशीर्वाद स्वरुप हम दोनों के पास अब भी हैं.

गुरु जो आदेश दें, उसे अपनी बुद्धि पर न तोलें. मैने मूर्खतावश इस सिद्धांत का पालन नहीं किया. यदा -कदा जब वे बहुत प्रसन्न होते थे तो कहते थे कि मेरे पास लेट जाओ, पर मैं ऐसा करने का साहस नहीं कर पाता था. अब मुझे अपनी मूर्खता पर पश्चाताप होता है. न मालूम वह मुझे क्या देना चाहते थे जिससे में वंचित रह गया.

(२४) पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि ब्याज की कमाई, शराब की कमाई, जानवरों की कमाई तथा ऐसी ही अन्य कमाई का भोजन करने से बुद्धि भ्रष्ट होती है और आध्यात्मिक कमाई चौपट हो जाती है. उनके एक निकट सत्संगी जो शराब की दुकान पर नौकर थे ओर उसी शराब की आमदनी में से उनका मालिक उन्हें वेतन देता था , लेन-देन का भी व्यवसाय करते थे. कहते हैं कि वे तीन आना प्रति रुपया के हिसाब से सूद लेते थे जिसकी उघराई उनकी धर्मपत्नी जी करती थीं. वे सज्जन भैंसे पालते थे ओर उनके दूध का व्यवसाय भी करते थे. इसके अलावा घोडा तांगा भी चलवाते थे जिससे उन्हें आमदनी होती थी,

पूज्य गुरुदेव ने उन्हें कई बार ऐसी कमाई के लिए वर्जित किया परन्तु वे नहीं माने. कुछ काल बाद बुद्धि भ्रष्ट हो गयी, वे गुरुदेव से विमुख हो गए, पत्नी की मृत्यु हो गयी, पुत्र की मृत्यु हो गयी और इस समय उनकी स्वयं की दशा अच्छी नहीं है.

(२५) सन १९४५ के प्रारम्भ में मेरा तथा मेरी छोटी बहिन उर्मिला का विवाह केवल ४ दिन के अन्तर से हुआ था. मेरी बारात फतेहगढ़ गयी थी. मूर्खतावश मैने प्रेम पूर्वक गुरुदेव से अपने विवाह में सम्मिलित होने का आग्रह नहीं किया था. मैं इन बातों को जानता भी नहीं था. मुझे यह भी ज्ञात नहीं था कि मेरे दादा गुरुदेव महात्मा रामचंद्र जी महाराज फतेहगढ़ के ही रहने वाले थे और वहां उनकी समाधि भी है. अतः अनजाने में मुझ से बहुत सी भूलें हुईं हैं जिनके लिए अब पछताता हूँ.

मेरी छोटी बहिन के विवाह पर (६ फरवरी, १९४५) पूज्य गुरुदेव सपरिवार कासगंज पधारे थे. मेरी गुरुमाता, दादी जी (गुरुदेव की माता जी), मामा जी (गुरुदेव के साले साहब) व उनका परिवार, सभी लोगों ने आकर हमें कृतार्थ

किया था. आते ही उन्होंने प्रेम पूर्वक मुझसे कहा था - " महेश बाबू, हमें माफ़ कीजियेगा, हम आपकी शादी पर नहीं आ सके." मैं अत्यन्त लज्जित हुआ-काश धरती फट जाती और मैं उसमें समा जाता.

वर पक्ष की और से परमसन्त डॉ. चतुर्भुज सहाय जी पधारे थे और मेरे ही मकान के ऊपर के कमरों में दोनों महापुरुष ठहरे थे. दोनों समय सत्संग होता था.

उन्हीं दिनों की बात है कि बारात के लिए एक विशेष प्रकार की सब्ज़ी बनी थी. मुझे ऐसा लगा कि यह सब्ज़ी कहीं कम न पड़ जाय. यदि ऐसा हुआ तो बड़ी बदनामी होगी. मैने अपना यह विचार पूज्य चाचा जी (परमसन्त श्री सेवती प्रसाद जी) के सामने रखा, उन्होंने कहा कि तुन यह कैसी बात कहते है ? जानते नहीं कि भाई साहब (गुरुदेव) मौजूद हैं. बारात तथा घरात के खाने के बाद भी वह सब्ज़ी थोड़ी सी बच रही.

गुरुदेव का यह नियम था कि वह जब भी किसी कन्या के विवाह में जाते थे तो एक बार भंडार और भोजन व्यवस्था को देखने अवश्य जाते थे और प्रत्येक वस्तु पर कृपा दृष्टि अवश्य डालते थे. कभी कमी नहीं पड़ती थी, बरक़त ही होती थी. उनका कहना था कि बारात के लोगों का अच्छी तरह आतिथ्य करना चाहिए. वे लोग तुम्हारे दरवाज़े पर रोज़-रोज़ आने नहीं बैठते. बहुत खातिर पसंद थे और यही चाहते थे कि अतिथि के सामने स्वादिष्ट भोजन रखा जाय.

(२६) एक दिन की बात है कि प्रातः काल की पूजा से उठने के पश्चात कुछ सुस्त दिखाई दिए. कहने लगे कि माँ काली सामने खड़ी हैं, उसके हाथ में ख़ाली खप्पर है, कह रही हैं कि मैं खून की प्यासी हूँ, मुझे खून चाहिए. आपने कहा कि- " मैने बहुत विनती की कि माँ कृपा करो, अपना रोष वापिस ले लो और संहार मत होने दो." परन्तु वे नहीं मानीं. उसके बाद बांगला देश का युद्ध हुआ.

(२७) संत-जन बड़े दयालु होते हैं किन्तु जो जिज्ञासु उनसे अधिक प्रेम करने का दावा करते हैं उनकी वे यदा-कदा परीक्षा भी लेते हैं. जुलाई १९६९ में वे काफी अस्वस्थ थे और संसारी व्यक्तियों की तरह अपनी बीमारी के कारण परेशान से नज़र आते थे. दोपहर का समय था. पूज्य सरदार जी भाई साहब, डॉ. हरिकृष्ण जी और मैं उनके पास खड़े हुए थे. उन्होंने कहा कि- " मेरे चार बेटों में से (चौथे डॉ. बी.के. सक्सेना उपनाम बसन्त बाबू) तीन यहां मौजूद हैं. अगर तुम लोग चाहो तो मुझे इस हालत से निकाल सकते हो लेकिन मुझे अफ़सोस है कि अभी तुम लोगों में से कोई इस हालत को नहीं पहुंचा है. "

हम तीनों की छोटी सी परीक्षा भी हुई लेकिन हम लोग उसमें बुरी तरह असफल रहे. अपनी गंभीर बीमारी में एक दिन मुझे बुलाकर कहा कि बेटे, मैं अपनी बीमारी से बहुत तंग हूँ और अब मैं जीना नहीं चाहता. क्या तुम मेरा एक काम कर दोगे ? मैने उत्तर में ' हाँ ' कह दिया. उन्होंने कहा कि इस तरह नहीं. मुझे एक चीज़ की ज़रूरत है जो तुम मुझे लाकर दे सकते हो क्योकि तुम बड़े resourceful हो. उन्होंने पुनः कहा कि मेरी कसम खा कर वायदा करो कि तुम वह चीज़ मुझे

ज़रूर ला दोगे और यह बात किसी से कहना नहीं. मैने उनके आग्रह पर उनकी क़सम खाकर वह वस्तु लाने का वायदा कर दिया. उन्होंने कहा कि -" तुम मुझे थोड़ा सा ज़हर ला दो जिसे खा कर मैं मर जाऊं." यह बात सुनकर मैं आवाक रह गया . मेरी सांप छछूंदर जैसी गति हो गयी. मेरी बुद्धि पर माया का घना आवरण पड़ गया. गुरुदेव के लिए ज़हर ? और मैं

लाऊँ ? क्या इस पाप कर्म के लिए भगवान ने मुझे ही चुना, मेरी मानसिक परिस्थिति को उन्होंने खूब समझ लिया. यह ज़हर लाकर नहीं देगा. कहने लगे कि - "बस हो गया वायदा पूरा, तुमने मेरी क़सम खाई थी और तुम मेरा ज़रा सा भी काम नहीं कर सके. हट जाओ मेरे सामने से. " मैं सम्पूर्णतया लज्जित, पराजित, घृणित और निर्बुद्ध हो गया. उनके सामने से हट तो गया किन्तु मेरी उस समय ऐसी दारुण मानसिक स्थिति थी जिसको शब्दों में व्यक्त करना क़ाबू से बाहर की बात है. गुरु की क़सम खाकर किये हुए वायदे से मुकरना, इससे तो चुल्लू भर पानी में डूब कर मर जाना अच्छा है. बाद में मुझे पता लगा कि ठीक ऐसी ही परीक्षा उन्होंने मेरे अन्य दो भाइयों की भी ली थी और वे भी उसमें असफल रहे थे.

उन्ही की कृपा से उनके महानिर्वाण के कुछ दिनों बाद मेरी बुद्धि का पर्दा कुछ साफ़ हुआ. तब समझ में आया की महापुरुष कभी आत्महत्या नहीं करते. यदि मैं ज़हर ला भी देता तो क्या वे उसे खा लेते ? कभी नहीं. दूसरी बात यह समझ में आई कि यदि उनके लिए ज़हर लाता तो अपने लिए भी लाता. यह कैसा प्रेम है कि गुरु अपने प्राण देने के लिए तैयार है और शिष्य जीना चाहे. ज़हर लाकर एक हाथ से उन्हें पेश करना चाहिए था और दूसरे हाथ में अपने खाने के लिए रखना चाहिए था और उनसे विनम्रता पूर्वक निवेदन करना चाहिए था कि यह लीजिये ज़हर. आपकी आज्ञा का पालन हुआ. दूसरे हाथ में ज़हर है उसे मैं खाऊंगा. अब पछतावा होता है बड़ी भूल की, माया ने बड़े धोखे में डाल दिया.

(२८) एक बार की बात है कि सिकन्द्राबाद में वार्षिक भंडारा हो रहा था. उस समय गुरुदेव के गुरुभाई शाहजहांपुर निवासी श्री मदन मोहन लाल जी पधारे हुए थे. उनका अनुशासन बड़ा कठोर था और वे थोड़ी सी भी अनुशासनहीनता सहन नहीं करते थे. इसलिए सत्संगियों को उनके पास जाने में, विशेष कर उनसे बात करने में अपने आप को बड़ा सतर्क रखना पड़ता था. पूज्य गुरुदेव भी अपने गुरु भाइयों को बहुत आदर देते थे और सत्संग कराते समय उन्हें अपने पास बैठा लेते थे. जब भंडारे का प्रसाद चढ़ाया जाता था उस दिन तो अवश्य ही गुरुदेव अपने गुरु भाइयों को अपने बराबर बैठा कर प्रसाद चढ़ाते थे. अस्तु ,

उस दिन भी गुरुदेव के पास श्री मदन मोहन लाल जी विराजमान थे. गुरुदेव आँख बन्द किये हुए प्रवचन कर रहे थे. बीच में कोई ऐसी बात आयी जिसको गुरुदेव उसी प्रवचन में स्पष्ट कर देते परन्तु पूज्य मदन मोहन लाल जी ने उन्हें टोक दिया और अपना मत व्यक्त किया. यह बात गुरुदेव को अच्छी नहीं लगी और उन्होंने सारी संगत के सामने अपने गुरुभाई को डाट दिया और कहा कि क्या आप यह समझते हैं कि यह मैं बोल रहा हूँ ? जो कुछ ऊपर से उतर रहा है वो मेरे मुँह से निकल रहा है. आपको बीच में नहीं टोकना चाहिए.

जब कोई आचार्य प्रवचन दे रहा हो तब बीच में नहीं बोलना चाहिए. यदि कोई शंका उत्पन्न हो या कोई बात समझ में नहीं आ रही हो तो आगे जाकर वह उसी प्रवचन में साफ़ हो जायेगी. अन्यथा नम्रता पूर्वक उसे बाद में पूछ लेना चाहिए.

(२९) ७ जनवरी १९६७ को मैं सिकन्द्राबाद में श्री गुरु चरणों में बैठा हुआ था. उन्होंने कहा कि हर व्यक्ति का एक सूक्ष्म शरीर होता है जो ऊंचे अभ्यासियों को स्थूल शरीर के बाहर दिखाई देता है जिसे अंग्रेजी में aura कहते हैं. एक दिन वे अपने दवाखाने में में बैठे थे तो उन्होंने देखा कि उनके स्थूल शरीर में से उन्हीं के अनुरूप एक लाल रंग का शरीर निकलकर सामने खड़ा हो गया और धीरे-धीरे सब सफेद हो गया. उन्होंने पूज्य लाला जी महाराज को यह घटना पत्र में लिख दी जिसके उत्तर में पूज्य लाला जी महाराज ने लिखा -" अच्छा है, तुम्हारी ज़िंदगी में ही साफ़ हो गया.

सबके अंदर औरा होता है, संत लोग उसे पहिचान लेते हैं .

(३०) पूज्य गुरुदेव कहा करते थे कि फ़क़ीर या संत महात्मा का न तो निरादर करना चाहिए न कभी उसकी बुराई करनी चाहिए. गुरु की संतान की भी बुराई नहीं करनी चाहिए क्योकि उसमें भी गुरु का अंश होता है. ऐसा करने वाले को वह फ़क़ीर खुद तो दंड नहीं देता बल्कि उसकी खैर मनाता है क्योकि बिना दण्ड भोगे ऐसा व्यक्ति बच नहीं सकता. इसके ऊपर हर फ़क़ीर के जीवन में बहुत सी घटनाएं हुईं हैं . पूज्य गुरुदेव की जो घटनाएं मेरी जानकारी में घटित हुईं उनमें से कुछ यहां दी जाती हैं .

(क) बनारस के एक सत्संगी भाई बहुत गरीब थे, छोटा सा चाय अथवा भोजन का व्यवसाय एक खोखे में करते थे, गुज़ारा नहीं होता था और आर्थिक स्थिति बहुत ख़राब थी. जब ग़ज़ियाबाद में सत्संग भवन की इमारत बनी और उसमें रामाकृष्णा प्रिंटिंग प्रेस खोला गया तो उसमें उनको नौकर रख लिया गया और मुफ्त रहने को जगह दे दी गयी और हर तरह से भी उनकी सहायता होती रही. परन्तु वे खुशखोर (चटोरे) थे जिसके कारण चोरी की आदत भी थी. यही हाल उनकी पत्नी का था. संतान में दो पुत्रियां थीं. गुरुदेव के लिए जो नाश्ता भेजा जाता था वह ही अक्सर चोरी हो जाता था. किसी वक्त में एक गुड़ की भेली मंगाई गयी थी वह भी चोरी हो गयी. एक बहुत सुन्दर सी सुनहरी टाइम पीस एक सेवक अमेरिका से गुरुदेव के लिए लाया वह भी चुरा ली गयी. यद्यपि गुरुदेव सब जानते थे लेकिन दयावश वे दरगुज़र (overlook) कर जाते थे. एक बार की बात है कि नगर पालिका के दफ्तर से कुछ फार्म छापने के लिए प्रेस का टेण्डर (निविदा) पास हुआ. लम्बा काम था. छपे हुए फार्म चोरी होने लगे और एक दिन नगरपालिका के किसी कर्मचारी ने एक मिठाई वाले के पास से पकड़े. बात गंभीर हो गयी. हलवाई ने बताया कि एक व्यक्ति उन्हें उसके पास मिठाई के बदले में बेच जाता है. एक या दो दिन बाद उपरोक्त सत्संगी मिठाई वाले के पास रंगे हाथों पकड़े गए. जेल अवश्यम्भावी थी परन्तु गुरुदेव ने कृपा करके मामला रफ़े -दफै करवा दिया. उनको नौकरी से भी नहीं निकाला. परन्तु वे सज्जन अपनी

आदतों को सुधार नहीं सके. सत्संग का एक पेट्रोमैक्स लैंप भी ग़ायब कर दिया. छोटी-मोटी चीज़ों की तो कोई गिनती ही नहीं है.

उनकी धर्मपत्नी बहुधा बैठी-बैठी बकने लगती थीं मानो उनके ऊपर कोई भूत आ गया हो और उसी बकवास में वे गुरुदेव को गालियां दिया करती थी और उनके लिए अपशब्द कहा करती थीं. गुरु महाराज उनकी यह हरकत खूब जानते थे किन्तु वह क्षमा की मूर्ति थे और सदा इस परिवार को शुभकामनाएं दिया करते थे. परन्तु भगवान ने इस परिवार को उनके दुराचरण का दण्ड दिया. वे सज्जन सत्संग से तो विमुख हो ही गए आर्थिक अवस्था भी बद से बदतर (bad to worse) हो गयी और उनकी धर्मपत्नी को कैंसर रोग हुआ जिसके कारण उनकी मृत्यु हो गयी.

(ख) गोरखपुर के एक सज्जन बड़े प्रेम भाव से सत्संग में सम्मिलित हुए और गुरुदेव से दीक्षित हुए. गुरुदेव बहुधा गोरखपुर में उनके ही निवास पर ठहरा करते थे और उनका निवास स्थान ही गोरखपुर में सत्संग का केंद्र बन गया था. सत्संगियों की और गुरुदेव के प्रेमियों के सेवा में बहुत खर्च करते थे और यहां तक भी सुना गया है कि खर्च पूरा करने के लिए उन्होंने अपनी पत्नी का कोई आभूषण भी बेचा था. उनका अभ्यास भी बहुत ऊंचा था. उनकी स्थिति को देखकर सत्संगियों को ऐसा आभास होने लगा था कि गुरुदेव के आध्यात्मिक उत्तराधिकारियों में से संभवतया यह सज्जन भी एक हों. उन्होंने अपना एक निजी भवन बनवाने का निश्चय किया और उसके लिए एक plot (प्लाट) भी ले लिया. भवन बनने लगा. धन की कमी की पूर्ति के लिए पैसा इधर-उधर से ले लिया जाता और बहुत सा धन पूज्य सरदार करतार सिंह जी से भी उधार लिया गया. जब छतें पट गयीं तब गुरुदेव ने उसमें सत्संग कराया जिसमें बाहर से भी काफ़ी सत्संगी आये थे.

परन्तु यहां माया ने झटका दिया. उन सज्जन के कोई संतान नहीं थी इस कारण उन्होंने ऐसा आभास दिया था कि वह भवन सत्संग की ज्यायदाद हो जाएगी. कुछ अहंकार भी झलकने लगा. इधर उनके ऊपर सत्संग की और से ऋण की अदायगी का प्रश्न भी उठा क्योकि ऐसा स्पष्ट लगने लगा कि उस भवन को वह अपनी निजी सम्पति ही रखेंगे. इस आभास से उनके प्रति सत्संगियों के मन में आदर था उसको धक्का लगा क्योकि सत्संगियों ने, महिलाओं ने, यहां तक कि बच्चों ने भी मज़दूरों की तरह दिन रात लगे रह कर उस भवन के निर्माण में श्रमदान दिया था. स्वयं गुरुदेव भी वृद्धावस्था में उस श्रमदान में योगदान देते थे. इन सब बातों को मिलाकर.परिस्थितियां बदल गयीं. उन्होंने यह स्पष्ट कह दिया कि यह भवन उनकी निजी सम्पति है, सत्संग से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है. ऐसा भी सुना जाता है कि उनकी धर्मपत्नी, जो गुरुदेव की ख़ूब सेवा किया करती थीं, उनसे विमुख हो गयीं और अपशब्द प्रयोग किये. उस भवन में सत्संग होना बंद हो गया.

सुना जाता है कि एक दिन उनकी धर्मपत्नी ने अपने घर के आंगन में खुली आँखों एक दृश्य देखा. पूज्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज (दादा गुरुदेव) पधारे हैं और बड़े रोष की मुद्रा में हैं. उसके कुछ समय बाद ही वे किसी प्रकार गिर पड़ीं और उनका एक पैर टूट गया. जब यह समाचार सिकन्द्राबाद में गुरुदेव के पास पहुंचा तो वे बहुत दुखी हुए और " अल्लाह रहम कर, अल्लाह रहम कर " कहते -कहते बड़ी गंभीर मुद्रा में तेज़ी के साथ इधर-उधर टहलने लगे. किसी प्रेमी

सेवक के पूछने पर उन्होंने कहा कि मुझे डर है कि अमुक सज्जन की धर्मपत्नी की टांग सड़कर कहीं उनकी मृत्यु न हो जाय. इसलिए मैं परमात्मा से रहम की दरख्वास्त कर रहा हूँ."

हुआ भी ऐसा ही. सुना है कि उन महिला के पैर में bone T.B (हड्डी की तपेदिक) हो गयी और वे मर गयीं. वे सज्जन गुरुदेव से विमुख हो गए और दूसरा विवाह करने पर भी वे निसंतान ही रहे.

(३१) यह बात एक दो व्यक्तियों को छोड़कर और किसी को नहीं मालूम कि पूज्य गुरुदेव तंत्रविद्या ख़ूब जानते थे. परन्तु उन्होंने उसका कभी प्रयोग नहीं किया. किन्तु जहां तक मुझे मालूम है बिहार के एक सत्संगी भाई को उन्होंने इस विषय में कुछ बतलाया था और यह आदेश दिया था कि इसका दुरुपयोग मत करना. वे सज्जन शिक्षा विभाग में शिक्षक थे और स्वाभिमानी होने के कारण किसी से दबते नहीं थे. उनके किसी अधिकारी से कुछ कहासुनी हो गयी और आवेश में आकर उनको श्राप दे बैठे जिस कारण उस अधिकारी के बेटे की मृत्यु हो गयी. गुरुदेव ने इस घटना को अंतर्दृष्टि से देख लिया और उन्हें बुलाकर बहुत डाँटा और वह विद्या उनसे छीन ली.

(३२) इन्हीं सज्जन की एक घटना और है. किसी धनाढ्य सेठ की पुत्री को घर पर पढ़ाने जाते थे. एकांत कमरा था और उस कन्या के मन में विकार उतपन्न हुआ. पहले तो संकेत से और फिर स्पष्ट तौर पर इनसे कहने लगी कि तुम मुझसे प्यार करो. इनकी समझ में अच्छी तरह नहीं आया और ये पढ़ाकर चले आये. अगले दिन जब यह गए तो वह कन्या बहुत उत्तेजित थी. उसने अपने पिता की धन से भरी तिजोरी खोल दी और इन्हें पकड़ कर कहा कि जितना धन चाहो ले लो परन्तु मुझे प्यार करो. उस समय गुरुदेव ने अपनी अंतर्दृष्टि से घोर अनिष्ट से बचाया. इतना बड़ा लालच देखकर भी उनकी बुद्धि को विचलित नहीं होने दिया और इनके मुख से यही निकला कि इस काम के लिए मैं कल आऊंगा, आज मुझे जल्दी है. अगले दिन गुरुदेव का तार मिला कि तुम फौरन चले आओ. ये गुरुदेव के पास गए हैं, उन्होंने फटकारा कि अगर मैं नहीं होता तो तुम तो डूब गए थे. तुम्हें धन की लालसा हो तो मुझसे कहो मैं एक निगाह में रुपये का पहाड़ लगा दूंगा. आयन्दा ऐसी हरकत कभी मत करना.

बड़े दुःख की बात है कि वे सज्जन, ऐसा लगता है कि विमुख हो गए हैं और अब सत्संग में उन्हें पहले जैसा आकर्षण नहीं है.

(३३) उनका कहना था कि न अपने साथ कुछ लाये हो और न ले जाओगे. जो मिला है, यहां मिला है और मरने के बाद यहीं रह जायेगा, इसलिए उसका सदुपयोग करो. उनका कहना था कि अपनी अर्जित/संचित कमाई, धन आदि में से रिश्तेदारों को, संबंधियों को, जिस जिस को तुम्हे जो देना है उतना उन्हें दे दो. मगर रिश्तेदारों से कब तक ताल्लुक़ है तुम्हारा.? मरने के बाद जैसे तुमने कर्म किये हैं वैसा जन्म मिलेगा. वैसा ही उसमें भोगोगे. मरने का बाद क्या किसी से कोई रिश्ता रहता है. इसलिए जो धन, जिसे तुम अपना कहते हो उसे गरीबों में बाँट दो. गरीबों में ईश्वर बसता है.

इसलिए अल्लाह का अल्लाह को दे दो. अगर तुम उसका बदला चाहते हो तो उससे दस गुना तुम्हें अगले जन्म में मिलेगा. और अगर कोई बदला नहीं चाहते तो ईश्वर तुम्हें अपना प्यार देगा.

सिकंद्राबाद में एक बड़े भरी रईस थे. वे वसीयत कर गए कि मेरे नौकर को पाँच सौ रुपये दे देना. गुरुदेव वहां मौजूद थे. वसीयतनामा अपने बेटे को दे दिया और उससे मौखिक भी कह दिया. उनके मरने का बाद उस नौकर को लड़के ने मार-पीट कर निकाल बाहर किया और एक कौड़ी भी नहीं दी. गुरुदेव कहा करते थे कि वह सज्जन अपने पैसे के मालिक थे और स्वयं ही उस नौकर को दे जाते तो उन्हें कौन रोक सकता था. इसलिए उनका आदेश था कि जो कुछ देना-लेना है उसे अपने हाथ से कर जाओ, दूसरों के हाथ में मत छोड़ जाओ

(३४) दि. १३-११-१९५६ की बात है, रात को गुरुदेव इरविन रोड, दिल्ली, में एक भक्त के घर पर ठहरे थे. बाहर वाले कमरे में उनके पास वाली चारपाई पर मैं सोया था. सुबह उठकर मैने प्रणाम किया और उन्होंने दुआ दी. उसके बाद जीव, आत्मा और परमात्मा का उदाहरण देकर समझाया- घड़ा शरीर है, पानी मन और उसमें सूरज की परछाईं आत्मा है. अगर पानी गंदा है और उसमें लहरें उठ रही हैं तो परछाईं साफ़ नहीं दिखायी देती , यही हाल मन और आत्मा का है. घड़े के फूट जाने पर सूरज कहीं चला नहीं जाता. वह तो हमेशा से क़ायम है और हमेशा क़ायम रहेगा. घड़े के जो तत्व हैं प्राकृतिक तत्वों में मिल जाते हैं. यही हाल शरीर का है. इंसान की मौत हो जाने पर उसका पार्थिव शरीर प्राकृतिक तत्वों में विलीन हो जाता है और आत्मा का नाश नहीं होता.

मेरे मन में अपनी कमज़ोरियों को उनके सामने रख देने की बड़ी इच्छा थी. मैने अर्ज़ करने की इज़ाज़त चाही. उन्होंने कहा - : हाँ, कहिये." बहुत कुछ चाहते हुए भी कुछ न बोल सका . कण्ठ रुंध गया और ऐसा लगा कि दिल गर्म मोम की तरह आँखों के रास्ते बहा जा रहा है. फिर कौन कहने वाला था और कौन सुनने वाला ? मुमकिन है थोड़ी देर बाद ज़ुबान कुछ कहने के लिए खुल जाती. इतने में मेरी मौसी जी ने आकर गुरुदेव को नमस्ते की और आज्ञा पाकर सोफ़े पर बैठ गयीं. उनके सोने की हालत पूछने के बाद आप मेरी तरफ मुख़ातिब हुए और बड़े प्रेम से फ़रमाया - " देखिये महेश बाबू, हम जब आगरे में पढ़ते थे उस समय तक हमें अपने गुरुदेव की ख़िदमत में जाते हुए करीब १४ साल हो गए थे और हमने अभी उनसे कुछ सीखने की कोशिश नहीं की. अचानक उनका खत आया कि प्रेम महाविद्यालय, वृंदावन के जो प्रिंसिपल साहब हैं वे उनसे तालीम हासिल करने के बड़े ख्वाहिशमंद (इच्छुक) हैं और उन्हें बुलाया है. वे अलील (बीमार) हैं इसलिए जाने से मज़बूर हैं. आगे लिखा - " मैं तुम्हें हुक्म देता हूँ की वृंदावन जाकर उनके सवालों का जबाब दो और उन्हें तालीम दो." आपने आगे फ़रमाया कि इस खत को पढ़कर मैं हैरान रह गया और सोचा कि प्रिंसिपल साहब को, जो इतने विद्वान आदमी हूँ, मैं क्या तालीम दूंगा और क्या उनके सवालों के जबाब. ? इसीलिए मैने गुरुदेव को खत लिखा कि हुक्म की पाबन्दी के लिए मुझे कोई उज्र नहीं है लेकिन मैं वह जाकर क्या कर सकूंगा ?

इसके बाद उस बात को पूरा न करते हुए आपने फ़रमाया कि- 'हुक्म काम किया करता है, इंसान नहीं'. चपरासी की चपरास काम किया करती है, खुद उसकी हस्ती कुछ नहीं है. सिखों में एक गुरु थे, (जिनका नाम उस समय उनको याद नहीं आया) उनके विसाल (निर्वाण) का वक्त जब क़रीब आया उस वक्त तक उनके शिष्यों में से कोई इस क़ाबिल नहीं था जो उनकी गद्दी सम्भाल सके. उस वक्त उनकी निगाह एक लड़के पर गयी जिसकी उम्र ६ वर्ष थी. उन्होंने उसको अपना ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) बनाया. विसाल (निर्वाण) के बाद जब वह गद्दी पर बैठा और दरबार लगा तो कुछ ब्राह्मण उसका इम्तिहान लेने आये और उनके सबालों का जबाब देने के लिए कहा. लड़के ने कहा - " जो सबालात आपने पूछे हैं, मामूली हैं. उनका जबाब तो मेरे कहार भी दे सकते हैं." यह कहकर उन्होंने अपने एक कहार को बुलाकर आज्ञा दी कि इनके सबालों का जबाब दो. कहार ने गुरु चरणों में बैठ कर सब सबालों के ठीक-ठीक जबाब दिए. ब्राह्मण संतुष्ट होकर गए और उन्हें विश्वास हो गया कि किसी का हुक्म ही काम करता है.

इसके बाद अपने फ़रमाया कि मैं अपनी कठिनाइयां १७ तारीख़ को गाज़ियाबाद में मिलने पर पेश करूँ. उसके बाद नित्य कर्म से निवृत होकर आपने एक प्याला चाय पी और तीमारपुर चले गए.

मैने टटोलकर देखा तो मेरे अंदर कहने योग्य कोई कठिनाई न थी.

(३५) संत जन अन्तर्यामी होते हैं. वे अपने प्रत्येक सेवक की देख-रेख अज्ञात रूप से करते रहते हैं, किन्तु कुछ बताते नहीं हैं. गुरुदेव के जीवन में सत्संगी भाई-बहिनों के साथ न जाने कितनी ऐसी घटनाएं घटित हुईं जिन्हे सुनकर आश्चर्य तो होता है, परन्तु अविश्वास नहीं होता बल्कि संतों के प्रति श्रद्धा दृढ होती जाती है और विश्वास पक्का होता जाता है . इस विषय पर थोड़ी सी घटनाएं यहां दी जाती हैं.

(अ) ग्वालियर की एक महिला (श्रीमती प्रभावती) उनकी सेवा में आया करती थीं. उन्होंने उस समय दीक्षा नहीं ली थी सम्भवतया इसलिए क्योकि वे संत की परख किये बिना अपने आपको गुरु के समर्पण करने में संकोच का आभास करती थीं, और यह ठीक भी है. जब तक पूरी तस्सली न कर लें, गुरु धारण नहीं करना चाहिए.

एक बार वे अपनी एक घरेलू समस्या को लेकर गुरुदेव की सेवा में गयीं. बातें करते समय गुरुदेव ने समझाया कि-" हर समस्या में आप अपने आपको ही संभाल सकती हैं,दूसरे को नहीं. दूसरे को संभालना अति कठिन है और उसकी अपेक्षा भी नहीं करना चाहिए. मैं आपको एक छोटा सा उदाहरण देता हूँ. आपकी बहू झाड़ू लगाकर कूड़ा बीच दरवाज़े में जमा करती है. अपने बहुत बार उसे ऐसा करने से मना किया, समझाया, लेकिन वह बदस्तूर कूड़ा वहीं इकठ्ठा करती है. आपके कहने का उसके ऊपर कोई असर नहीं हुआ ".

गुरुदेव के श्रीमुख से यह सब सुनकर उन महिला के शरीर में एकदम सनसनाहट फैल गयी, मानो बिजली ने करंट मार दिया हो. लज्जित होकर उन्होंने अपनी दृष्टि नीची कर ली. सोचने लगीं कि मैने तो कभी ऐसी बात इनसे कही भी नहीं, और न इतनी छोटी सी बात ज़िक्र करने की ही थी. मैं तो इनको साधारण मनुष्य ही समझती थी किन्तु यह तो महाशक्तिमान तथा अन्तर्यामी हैं. उसी समय उस महिला के मन में विचार उठा कि इन महापुरुष से दीक्षा अवश्य लेनी चाहिए. पांच-सात मिनिट चुपचाप बैठी रहीं. गुरुदेव उनकी तरफ देखते रहे. फिर बोले- " मैने क्या आपसे कुछ ग़लत बात कह दी है ? मैने तो आपकी समस्या का निवारण करने के लिए एक मामूली सा उदाहरण दिया है. घरों में ऐसा हुआ ही करता है." वो महिला सोचने लगीं कि मैं इनसे कैसे कहूँ कि आपका यह उदाहरण वास्तविकता है. उसके बाद गुरुदेव ने काफ़ी देर तक उन्हें समझाया और उनके मन में गुरुदेव की प्रभुता व शक्ति की अमिट छाप बैठ गयी.

बाद को जब गुरुदेव ग्वालियर पधारे, उन महिला ने उनसे दीक्षा के लिए निवेदन किया. गुरुदेव ने फ़रमाया, " इतनी जल्दी क्यों ? पहले गुरु की परख तो कर लो, दीक्षा देने लायक है भी या नहीं." तब उन महिला ने निवेदन किया कि. "मैं क्या परखूँगी, आप ही देख लीजिये कि मैं शरण में आने योग्य हूँ या नहीं." गुरुदेव ने कृपा करके उनको दीक्षा देकर अपनी शरण में ले लिया.

(ब) दीक्षा के बाद वे महिला अक्टूबर के भंडारे में बराबर सिकंद्राबाद जाती रहीं. एक बार की बात है कि गुरुदेव चैस्टर पहिने सत्संग भवन के आंगन में खड़े थे और वे महिला बराबर के कमरे में बैठी थीं. महिला के मन में एकदम यह विचार उठा कि चैस्टर गुरु महाराज को जंचता नहीं, यदि धोती -कुरता और बास्केट पहिनें तो बहुत जंचें. अगले वर्ष जब वे भण्डारे में सिकंद्राबाद गयीं तो गुरुदेव को धोती-कुर्ता और बास्केट पहिने देखा. उनके मन में लज्जा उतपन्न हुई कि मेरे मन की भावना जानकर गुरुदेव ने अपना पहनावा ही बदल दिया.

एक या दो वर्ष बाद जब वे फिर सिकंद्राबाद भण्डारे में गयीं, तब गुरुदेव पण्डाल में बैठे प्रवचन कर रहे थे. अचानक गुरुदेव की तरफ देखकर प्रभावती जी के मन में विचार आया कि यदि यह महापुरुष दाढ़ी रख लें तो इनके श्रीमुख पर बड़ा तेज आ जावेगा. अगले साल वे फिर गयीं तो प्रवचन समाप्त होने पर पहुंची. गुरुदेव आंगन में कुर्सी पर विराजमान थे. उनके श्रीमुख पर दाढ़ी देखकर वे हतप्रभ रह गयीं . उनके नेत्रों से अश्रु धारा बह चली और वे चरणों में नतमस्तक होकर वहीं बैठ गयीं. गुरुदेव ने उनकी कुशल पूँछी. तब उन्हें समझाया कि -"सबसे मुख्य बात तो यह है कि गुरु और शिष्य के मन

का परस्पर खिंचाव हो जाय यानी गुरु शिष्य के मन की बात और शिष्य गुरु के मन की बात जान ले." इसके बाद थोड़ी देर और समझाते रहे जिससे प्रभावती देवी जी के मन को पूरी तसल्ली हो गयी कि यह महापुरुष अन्तर्यामी ही नहीं सर्व सामर्थ्यवान हैं.

गुरुदेव के महानिर्वाण के बाद भी इन महिला को तथा अनेकों और सेवकों को उनसे प्रेरणा तथा सहायता मिलने की अनेकों घटनाएं हैं.

(स) तिथि ठीक से याद नहीं है, परन्तु शायद यह ८ या ९ फरवरी सन १९७० की घटना है. सिकंद्राबाद में पूज्य गुरुदेव के निवास पर बसंत पंचमी का भंडारा हुआ था. बहुत थोड़े प्रेमी भाई आये थे क्योंकि गुरुदेव अस्वस्थ चल रहे थे. इलाहबाद से श्री सत्य प्रकाश एडवोकेट, (जो अब इस संसार में नहीं हैं) भी पधारे थे. वो सिकंद्राबाद सत्संग भवन में दक्षिण वाले कमरे में ठहरे थे. गुरुदेव का नियम था कि सब सत्संगियों से उनके ठहरने के स्थान पर जाकर उनकी कुशल पूंछते थे और यह भी पूंछते थे कि ठहरने में कोई असुविधा तो नहीं है. अतः वे उनके पास भी गए. कुशल पूँछी और बैठ गए. वहां एक-दो सज्जन जो सत्संग में नए आये थे, बैठे हुए थे. गुरुदेव को देखकर वे खड़े हो गए और यह सोचकर कि जब दो बुज़ुर्ग आपस में बातें करते हों तो वहां से चले जाना चाहिए, वे लोग जाने लगे परन्तु गुरुदेव ने इशारा किया कि वे वहीं बैठे रहें.

वकील साहब को सम्बोधित करते हुए पूँछा कि क्या कोई आदमी पिछले शुक्रवार को अपना केस लेकर तुम्हारे पास आया था ? केस में writ (रिट) लोअर कोर्ट के फैसले के खिलाफ़ दायर करनी थी. तुमने केस का अध्ययन करने के बाद उस व्यक्ति से अगले दिन यानी शनिवार को आने केर लिए कहा था.जब वह व्यक्ति आया तो आपने उसका केस लेने से इन्कार कर दिया परन्तु जब उसने आपकी फीस में पाँच सौ रुपये और बढ़ा दिए तो आपने सोमवार को रिट दायर करने के लिए हाँ कर ली. उस दिन रात को आपके मन में केस को अध्ययन करने की इच्छा हुई लेकिन उसे अच्छी तरह से अध्ययन नहीं किया और यह ख्याल करके सो गए कि अगले दिन इतबार है, खूब अध्ययन कर लेंगे.

अगले दिन छुट्टी के मूड में रहे. शाम को जब केस स्टडी करने बैठे तो आपकी श्रीमती जी ने सिनेमा की टिकटें जो पहले से ले रखीं थीं, आपके सामने रख दीं और सिनेमा चलने की ज़िद की, और आप मान गए. रात को भी केस स्टडी करने में सुस्ती दिखलाई और सो गए. सोमवार को हाईकोर्ट में विपक्षी वकील की दलीलों का आप जबाब नहीं दे सके और रिट ख़ारिज़ हो गयी. क्या यह आचरण सत्संगियों का है ? क्या आप यहां आपने रिश्तेदारों से मिलने आते हैं ? आप यह भूल जाइये कि आप सिर्फ भण्डारे के तीन दिन ही सत्संगी हैं. आप हर समय सत्संगी हैं और आपका हर रोज़ का आचरण एक आदर्श सत्संगी का होना चाहिए ताकि सत्संग बदनाम न हो. और भी कुछ ऐसी ही बातें कह कर गुरुदेव वहां से चले गए.

श्री सत्य प्रकाश जी कहने लगे कि ऐसा कोई जरिया नहीं है कि यह सच्ची घटना इतनी जल्दी गुरुदेव के कानों तक पहुंच सके. जो नए सत्संगी वहां बैठे थे उनके मन में जो भी भ्रम था मिट गया और उन्हें यह पूर्ण विश्वास हो गया कि यह सच्चे संत और अन्तर्यामी हैं.

(द) एक बार लखनऊ में गुरुदेव अपनी ज्येष्ठ सुपुत्री (शकुंतला बहिन) के घर ठहरे हुए थे. आपके दर्शनों और सत्संग लाभ के लिए लखनऊ और आस-पास के अनेकों प्रेमी भाई-बहिन आये हुए थे. सौभाग्य से मैं भी मौजूद था. दोपहर के भोजन के उपरान्त आप थोड़ी देर विश्राम के लिए चारपाई पर लेटा करते थे और लेटे ही लेटे भक्तों से बातचीत करते रहते थे. बहिन शकुंतला के घर पर उस दिन आप भोजन के उपरान्त लेटे हुए विश्राम कर रहे थे. इतने में ही गोरखपुर के निकटवर्ती देहात से एक सत्संगी बहिन आ गयीं. आपने उन्हें आपने सिराहने बिठाने को स्थान दिया और बातचीत करने लगे. इन बहिन से भी आपने उनकी और उनके परिवार की कुशल पूँछी. जब वे अपनी कह चुकीं तो आपने उनसे कहा -" देखो बहिन, तुमने आपने सारे सांसारिक कर्तव्य पूरे कर लिए हैं. अब तुम दुनियां के चक्कर को छोड़ो. मेरे साथ रहा करो और भगवान का भजन करो. "

वे बहिन बोलीं-" भाई साहब, मुझे आपसे बहुत प्रेम है और मैं चाहती हूँ कि बार-बार आपके दर्शन के लिए सिकंद्राबाद आऊं लेकिन मज़बूरी के कारण नहीं आ पाती हूँ क्योकि मैं अकेले सफर नहीं कर सकती हूँ."

गुरुदेव ने फ़रमाया -" बहिन, गुरु से परदे में बातें किया करो.(उनके कहने का तातपर्य यह था कि गोपनीय बातों को गुरु से एकांत में कहना चाहिए.) गुरु सब जानता है कि उससे किसको कितनी मौहब्बत है ."

वे बहिन शायद इस बात को समझ नहीं सकीं और आपने प्रेम की रट लगाए रहीं. इस पर गुरुदेव उठकर बैठ गए और उन बहिन से बोले-" तुम्हें सच-सच बता दूँ कि तुम्हें मुझसे कितनी मौहब्बत है ? देखो बहिन, क़रीब चार महीने हुए जब तुम्हें मुझसे मिलने की बड़ी तीव्र इच्छा हुई थी. उस समय तुम्हारे पास कोई ऐसा आदमी नहीं था जो तुम्हें मेरे पास सिकंद्राबाद ले आता. तुम बहुत परेशान रहीं. दूसरे दिन एक आदमी तुम्हारे पास पहुंचा और उसने तुमसे कहा कि मैं सिकंद्राबाद जा रहा हूँ, क्या तुम मेरे साथ चलोगी ? तब तुमने यह कहा कि मेरे नाती की तबियत ठीक नहीं है वरना ज़रूर चलती. बताओ यह बात ठीक है या नहीं. ?"

उन बहिन ने इस सत्यता को स्वीकार किया परन्तु फिर भी गुरुदेव के प्रति अपनी मौहब्बत की रट लगाए रहीं और बात को नहीं समझी.

गुरुदेव ने पुनः कहा - " बहिन, बताओ तुम्हें आपने गुरु से प्यार था या नाती से. गुरु से प्यार केवल क्षणिक होता है ."

फिर आपने आप ही बोले - " अब इस बात को छोड़ो, मूल से ब्याज ज़्यादा प्यारा होता है.

आपने फिर फ़रमाया -" देखो बहिन, इस घटना के एक महीने बाद तुम्हारे मन में मुझसे मिलने की फिर हुड़क हुई और उस समय भी तुम्हारे पास कोई आदमी नहीं था जो तुम्हें मेरे पास ले आता. दूसरे दिन एक आदमी तुम्हारे पास पहुंचा और तुमसे बोला कि अगर तुम सिकंद्राबाद चलना चाहो तो मेरे साथ चल सकती हो. तुमने उस दिन यह कह दिया कि घर में बहू नहीं है, लड़कों को खाने पीने की दिक़्क़त होगी. बहिन, आप बताओ कि तुम्हें मुझसे मौहब्बत थी या लड़कों से. छोड़ो इसको भी क्योकि लड़का तो प्यारा होता ही है. "

थोड़ी देर रुक कर आपने फिर फ़रमाया -" देखो बहिन, दो महीने पहले तुम्हें फिर मुझसे मिलने की इच्छा हुई थी और उस समय भी तुम्हारे पास कोई लाने वाला नहीं था. परमात्मा ने कृपा करके दूसरे दिन तुम्हारे पास एक भाई भेजा था जो तुम्हे मेरे पास लाने को तैयार था. उससे भी तुमने कहा था क्या बताऊँ भाई, बहू के हाथ में चोट लग गयी है, खाना बनाने में दिक़्क़त होती है इसलिए मज़बूरी है, नहीं तो मैं ज़रूर चलती."

इन तीनों घटनाओं को बताने के बाद आपने उन बहिन से कहा - " देखो तुम्हें गुरु से केवल थोड़ा सा प्रेम है. इसीलिए कहता हूँ कि दुनियां को छोड़कर कुछ दिनों मेरे साथ रहो लेकिन तुम सुनती नहीं हो."

जीवनदान

(३६) एक बार गुरुदेव पूज्य श्री सेवती प्रसाद साहब की सबसे छोटी पुत्री के विवाह में आशीर्वाद देने के लिए कासगंज गए थे. जून का महीना था. गर्मी बहुत थी, रात्रि को विवाह संपन्न हुआ. भोर की ट्रैन से गुरुदेव फतेहगढ़ के लिए चल दिए. साथ में सरदार जी भाई साहब, चौबे जी, भजन शंकर जी, मैं और दो-तीन अन्य भाई जिनके मुझे नाम नहीं याद आ रहे हैं. दिन के ग्यारह बजे के लगभग हम लोग पूज्य महात्मा जी के निवास स्थान पर पहुंचे, वहां पर माता जी (पूज्य लाला जी महाराज की पुत्र-वधु) मौजूद थीं और उनके दो सुपुत्र जो उस समय छोटे थे, मौजूद थे. इन दोनों सुपुत्रों में से बड़े (श्री अखिलेश कुमार जी) अब संसार में नहीं हैं और छोटे श्री दिनेश कुमार जी अब बाल-बच्चेदार हैं और रेलवे में नौकरी करते हैं.

माताजी गुरुदेव से पर्दा करती थीं. हम लोग पूज्य महात्मा जी वाले कमरे में (जिसका फर्श कच्चा था) दरी पर बैठे थे. पानी पिया और फिर गुरुदेव ने माता जी से कहा कि हम सब गंगा स्नान करने जा रहे हैं. दिन का भोजन यहीं करेंगे. रोटी, दाल और चटनी बनाना. फिर वे सबको लेकर गंगा स्नान करने चल दिए. वे वहां के रास्तों से भली-भांति परिचित थे क्योकि वहीं रह कर उन्होंने मेट्रिक की परीक्षा पास की थी. किला घाट जाकर सबने गंगा स्नान किया. गुरुदेव तैरना जानते थे. थोड़े से तैरे, अन्य लोग जो जानते थे वे भी तैरे. गंगा जी के निर्मल शीतल जल में गुरुदेव के साथ स्नान करने का सौभाग्य जैसा हम लोगों को मिला वैसा कदाचित किसी और को नहीं मिला होगा.

लौटते समय उन्होंने एक बड़ा सा तरबूज़ खरीदा. गुरुदेव का यह नियम था कि वे किसी के घर कभी ख़ाली हाथ नहीं जाते थे. खाने-पीने की कोई वस्तु अवश्य ले जाते थे. गंगा जी से लौट कर घर आये, तरबूज़ घर में दे दिया, भोजन किया और थोड़ी देर विश्राम किया.

भोजन के उपरान्त उन्होंने मुझसे कहा कि तुम्हें तो अपनी ससुराल में जाना होगा. यहां मैं यह बता देना चाहता हूँ कि मेरी ससुराल फतेहगढ़ में ही है. उसी मकान में (जो मेरे ससुर जी ने उसके पहले मालिक से खरीद कर दुबारा बनाया है.) गुरुदेव के पिता जी रहा करते थे और वहीं रहकर गुरुदेव महात्मा श्री रामचंद्र जी महाराज के संपर्क में आये थे . ससुराल जाने की बात सुनकर मैने कोई उत्तर नहीं दिया क्योकि मैं ससुराल जाने के लिए फतेहगढ़ नहीं आया था किन्तु मैं उनकी बात समझ गया कि वे अपने पुराने निवास स्थान को पवित्र करना चाहते हैं. जब मैं चलने को तैयार हुआ तो उन्होंने कहा कि शाम का चाय-नाश्ता हम वहीं करेंगे. मेरी ससुराल में पधारने का क्या भेद था, यह इस घटना में आगे आ रहा है.

उस समय मेरी ससुराल में मेरे बड़े साले साहब सपरिवार रह रहे थे. उस दिन गोद की एक छोटी बच्ची कुछ बीमार थी और उसे उसकी माता ने कोई घरेलू दवा दे दी थी. शाम को जब गुरुदेव के साथ सब लोगों ने वहाँ चाय नाश्ता कर लिया उसी समय उस बच्ची की हालत बिगड़ गयी. यहाँ चाय पीते समय गुरुदेव आपने पुराने संस्मरण कह रहे थे. मेरे साले साहब बच्ची को गोद में लेकर गुरुदेव के सामने लाये क्योकि वे जानते थे कि गुरुदेव एक कुशल डॉक्टर हैं. बच्ची के हाथ-पाँव नीले पड़ गए थे. आँखें ऊपर चढ़ गयीं थीं और हालत गंभीर थी. मेरे साले साहब डॉक्टर को बुलाने की जल्दी में थे. गुरुदेव ने उन्हें मना किया और आदेश दिया कि अमुक दवाएं तुरन्त बाजार से ले आएं और देर बिलकुल न करें. जब तक दवाएं आएं तब तक आपने बच्ची की माता से वह दवा मंगा कर देखी जो उस बच्ची को दी जा चुकी थी. देखा तो वह अफ़ीम थी जो भूल से दी गयी थी और उसी के प्रभाव से बच्ची मरणासन्न हो गयी है. बाजार पास ही था. तुरन्त ही दवा और इन्जेक्शन आ गए. गुरुदेव ने कृपा करके इंजेक्शन लगाया और औषधियों का प्रयोग किया. आधे घंटे में वह बच्ची स्वस्थ होने लगी.

मेरे साले साहब से आपने कहा कि -" बाबू साहब, आपकी यह बच्ची भी मर जाती और आप हवालात में होते." यह बच्ची को प्राण-दान था.

इस घटना का दूसरा चरण

(गुरु की आज्ञा की अवेहलना और उसका परिणाम)

यहाँ मैं यह बतलाना भूल गया कि उन दिनों पूज्य सरदार जी भाई साहब के पास फ़िएट गाड़ी थी और उसी मैं बेठ कर हम लोग गुरुदेव के साथ कासगंज गए थे. विवाह के उपरान्त उसी गाड़ी में बैठ कर वापिस लौटे. रास्ते में पहले सिकन्द्राबाद पड़ता था. वहाँ पूज्य गुरुदेव के निवास स्थान पर गाड़ी रोकी गयी. गुरुदेव के साथ पूज्य सरदार जी भाई साहब, भाभीजी और यह सेवक था. घर में जाकर पानी पिया और सरदार जी भाई साहब ने तथा मैने जाने की आज्ञा मांगी. हम दोनों के मन में अपनी-अपनी दुकान की फ़िक़र पड़ी थी कि कई दिन से बाहर हैं, दुकानं का नुकसान हो रहा होगा. पूज्य गुरुदेव ने कहा कि अभी ठहरो, दोपहर बाद चले जाना. उन्होंने यह आग्रह कई बार किया परन्तु हम लोग आपने स्वार्थ में ऐसे लिप्त थे कि उनकी बात नहीं मानी और ठीका -ठीक दोपहरी में दिल्ली की ओर चल दिए. गर्मी बहुत थी ओर लू चल रही थी. कोट गांव की नहर के पुल को पार किया ही था कि कुछ आगे जाकर गाड़ी का पिछला टायर बर्स्ट हो गया. सौभाग्य से वहीं पर एक मंदिर ओर कुआँ था जहाँ हम लोगों ने पानी पिया ओर पेड़ की छाया में बैठ गए. संयोग से गाड़ी में दूसरा पहिया नहीं था जिसे लगा कर गाड़ी को आगे ले जाने लायक बनाया जाता. डॉयवर ने जैक लगा कर पहिया निकाला और बस में बैठ कर गाज़ियाबाद (लगभग १६ मील) जाकर उसे ठीक करा कर लाया ओर गाड़ी में फिट कर दिया. इस काम में लगभग दो घण्टे व्यतीत हो गए. लगभग दस-ग्यारह मील चलकर वही पहिया फिर वर्स्ट हो गया और ऐसी जगह हुआ जहाँ दूर-दूर तक पानी नहीं था. गर्मी के मारे हाल खराब था. मारे प्यास के होंठ सूख रहे थे. पहिया फिर निकाला गया और ड्राइवर और भाई साहब उसे गाज़ियाबाद ले गए. मैने आपने एक परिचित मित्र को एक पर्चा लिख दिया था जिसने अपनी दुकान में से एक पहिया गाड़ी में लगाने के लिए दे दिया. भाभी जी को पहले ही किसी की गाड़ी रोक कर गाज़ियाबाद के लिए बैठा दिया था, जो दस-पद्रह मिनिट में मेरे घर पहुंच गयीं थीं. खराब गाड़ी की रखवाली के लिए मैं रहा था. गाड़ी की चाबियाँ भी मेरे पास नहीं थीं जो उसमें ताला डालकर मैं कहीं से पानी पी आता. दूसरा पहिया आने में लगभग एक घंटा लगा और उस एक घण्टे में मुझे जीवन रक्षा करना दूभर हो गया. गुरुदेव ने ही रक्षा की अन्यथा प्यास और गर्मी के मारे मेरा दम निकल जाता. जब गाड़ी में पहिया पुनः फिट कर दिया गया और उसमें केवल ड्राइवर और मैं बेठ कर गाज़ियाबाद आये तो शाम हो चुकी थी. पूज्य भाई साहब और भाभी जी गाज़ियाबाद से दिल्ली जा चुके थे. गाड़ी बाद में ड्राइवर दिल्ली ले गया. हो गयी हम दोनों की दुकानदारी ? यह था गुरुदेव की अवज्ञा का फल.

(३७) एक सज्जन पहली बार सन १९६९ में जयपुर से एक पुराने सत्संगी भाई के साथ सिकन्द्राबादआये. उनके ह्रदय में जिज्ञासा थी कि किसी संत के दर्शन करने की. वैसे तो वे आर्य समाजी विचारों के थे, परन्तु उनके मन में संतों का ऐसा चित्रण था कि संत तेजस्वी , बलिष्ट और दूसरों के मन की बात जाननहारा होता है. पूज्य उस समय काफी बृद्ध थे और शरीर दुर्बल था, जिसे देखकर उन सज्जन को कुछ ऐसा नहीं लगा कि यह संत हैं. भोजन का समय था . खाना आया और जब सबने खा पी लिया तो जयपुर के उन सत्संगी भाई को (जिनके साथ ये सज्जन आये थे) सम्बोधित करके कहा यह शख्स अभी (rough) अयोग्य है. इसके साथ मेहनत करने की ज़रूरत है. उन जिज्ञासु से कहा कि जयपुर में हमारे गुरु भाई ठाकुर राम सिंह जी चंद्र महल में रहते हैं, उनके पास जाते रहें और राजगढ़ में भी महात्मा गंगा भारती से मिलते रहें .

दूसरी बार जब वे सज्जन सिकन्द्राबाद गए, तो उनके साथ उनका छोटा भाई भी था जो गुड़गांव में बिक्रीकर विभाग में काम करता था. पूज्य गुरुदेव अस्वस्स्थ थे और पलंग पर विराजमान थे. सत्संग भवन में कुछ मरम्मत हुई थी, उसकी सफाई करा रहे थे. उन लोगों को आया देखकर आप पलंग पर लेटे से बैठे हो गए. कपड़े की टोपी जो आपने सिर पर पहन रखी थी, उठते समय नीचे गिर गयी. जब दूसरे लोग उसे उठाने लगे तो उन्हें मना करके स्वयं झुककर टोपी उठाई और सिर पर रखते हुए कहने लगे कि बेअदबी हो गयी. हमको हर वक्त 'हुज़ूरी' में रहना (ईश्वर के दरबार में उपस्थित रहना) पड़ता है. उन सज्जन के छोटे भाई से कहने लगे , " आप सेल्स टैक्स में काम करते हो, आदमी को ईमानदारी बरतनी चाहिए." वे भाई (जिनका नाम खेमचंद है) बोले, " बेईमानी से क्या नुक़सान होता है ? संत लोग तो ऐसा ही कहते हैं. एक आदमी दस रुपये रिश्वत लेता है, दूसरा मेहनत से दस रुपये कमाता है. बाजार में जाकर दोनों सामान खरीदते हैं तो सामान एक ही भाव और तौल में दोनों को एक सा ही मिलता है." यह सुनकर गुरुदेव चुप हो गए. खेमचंद का हाथ पकड़ा और उनके बड़े भाई से भी कहा कि -" आओ दिखलाऊँ बेईमानी की कमाई करने वालों का क्या हश्र (परिणाम) होता है." निकट ही एक पेशकार साहब की हवेली दिखाने ले गए. हवेली तो बहुत बड़ी थी परन्तु वीरान थी. कबूतरों की बीट और जानवरों की बदबू से भरी पड़ी थी. फिर कहा - " जिन सज्जन की यह हवेली है वे पेशकार थे. गन्ने, गुड़ व अनाज की गाड़ियां रिश्वत में लेते थे. उनके सामने ही उनके पुत्र, पौत्र, परिवार के इस हवेली में रहने वाले सभी चल बसे और स्वयं बाद में लम्बी बीमारी में जब कि उनका संभालने वाला भी कोई नहीं रहा, दुनियां से कूच कर गए. आज इस हवेली में कोई किरायेदार भी रहने को तैयार नहीं है."

फिर कहा - " बेईमानी और रिश्वत की कमाई से सामान तो उतना ही आता है जितना ईमानदारी की कमाई से, और उसके भोजन से रस, मांस, हड्डी, बगैरा भी उतनी ही बनती हैं लेकिन मनुष्य के विचार अपवित्र हो जाते हैं, अहंकार बढ़ता है और वह बुरे विचारों के कारण बुरे कामों में लग जाता है. अपना हित-अहित नहीं सोच सकता और बुरे विचारों के वशीभूत होकर पाप कर्म करता हुआ नष्ट हो जाता है ."

दोपहर का समय निकल गया था, आप बरामदे में बिछे हुए पलंग पर लेट गए. चाय के समय पर चाय आयी. उसके कुछ ही देर बाद एक छोटी कटोरी में बेर आये, कुछ लाल व कुछ हरे. आप अपने हाथों से हरे बेर उन भाइयों को दे देते थे जो वे खा लेते थे. खेमचंद ने व्यंग में कहा कि हरे-हरे खट्टे बेर तो हमें दे देते हैं और लाल बेर जो मीठे हैं वे स्वयं खा लेते हैं. गुरुदेव मुस्कराए. उन्होंने खेमचंद से लाल-लाल बेर ही उठाने को कहा. दोनों भाइयों ने लाल बेर खाये जो इतने खट्टे लगे कि दाँत उतर गए. जब उन दोनों भाइयों ने कहा कि ये लाल बेर तो बहुत खट्टे हैं तो गुरुदेव मुस्करा दिए और फिर उनसे हरे बेर खाने के लिए कहा - वे भी खट्टे थे. पुनः गुरुदेव ने कुछ हरे व कुछ लाल बेर उन दोनों को दिए जो बहुत मीठे लगे. इतने में ही शर्मा बहिन हाथ में इंजेक्शन लेकर आईं और गुरुदेव को बेर खाते देखकर स्नेह वश उनसे नाराज़ होने लगीं. गुरुदेव बहुत कोमल स्वभाव के थे, कभी-कभी बहुत छोटे बालकों जैसा स्वभाव हो जाता था. छोटे बच्चों की तरह शर्मा बहिन के सामने दीनता भरे कुछ शब्द कहे और फिर इंजेक्शन लगवा लिया.

इन दोनों भाइयों ने उनकी महानता का प्रत्यक्ष आभास किया. उनके चमत्कारी, कोमल व बालक-वत स्वभाव को देखकर वे दोनों चकित रह गए और बाद में सत्संग में शामिल हो गए.

(३८) जुलाई १९६९ में पूज्य गुरुदेव का स्वास्थ्य काफ़ी खराब हो गया. पूज्य सरदार जी भाई साहब के आदेश पर लखनऊ से श्री सतीश जी २२ जुलाई १९६९ को सांयकाल सिकन्द्राबाद पहुंच गए. उस समय गुरुदेव को डबल निमोनिया हो गया था. अपनी खराब तबियत की परवाह न करते हुए भी भाइयों को तालीम देते रहते थे.

आपने फ़रमाया, **" शिकायत शिक़्वा न करना और उसी (परमात्मा) की मर्ज़ी में रहना ही असली भजन है. "** आपके स्वास्थ्य में गिरावट देखते हुए एक सत्संगी भाई ने ज़िक्र किया कि सिकन्द्राबाद के शाह साहब के मुरीद सूफ़ी साहब बुलन्दशहर में रहते हैं. वह हक़ीमी भी करते हैं और आध्यात्मिकता भी. क्या उनसे परामर्श लेना उचित होगा ? गुरु महाराज किसी का दिल नहीं दुखाते थे और सबकी सम्मान दिया करते थे. अतः उन्होंने सतीश जी को आदेश दिया कि सूफ़ी साहब श्री शमीम आलम (जो बुलंदशहर में रहते हैं) उन्हें बुलाकर लाने का प्रयास करें. तदनुसार सतीश जी प्रातः बस से बुलंदशहर जाने को तैयार हुए और आज्ञा मांगी. आपने फ़रमाया-" सतीश बाबू, बड़े अदब के साथ जाना, जल्दवाजी न करना. जैसा हुक्म दें वैसा ही करना. मुसलमान फ़क़ीरों को रंगीन जलेबी बहुत अच्छी लगतीं हैं. रंगीन जलेबी जहां अच्व्छी मिलें, अपने साथ भेंट के लिए लेते जाना. आपके आदेशानुसार अच्छी दुकान से रंगीन जलेबी लेकर सूफ़ी साहब के निवास स्थान पर सतीश जी पहुंचे.

आप काफी देर बाद बाहर आये. सतीश जी ने आपकी सेवा में जलेबियाँ भेंट कीं और गुरु महाराज की हालत निवेदन की तथा उनसे सिकन्द्राबाद चलने का आग्रह भी किया. आपने जलेबियों की पैकिट की और इशारा करते हुए कहा कि इसकी क्या आवश्यकता थी. फिर अपने पैकिट खोला और उसमें रखी रंगीन जलेबियाँ देखकर बहुत ही प्रसन्न हुए. आपने तुरंत उसका प्रसाद चढ़ाया और वहां मौजूद सभी को वितरित कर दिया. आपने चाय नाश्ता मंगवाया. उसके बाद

आपने फ़रमाया -" नमाज़ पढ़ कर चलूँगा.." सिकन्द्राबाद पहुंचने पर सूफ़ी साहब और गुरु महाराज की भेंट हुई. बड़े अदब से दोनों महापुरुषों में वार्तालाप हुआ. चाय-नाश्ता करने के उपरान्त सूफ़ी साहब ने गुरु महाराज की हालत के बारे में पूछा तब आपने फ़रमाया, " मुझे जिस्मानी (शारीरिक) तो कोई तकलीफ़ महसूस नहीं होती है, परन्तु मालिक का नाम नहीं ले पाता हूँ इससे मुझे बड़ी बेचैनी रहती है." इस पर पूज्य सूफ़ी साहब को बड़ा ही आश्चर्य हुआ और उन्होंने गुरु महाराज से पूछा, "क़िबला, यह बताने का कष्ट करें कि वह कौन सी घड़ी या क्षण है जिसमें आप मालिक की याद से ग़ाफ़िल रहते हैं. मैं तो आपको इतनी देर से देख रहा हूँ कि आप एक क्षण के लिए भी मालिक को नहीं भूल रहे हैं." इस पर पूज्य गुरु महाराज ने सूफ़ी साहब से आँखों ही आँखों में न जाने क्या इशारा किया कि दोनों महापुरुष ख़ामोश हो गए और एक अजीब सी मस्ती का आलम चलता रहा. कुछ समय पश्चात सूफ़ी साहब ने फ़रमाया कि निम्न मंत्र १५० दफा निश्चित समय पर पढ़ना चाहिए :-

" ७८६ "

या अल्लाह या रहमान या रहीम

या हैय्या या क़्यूयूम .

सूफ़ी साहब ने आज्ञा मांगी. गुरु महाराज उनको बिदा करने हेतु उठना ही चाहते थे कि सूफ़ी साहब ने आपको रोक दिया. फिर गुरु महाराज ने सतीश जी को आदेश दिया कि सूफ़ी साहब को बस स्टैंड तक छोड़कर आएं. सतीश जी सूफ़ी साहब के पीछे चल रहे थे. रास्ते में सूफ़ी साहब ने आपने शिष्यों से कहा, " देखा भाई , कितने ऊंचे संत हैं जो किसी भी क्षण मालिक का नाम नहीं भूलते और वह यह फरमाते हैं कि " नाम " नहीं ले पाता हूँ, तब हम लोगों का क्या हाल है जो दुनियां के कामों में फंस कर मालिक का नाम बराबर नहीं ले पाते हैं. यह विद्या मुसलमानों की है और इनमें पूर्ण रूपेण समै गयी है. "

जब पीछे मुड़कर मुझे देखा तब आप ख़ामोश हो गए और कहा, " भाई, हम लोग चले जायेंगे, आप वापिस चले जाएँ'.' सतीश जी ने निवेदन किया कि जो कुछ थोड़ा समय है उसमें आपकी सौहबत मिल जाएगी, बड़ी कृपा होगी. उनके शिष्य -गण अपनी अपनी दुकान आने पर आपसे बिदा लेते गए. सतीश जी आपके साथ बस स्टैंड तक गए और बस में चढ़ा कर आपसे बिदा मांगी. आपने बड़े प्रेम से फ़रमाया, ",लग लिपट कर काम बना लेना. तुम सब बड़े ही खुशकिस्मत हो."

जब सूफी साहब को बिदा करके गुरु महाराज के चरणों में वापस आये तो सतीश जी ने रास्ते का सारा हाल बयान किया. गुरुदेव उसे सुनकर शांत भाव से बैठ गए. थोड़ी देर बाद फ़रमाया, " देखो भाई, मैं अपने गुरुदेव को ही भूल गया था." तुरन्त पूज्य लाला जी महाराज का फोटो मंगवाया और अपनी चारपाई के सामने दीवाल पर टंगवाया और कुछ देर

तक उसकी और देखते रहे और फिर अपने फ़रमाया, " गुरु जो मंत्र दे उसी का निरन्तर जाप करना चाहिए, उसी से फ़ायदा होता है क्योकि गुरु उस मंत्र में शक्ति का संचार कर देता है. उसी का सहारा लेना चाहिए. इस विश्वास को किसी भी परिस्थिति में कमज़ोर नहीं होने देना चाहिए.

आपने कुछ देर बाद फ़रमाया कि गुरु की नाराज़गी शिष्य की रूहानी तरक़्क़ी (आध्यात्मिक उन्नति) के लिए होती है. गुरु जिससे प्यार करता है उसे बनाने के लिए उसकी छोटी से छोटी ग़लती भी बर्दाश्त नहीं कर पाता क्योकि उसकी छोटी सी ग़लती से काफ़ी लोगों को नुकसान होता है.

जब हम लोग आपकी बीमारी से चिन्तित थे तब आपने बड़े प्यार से समझाया था कि जो घर जा रहा है उसके लिए सोच व रोना क्या? इस समय मैं जिस्म (स्थूल देह) की कैद में हूँ और आप सब की ख़िदमत नहीं कर पाता और जब मैं जिस्म की क़ैद से आज़ाद (मुक्त) हो जाऊँगा तब मैं आप सबकी अधिक से अधिक ख़िदमत (सेवा) कर सकूंगा.

एक सत्संगी बहिन (श्रीमती उर्मिला पाठक) के जीवन की एक मार्मिक स्मृति उन्हीं के शब्दों में नीचे दी जाती है :

(३९) मैं पहले भी गुरु कर चुकी थी, पर जो मैं चाहती थी वह नहीं मिला. मैं बहुत बीमार रहती थी. बीमारी चरम सीमा से बढ़ती जा रही थी. मैं सोचती थी कि मेरे मरने का दिन करीब आ रहा है परन्तु कोई समर्थ सतगुरु नहीं मिला. जैसा कि मैं दत्तात्रेय जी के बारे में किताबों में पढ़ी थी, सतगुरु की तलाश में मैं काफ़ी देर से परेशांन थी . साधु महात्माओं के यहां जाया करती थी. उनसे दीक्षा माँगा करती थी. मैं बनारस के मछरी मठ में एक बार पहुंची. वहां के महात्मा जी से मैने अनुरोध किया कि अगर आप ब्रह्म को जानते हैं तो मुझे शिष्य बनाकर वहां पहुँचा दीजिये. उन्होंने बताया कि मैं पहुँचा तो दूँगा पर मेरे पहुंचाने से तुझे कोई लाभ नहीं होगा. तू ऐसी ही भटकती रहेगी. तुझे सूफ़ी संत मिलेगा वही तुझे वहां पहुंचाएगा. जैसे तू यहां भटक रही है वैसे ही वह भी तेरा इंतज़ार कर रहा है. तू सूफ़ी संत की तलाश कर.

मैं तब सूफ़ी संत के बारे में में पूछा करती थी कि सूफ़ी संत कैसा होता है ? सब लोग कहते थे कि सूफ़ी मुसलमान होते हैं. मेरी बीमारी ने मुझे इतना पाक बना रखा था कि मैं हर एक चीज़ से छूत मानती थी. इस वजह से मैं कहती थी कि हमारे देश में अगर कोई ब्राह्मण नहीं होगा तब मैं मुसलमान को अपना गुरु बनाऊँगी. यही कहकर मैं १० वर्षों तक भटकती रही. श्री जय नारायण गौड़ मेरे घर आया जाया करते थे. मेरे पति और वे एक ही विभाग में कार्य करने के कारण पाठक जी के अभिन्न मित्र थे. मैं उनसे पर्दा करती थी. सूफ़ी संत के बारे में एक बार उनसे पर्दा खोलकर बात की. उन्होंने बताया कि यह सब तुम्हारी भूल है. बसंत का भण्डारा बक्सर में होता है. इस बक्सर भण्डारे से लौटने के पश्चात हमारे गुरु महाराज हमारे यहां गाय घाट आएंगे और एक दिन मेरे यहां सत्संग होगा. तुम अगर बनारस आ सकती हो तो आकर

हमारे गुरु महाराज से मिलो. अपना विचार उनके सामने रखो, देखो तुम्हारे विचार का वे क्या उत्तर देते हैं. अगर तुम्हारी शंका का समाधान हो जाए तो जैसा तुम सोचना वैसा करना.

उस समय कानपुर में पाठक जी बिलकुल नए थे और नया अफसर था. छुट्टी नहीं मिल रही थी. वर्ष १९६९ का बसंत का भण्डारा था. चार दिन पहले गौड़ भाई साहब का ख़त आया. पाठक जी ने बनारस के लिए मुझे अपर इंडिया गाड़ी में अकेले ही बैठा दिया. दरवाज़े के पास मैं अकेली बैठी थी. गुरु महाराज उसी डिब्बे में बैठे थे. कानपुर से गाड़ी चली. गुरु महाराज लैट्रिन या लघु शंका के लिए आये. मैं लैट्रिन के पास बैठी थी. वे मुझे देखते ही बोले, " बेटी ! तू यहां अकेली क्यों बैठी है? यह पूरा डिब्बा रिज़र्व है. आगे बहुत से भाई-बहिनें हैं. तुम अंदर चलो, बहिनों के पास चलकर बैठो. मैने कहा कि , "मैं अकेली नहीं हूँ. " वे लैट्रिन में चले गए. मुझे नहीं मालूम था कि ये कोई महापुरुष हैं. वे लेट्रिन से बाहर निकले, हाथ मुँह धोये फिर मेरे पास आये और बोले, " तू मेरी बात मान, तेरा सामन कोई नहीं ले जायेगा, सामान की चिंता मत कर. मेरे साथ आ ." मैं उनकी बात मानकर उनके साथ चली गयी. वे अपनी सीट पर मुझे बैठाये और खिड़की के पास बैठ गए. मैं बैठी रही. इलाहबाद स्टेशन आ गया. वहाँ पर फूलमाला, प्रसाद , चाय -नाश्ता आदि लेकर काफ़ी लोग आये और उनके गले में माला पड़ने लगीं. मेरे मन में काफ़ी उथल-पुथल होने लगी. लगा कि ये कोई महापुरुष हैं . उन्होंने प्रसाद और चाय-नाश्ता मुझे दिया. इसके बाद गाड़ी चल दी. गाड़ी का चलना क्या था कि ऐसा प्रतीत होता था कि मैं स्वर्ग में विचर रही हूँ. जो मैं अन्य साधु महात्माओं से मांगती थी और कहती थी, वह सब कुछ मेरे सामने आने लगा. मुझे यह पता नहीं चला कि उनके बिस्तर पर बैठी थी या उन जिस्म से स्पर्श होता था, जो चीज़ मैं चाहती थी वह मुझे उस गाड़ी में ही मिल रही है. मैं बिलकुल बेखबर थी, न मुझे कुछ याद था और न कुछ चिंता थी. मेरी आँखें बंद हो जाया करती थीं. मुझे ऐसी-ऐसी चीज़ें दीखतीं थीं कि मैं ज़बरदस्ती आँखें खोलकर उनकी तरफ देख लेती थी. जब उनकी तरफ मैं देखती थी तो मुझे सूरज कि तरह उनका चेहरा दिखायी देता था. मैं भयभीत हो जाती थी . मैं सोचती थी कि उनके पास से हटकर अपनी जगह पर चली जाऊं. इतने में वे इतने मीठे स्वर में बोले कि, " बेटी, तू परेशान क्यों है, तुझे कहाँ जाना है, तेरे साथ कौन है ?" फिर भी मैं उनसे झूठ बोली कि मुझे बनारस जाना है , मेरे साथ बहुत से लोग हैं . उन्होंने पूछा कि, " बनारस किसके यहां जाना है?" मैने बताया कि " लेबर ऑफिस के एक श्री जय नारायण गौड़ हैं, उन्होंने मुझे बुलाया है. उनके यहां कोई प्रोग्राम है. बनारस के क़रीब मेरा गांव है. वहां पर मेरे नाते-रिश्तेदार बहुत हैं, पर इस समय मुझे गौड़ साहब के यहां जाना है ." उन्होंने कहा कि, "तब तुम बनारस मत उतरना, काशी उतरना क्योकि गौड़ साहब तुमको काशी स्टेशन पर मिल जायेंगे. " मैने पूछा, " आपको कैसे मालूम "? मैं उनका घर देखी हूँ, चली. जाऊंगी." उन्होंने बताया, " बनारस उतरेगी तो वह नहीं मिलेंगे और काशी उतरेंगी तो मिल जायेंगे. तू अकेली है , तेरे साथ कोई नहीं है." तब मेरे मन में आया कि ये कोई अनुभवी पुरुष हैं, तब तो इनको इतनी जानकारी है. गाड़ी बनारस पहुंची, काशी स्टेशन आया. गाड़ी रुकने के पहले ही प्लेटफार्म पर फूलमाला लिए तमाम भाई-बहिनें इकठ्ठी थीं. गुरु महाराज बोले- " बेटी, पांच मिनिट गाड़ी रुकती है, अगर तुम उतरना चाहती हो तो जल्दी से उतर जाओ." तब गौड़ भाई साहब आये और बोले

" उतरना नहीं है. बक्सर चलना है ." गुरु महाराज बहुत तेज़ हँसे और पूछे - "बेटी बक्सर चलना है." मैने ' हाँ ' कहा उन्होंने फ़रमाया, " आराम से बैठ जाओ." उनके प्रति पूर्ण विश्वास हो गया कि गौड़ साहब के यही गुरु महाराज हैं.फिर गाड़ी जब चली तो वे जो पूछते थे उसका उत्तर मैं देती थी. फिर तो ऐसा लगा कि वे अपने ही हैं. दोनों का मन एक हो गया. मुग़ल सराय आने के बाद मैं उनसे बोली - " इस भिखारिन को खरीद लीजिये. मैं काफी दिनों से भटक रही हूँ . मुझे कोई ऐसा महापुरुष नहीं मिला", गाड़ी ही में वे बोले, " बेटी, तू ब्राह्मण है और मैं पक्का मुसलमान हूँ. " मैं उनसे बोली , " संत की कोई जात नहीं होती. लोग मुझसे कहते हैं कि तुझको सूफी संत मिलेगा. सूफी संत कि पहिचान बता दीजिये और वो कहाँ , कब और कैसे मिलेगा, क्योकि मैं पढ़ी -लिखी नहीं हूँ और मुझे कोई जानकारी नहीं है."

गुरु महाराज ने बक्सर में गौतम भाई साहब को बुलवाया और उनसे कहा - " आप इस लड़की को पण्डाल में ले जाइये. पर अकेले पण्डाल में मत ले जाइये . बाबू सेवती प्रसाद के पण्डाल में ले जाइये और साथ में एक दो बहिनों को भी ले जाइएगा. और अपना मत और मज़हब मत बताइएगा ". गौतम भाई साहब मुझे पण्डाल में ले गए और सब बातें बताने लगे. मैने उनकी एक भी बात नहीं मानीऔर कहा कि - " मैं गरीब ज़रूर हूँ पर बिकूँगी तो उन्हीं के हाथ." गुरु महाराज कमरे में लेटे रहते थे, वहां अंगीठी जलती रहती थी. वहीं पर गुरु महाराज मुझे मुझे अपने पास बैठाये रहते थे. कभी सत्संग में नहीं भेजते थे . दूसरे दिन गुरु महाराज की तबियत सख्त ख़राब हो गयी. दरवाज़ा खिड़की सब बंद हो गए. दरवाज़े पर गोपाल भाई साहब चौकीदारी के लिए बैठ गए. रोना चिल्लाना मच गया. मैं भी अपने कमरे में जाकर लेटकर रो रही थी. आमने -सामने कमरा था. बीच में गैलरी थी. वहाँ गोपाल भाई साहब बैठे थे . वहां चारों तरफ सन्नाटा था. मैं बार-बार दरवाज़ों व खिड़की के पास जाती थी. तीन चार घंटे बाद कमरे से आवाज़ आई -" गोपाल बाबू." गोपाल भाई साहब अन्दर गए. गुरु महाराज ने कहा " एक लड़की कानपुर से आयी हुई है. उसको मेरे पास भेज दो." गोपाल भाई साहब बाहर आकर फिर अपनी जगह पर बैठ गए. मेरा दिल उनके पास ही लगा रहता था. मैं बार-बार खिड़की दरवाज़े के पास जाऊं . मैं देखना चाहती थी कि उनको क्या हुआ है. जब मैं दरवाज़े के पास जाती थी तब गोपाल भाई साहब बेशील होकर मुझे हटा देते थे. मैं अपने कमरे में आकर लेट जाती थी और रोने लगती थी. कई बार ऐसी बातें हुईं. गुरु महाराज के कमरे से फिर आवाज़ आयी- " गोपाल बाबू, कानपुर से एक लड़की आई है उसे क्यों नहीं भेजते हो?" क्या था उनका प्रेम कि चुंबक की तरह मुझे खींच रहा था. कई बार ऐसा हुआ. गुरु महाराज ने पुनः गोपाल बाबू से कहा कि अगर आपको कानपुर से आयी लड़की नहीं मिल रही है तो बनारस वाले गौड साहब से कहिये कि वे ढूंढ कर लाएं. गुरु महाराज की आवाज़ को सुनकर मैं पुनः उनके दरवाज़े पर उनसे मिलने गयी पर गोपाल बाबू ने बताया कि गुरुदेव ने उनसे किसी को भी मिलने से मना कर दिया है. ऐसे लहज़े में गोपाल भाई साहब ने मुझसे उक्त बातें कहीं कि मुझे क्रोध आ गया. मैं उनसे बोली कि न तो आप लोग सत्संग करते हैं, न ही संत की महिमा जानते हैं. ये कायस्थ की मंडली बना रखे हैं. क्या यहां पर लोग आएंगे ? ग़रीब का गुज़ारा नहीं है. जब वो बुला रहे हैं तभी तो मैं जा रही हूँ. इस पर भी वे मुझे अंदर नहीं जाने दिए. मैं ऊपर मुख्त्यार साहब के पण्डाल में गयी. वहां गौड़ भाई साहब बैठे थे. उनको सारी बातें मैने बतायीं.

चाचा जी ने मुझसे कहा कि तू क्यों परेशान है. गौड़ भाई साहब नीचे मुझे लेकर आये और गोपाल बाबू से कुछ बात किये जो मुझे नहीं मालुम हुईं. ततपश्चात गोपाल बाबू ने मुझसे यह कह कर अंदर भेजा कि गुरु महाराज से बात करना मना है. गुरु महाराज मुझे देखकर बहुत प्रसन्न हुए. बोले, " बेटी, रो रही थी. मैं बोली कि नहीं, रो नहीं रही थी. बोले, " तू झूठ बोल रही है. तू रो रही है." मैं बोली, " जी हाँ, रो रही थी. सब रो रहे थे, इसलिए मैं भी रो रही थी". वे बोले कि "सबके रोने से तू रो रही थी." मैं बोली, " नहीं, मैं दस साल से भटकती थी, मुझे कोई महापुरुष नहीं मिला. मैं बहुत ग़रीब हूँ. अपने दुर्भाग्य को सोच कर रो रही थी.मेरे पास और कुछ तो है नहीं. अगर कोई मिला भी तो वह भी स्वीकार नहीं किया. इसलिए मुझे रोना आ रहा था." गुरु महाराज बोले, " बेटी, तू किसी से बात मत करना और घबराओ नहीं. तुमको में बनारस मैं दीक्षा दूंगा. हमारे यहां बड़े-बड़े अरमान लेकर भाई बहनें आते हैं. बेटी, अब मैं अस्वस्थ हो गया हूँ, किसी की सेवा नहीं कर पाता हूँ, तुमने गोपाल बाबू को कहा कि आप लोग सतसंग नहीं समझते वह बिलकुल ठीक कहा. एक भी भी नए भाई बहनों को आदर सम्मान नहीं दे पाते हैं. बेटी मुझे भी दुःख होता है. इतना पैसा खर्च करके दूर-दूर से भाई बहिनें आते हैं और उनकी क़दर कोई नहीं करता है ."

बक्सर में सत्संग समाप्त होने के बाद गुरु महाराज बनारस आये. राम चन्द्रर बाबू कंट्रोलर के बंगले में ठहरे. गुरु महाराज ने पूज्य सरदार जी भाई साहब को बुलवाया और कहा, " इस लड़की और इसके शौहर को बाहर के कमरे में ले जाइये, इन दोनों को बैठाइए. मैं कपड़े बदलकर आ रहा हूँ." पूज्य सरदार जी भाई साहब हम दोनों को कमरे में लिवा लाये तथा बैठाये. इसके बाद पूज्य गुरुदेव आये और हम दोनों के हाथ अपने हाथों में लिए. हाथ लेते ही जो मैं चाहती थी उन्होंने सब कुछ दिखा दिया तथा दे दिया. दीक्षा के समय पूज्य गुरु महाराज व पूज्य सरदार जी भाई साहब दोनों ही लोग तवज्जो दे रहे थे. यह हम लोगों पर उनकी महान कृपा थी.

गुरु महिमा

(४०) गुरुदेव के गुणों का वर्णन करते समय कंठ रुँध आता है और आँखों से आंसुओं की वर्षा होने लगती है. मेरे साथ बीती हुई कुछ बातें टूटे फूटे शब्दों में यहां दे रही हूँ. सन १९६९ की बात है. उस दिन होली जलने वाली थी. सुबह ६ बजे मैं जग गयी. उन दिनों मुझे बहुत दौरे (फिट्स) आया करते थे . ग्यारह साल से मैं उस बीमारी से परेशान थी. इस बीमारी के विषय में गुरु महाराज से गौड़ भाई साहब बता चुके थे. इस सम्बन्ध में गुरु महाराज ने बहुत समझाया था. उस समय जब मैं बाथरूम में बैठी थी मेरे दोनों पैर हलके हो गए. मुझे महसूस हुआ कि मुझे फालिज लग गया है. मैने ज़ोर से आवाज़ लगाई. उन दिनों मैं औड़िहार में थी. घर की बहुएं दौड़ी. मैने उन लोगों को इशारे से बताया कि मुझे फालिज लग गया है. उन लोगों ने मुझे लेजाकर बिस्तरे परे लिटाया. जब मैं बिस्तरे पर लेती थी मुझे औड़िहार का ज्ञान था और मैं

सबको पहिचानती थी. उसके बाद मैं बेहोश हो गयी. मुझे वहां का ज्ञान ख़तम हो गया. परिवार के जन रोने लगे. इतने में मुझे समुन्द्र सी एक बड़ी नदी दिखायी पड़ी. उसमें एक बड़ी नाव थी. उस नाव में एक मल्लाह था, जिसकी आकृति बड़ी भयंकर थी. उसे देखकर भय लगा. उसने मेरा हाथ पकड़कर नाव में घसीट लिया. तथा पटक दिया. उसी नदी के किनारे पाठक जी मुंह के बल गिरकर चिल्ला-चिल्ला कर रो रहे थे. मुझे बहुत क्रोध आया और मैने बड़े कड़े शब्दों में पाठक जी को धिक्कारा. मैने उनसे कहा कि आपके सामने इस दुष्ट ने मेरा हाथ पकड़ लिया और आप तमाशा देख रहे थे. मैं नाव से उतरना चाहती थी . रावण रुपी मल्लाह ने मुझे कुहनी से धक्का देकर नाव नदी में चला दी. नाव चल पड़ी. मैं डर कर " बचाओ-बचाओ" की आवाज़ लगा रही थी. थोड़ी देर में नाव उस पार पहुंच गयी. नदी में कोई घाट नहीं था, बल्कि उस पार नदी का बहाव जमीन से लगभग १०० फ़ीट नीचे था. उस ऊंचाई को देखकर भय लगता था. वह मल्लाह मुझे उस अथाह पानी में ही हाथ पकड़ कर जबरदस्ती उतर रहा था. मैं रो रही थी और उसके हाथ जोड़कर कह रही थी कि मेरे पास एक पैसा नहीं है. मैं वापस कैसे जाऊंगी? उस पार मेरा कोई नहीं है. इतने में एक बड़े लम्बे बृद्ध आदमी छोटी-छोटी दाढ़ी, गोल टोपी , अचकन, कुर्ता-पैजामा पहने, हाथ में छड़ी लिए, छड़ी के सहारे उस ऊंचाई से उतर रहे थे. उनकी आँखें लाल थीं तथा आंसू से भरी हुई थीं. वो आये, बड़ी ज़ोर से उस मल्लाह को छड़ी से मारे. बड़ी ज़ोर की आवाज़ हुई. मेरा हाथ छूट गया. उसकी तरफ देखते हुए बोले, " अरे दुष्ट ! मेरे सामने मेरी औलाद का इतना बड़ा अनादर?" मुझसे बोले, ": बेटी, मेरे पैर के ऊपर पैर रखते हुए मेरे पीछे चलआओ." इसी तरह मैं ऊपर चढ़ गयी. लेकिन मैं उनको पहचान नहीं सकी. मैं पीछे मुड़-मुड़ कर दुष्ट को देखती रही. ऊपर आने के बाद एक बड़ी-बूढी, बड़ी दीन और ग़रीब की तरह एक छोटा सा चटाई का टुकड़ा बिछा कर थोड़े से कनैड के फूल रखकर बैठी थी. वे बाबा बोले, " यह मेरी लड़की है, इसको थोड़े फूल दे दो." मैने अपना आँचल फैलाया. उस बुढ़िया ने सारे फूल मेरे आँचल में उंडेल दिए. मैं डर के मारे उन बुज़ुर्ग के बगल में चलती थी. वो बुज़ुर्ग एक ऊंचे पहाड़ पर पहुंचे जहां कब्रे हीं कब्रे थीं. कोई कब्र फूल से तथा कोई कपड़े से ढकीं थीं. ढेरों - ढेर धूप सुलग रही थी. ऐसी कब्रें इससे पहले कभी न देखीं थीं और न आज तक देखीं हैं. वो महापुरुष हाथ जोड़े खड़े थे. उन्होंने कहा कि, "बेटी, एक-एक फूल सभी कब्रों पर चढ़ा दो " भय के कारण मेरे पैर काम नहीं कर रहे थे. मैं उनसे बोली,

" बाबा, ये तो मुसलमान की कब्रें हैं." बड़े लम्बे क़दमों से चल कर वे कब्रिस्तान के बीच में खड़े हो गए. मैं जल्दी-जल्दी सभी कब्रों पर फूल चढ़ाते हुए उनके पास पहुंचकर खड़ी हो गयी. वे दोनों हाथ फैला कर बोले, " बेटी, मेरे मुंह के सामने जितनी कब्रें हैं, उन सब फ़क़ीरों का शजरा में नाम लिखा हुआ है और मेरे दाहिने-बांये और पीछे की कब्रें इन बुज़ुर्गों से पहले की हैं". इसके बाद वो चल दिए. अब तो वे बर्फीले पहाड़ पर चलने लगे. वहां पर सोने का मन्दिर, सोने की मूर्तियां, आगे चरण पादुका बना हुआ था तथा बहुत सी समाधियां दीख रहीं थीं, बड़ा ही रमणीक स्थान था. वहां पहुंचते ही मेरा भय खत्म हो गया. वहां पर बोले, "बेटी, एक-एक फूल सब पर चढाती चल.मैने उस समाधि व मंदिरों के नाम पूंछे तो उन्होंने बताया, " बेटी, यह बद्रीनाथ का मन्दिर है." दूसरी और इशारे से बताया कि यह केदारनाथ का मन्दिर है. इसी तरह सब मन्दिर और समाधियों के नाम बताये, जिनके नाम मुझे याद नहीं. उसके बाद वहां से चल दिए. वे बड़ी जल्दी-

जल्दी चलते थे. मुझे उनके साथ चलने के लिए दौड़ना पड़ता था. पर मुझे थकावट महसूस नहीं होती थी. वे पुनः फतेहगढ़ पहुंचे . बोले, "बेटी माथा टेको और सब फूल चढ़ा दो." वहां आकर मुझे थोड़ा सा ज्ञान हुआ. मैं बोली , " बाबा जी, ये तो हमारे मत के लाला जी की समाधि है, क्योकि इससे पहले मैं यहां दो बार आ चुकी हूँ." तब उन्होंने बताया -" ये मेरे गुरु महाराज की समाधि है. तुम इनकी संतान हो. इनके समय में भी तुम सत्संग कर चुकी हो." मैं दौड़कर उनसे लिपट गयी, बोली " क्या आप मेरे पूज्य गुरुदेव हैं." वे मुझे सीने से लगाकर मेरे सिर पर दोनों हाथ फेर रहे थे, और आँखों से आंसू गिर रहे थे. मेरे सिर के कपड़े उनके आंसू से भीग गए थे. बोले, " बेटी, समय कम है. जल्दी चलो." इतने में सिकन्द्राबाद पहुंच गए. मेरे हाथ पर एक पीस सूजी का हलवा और एक संतरा दिया और बोले, " बेटी, खा लो. ये अक्टूबर के भंडारे का तेरा प्रसाद रखा हुआ है." इतने में दनकौर स्टेशन पर जनता गाड़ी में बैठ गए. इससे पहले कोई गाड़ी, रिक्शा, तांगा, आदि नहीं दिखाई पड़ा था, हम लोग पैदल यात्रा करे रहे थे. जनता गाड़ी बनारस पहुंच गयी. बोले, " उतर जाओ, यह बनारस है. यहां से तुम्हारा घर करीब है और तुम बराबर आती जाती हो." मैं फूट-फूट कर रो पड़ी. मैने कहा, " मैं आपको छोड़ूंगी नहीं. वरना वह दुष्ट मेरा पुनः पीछा करेगा " और गाड़ी चल दी. बोले, " बेटी, मुझे गोरखपुर जाना है, तू मेरे साथ कहाँ-कहाँ जाएगी." मैं बोली, " जहां आप रहेंगे, वहीं मैं रहूंगी." इतने में औड़िहार स्टेशन आ गया. वे बोले, " बेटी, उतर जाओ. पाठक जी का बेटा ड्यूटी पर है. तुम घर चली जाओ." मैं रोने लगी. गाड़ी से नीचे पाँव रखते ही गाड़ी चल दी. इतने में मेरे कानों में रोने-चिल्लाने की आवाज़ें आने लगी. ४ घंटा बीत चुके थे. पाठक जी का इंतज़ार हो रहा था. होली भी नहीं मनाई गयी थी. गौड़ भाई साहब मेरे पैरों में राख मल रहे थे और मेरे परिवार वालों को समझा रहे थे. बोल रहे थे कि मैं आप लोगों की बातें कैसे मान लूँ . अभी बदन गर्म है. इतने में गौड़ साहब ने मेरा हाथ पकड़ा और ज़ोर से बोले कि नब्ज़ चल रही है. मेरी आँखे खुल नहीं रहीं थीं और प्यास के मारे मुंह सूख गया था. सबकी बातें सुनाई दे रहीं थीं. गौड़ भाई साहब का हाथ पकड़कर मैं अपने मुंह के पास ले गयी और पानी का इशारा किया. उन्होंने घर वालों से पानी माँगा और अपना रूमाल भिगोकर मेरा मुहँ पोंछे और दो चम्मच पानी मुहँ में पिलाये, मेरी आँखें खुल गयीं. उन्होंने पूँछा, " कैसी तबियत है?" मैंने कहा, ' मुझे कुछ नहीं हुआ. मैं तो गुरु महाराज के साथ तीर्थ करने गयी थी. वे मुझे बनारस ले गए थे."

उक्त घटना में अगर पाठक जी घर पर न होते तो परिवार के सदस्य मेरा दाह संस्कार कर दिए होते. उस समय पाठक जी कानपुर में थे ही नहीं.

अध्याय १२

पूज्य भाई साहब सरदार करतारसिंह जी का पूज्य गुरुदेव की शरण में आना

सन १९५१ की बात है. श्री गिरवर कृष्ण जी भटनागर (पूज्य गुरुदेव के कनिष्ट भ्राता) के तीमारपुर (दिल्ली) निवास पर सत्संग का आयोजन था. श्री गिरवर कृष्ण जी आयकर विभाग में अधिकारी थे और भाई साहब भी आयकर विभाग में कार्य करते थे. आयकर के एक वकील साहब (श्री श्रीराम भार्गव) गुरुदेव के पूर्व परिचित थे और सिकन्द्राबाद में गुरुदेव की सेवा में आया करते थे. इन तीनों में परस्पर घनिष्टता थी. इस नाते वकील साहब ने भाई साहब से उपरोक्त सत्संग में चलने का आग्रह किया और उन्हें अपने साथ ले आये. पूज्य गुरुदेव के साथ अन्य सत्संगी पधारे हुए थे.

सत्संग की समाप्ति पर वकील साहब ने गुरुदेव से आज्ञा मांगी. वकील साहब को तो आज्ञा मिल ,गयी किन्तु सरदार जी से कहा-"आप रुकिए." इन शब्दों में अद्भुत प्रेम था.

सरदार जी से कुछ क्षण तक मौन रहने के पश्चात गुरुदेव ने कहा - "हम आपके घर चलेंगे." दोनों की आत्मा पूर्व परिचित थी. गुरुदेव पारखी महापुरुष थे, उन्होंने सरदार जी में गुरुमुख शिष्य (मुराद) को पहचान लिया. सरदार जी के निवास पर गए, भोजन ग्रहण किया और बड़े प्रसन्न हुए.

इस प्रथम मिलन के बाद सरदार जी पूज्य गुरुदेव की सेवा में सिकन्द्राबाद या गाज़ियाबाद (जहां भी गुरुदेव पधारे होते थे) आने लगे. सरदार जी से गुरुदेव को बहुत .प्रेम था. सिकन्द्राबाद जब वह पहली बार गए तो गर्मी के दिन थे. स्नानागार में गुरुदेव ने स्वयं अपने हाथों से कुएं में से दो बाल्टी जल निकालकर रख दिया. एक धुली हुई धोती, तौलिया, साबुन इत्यादि सब कुछ रख दिया और स्नानागार के बाहर एक जोड़ी अपनी चप्पलें रख दीं. जब तक कमरे में सरदार जी ने अपना पसीना सुखाया, नहाने का सब प्रबंध गुरुदेव अपने हाथों से कर चुके थे. आकर सरदार जी से कहा किआप स्नानं कर लीजिये. सरदार जी को कुछ संकोच लगा कि नहाकर बदलने के लिए हम वस्त्र भी नहीं लाये, किन्तु आज्ञा का पालन किया. स्नानागार में गए, विस्मित हुए कि कपड़े भी मौजूद और पहनने के लिए गुरुदेव अपनी चप्पलें भी रख गए हैं

शनैः शनैः सरदार जी में गुरु प्रेम प्रस्फुटित, पल्लवित और पुष्पित होने लगा. यहां अधिक विस्तार से कुछ न कहकर केवल इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि सरदार जी ने अपना तन, मन, धन सच्चे मायने में गुरुदेव के अर्पण कर दिया. एक बार उनकी चाह उठी कि घर छोड़कर सन्यासी हो जाएँ. गुरुदेव से आज्ञा मांगी तो गुरुदेव ने उन्हें आदेश दिया कि- " आप दुकान पर मालिक कि हैसियत से काम न करें, बल्कि एक नौकर की हैसियत से काम करें और हैं भी आप मुलाज़िम

(नौकर) ही, गलती से आप अपने को मालिक समझे हुए हैं. अगर दुकान आपके साथ आयी होती, तो आपके साथ जाती. ऐसा है नहीं. आपकी परेशानी का यही कारण है."

गुरुदेव जब कभी बाहर सत्संग के दौरे पर जाते तो सरदार जी सदैव उनके साथ जाते थे और सेवा कार्य में गुरुदेव का हाथ बटांते थे. पूज्य गुरुदेव सरदार जी को अपने समकालीन संतमत के अन्य संतों के पास भी ले जाते थे और अपने चयन की पुष्टि कराते थे. एक बार गुरुदेव माउंट आबू में एक उच्च कोटि के संत से मिलने गए और अपने उत्तराधिकारी की बात सामने रखी.तब उन संत जी ने कहा था कि-" डॉक्टर साहब, आप का बोझा तो एक सरदार ढोयेगा, " कहने का आशय यह है कि गुरुदेव का पूज्य सरदार जी के प्रति जो प्रेम और व्यवहार था उसे देखकर सेवकों को निश्चित रूप से यह संकेत मिलने लगा था कि गुरुदेव के महानिर्वाण के पश्चात उनका स्थान भाई साहब को ही मिलेगा. हुआ भी ऐसा ही.

सन १९७० में बसंत पंचमी पर गुरुदेव ने ८ फरवरी (रविवार) के दिन सिकन्द्राबाद में ही भंडारा रखा था क्योकि अपनी अस्वस्थता के कारण वे बाहर नहीं जा सकते थे. सत्संग हो रहा था. पूज्य गुरुदेव सत्संग भवन के चौक के बायीं तरफ़ के कमरे में सामने की ओर अपने पलंग पर विराजमान थे. आपने फ़रमाया कि बंदा शायद अगले भण्डारे तक न रह पाए इसलिए इस सत्संग का भार मैं सरदार करतार सिंह, डॉ. हरिकृष्ण ओर बसंत बाबू को सौंपता हूँ. इन तीनों को मुकम्मिल (पूर्ण) इज़ाज़त है ओर सरदार जी इनके बड़े भाई हैं, जिनकी जिनकी देख -रेख में यह दोनों सत्संग की ज़िम्मेदारियों को सम्भालेंगे. फिर जो गद्दी गुरुदेव के बैठने के लिए बिछी थी उस पर सरदार जी भाई साहब को बैठने का आदेश दिया. कई बार आग्रह करने पर भाई साहब उस गद्दी तक गए, अपना दाहिना हाथ उस पर रख कर वापिस गुरुदेव के पाँयते ज़मीन पर बैठ गए. कुछ देर बड़ी गंभीर मुद्रा में चुपचाप बैठे रहे ओर फिर गदगद कण्ठ से यह प्रार्थना गायी गयी:-

मोकों कछु न चहिये राम, मोकों कछु न चहिये राम

तुम बिन सब ही फीके लागें, नाना सुख, धन-धान .

सुन्दरि, संतति सेवक सब गुण, बुद्धि विद्या भरपूर

कीरति, कला, निपुणता नीति, इनसौं रखिये दूर .

आठ सिद्धि नव निद्धि आपनी, ओर जनन कों दीजे

मैं तो चेरो जनम, जनम को, कर धरि अपनो कीजै .

उस समय वातावरण इतना स्तब्ध था,ओर ऐसी अमृत वर्षा हो रही थी कि उपस्थित समुदाय के नेत्रों से अश्रुपात हो रहा था. गुरुदेव ने पुनः कहा कि-" इसकी तहरीरी (लिखित) आज्ञा भी लिख दी है जो राम सन्देश में निकल दी जावेगी."

अध्याय १३

बैनर्जी साहब

गुरुदेव का जब गोरखपुर जाना शुरू हुआ तब वहाँ उनकी एक महान संत से भेंट हुई. इन महापुरुष का नाम परमसन्त अक्षय कुमार बंद्योपाध्याय था जिन्हें जन -साधारण "बैनर्जी साहब" कहा करते थे. आप उस समय ८० वर्ष से भी अधिक आयु के थे. अविभाजित बंगाल में आप आनंद मोहन कॉलेज मैमन सिंह, में दर्शन शास्त्र के प्रोफेसर थे. संस्कृत और अंग्रेजी भाषा के प्रकाण्ड विद्वान थे. आध्यात्म के विषय पर आपके लेख बाङ्गला तथा अंग्रेजी भाषाओँ में ' वेदांत केसरी' , 'दि कैलकटा रिव्यु ', 'दि फिलोसोफिकल क्वार्टरली' , 'प्रबुद्ध भारत' 'दि प्रवर्तक', 'कल्याण कल्पतरु' तथा अनेकों पत्र-पत्रिकाओं में छपा करते थे. वर्ण से वे बंगाली ब्राह्मण थे. अत्यन्त उच्च कोटि के गोरखपंथी संत थे. शरीर भारी था और व्यक्तित्व एकदम शांत. हल्की मधुर मुस्कान के साथ धोती पहने, ऊपर से नंगे बदन (केवल एक जनेऊ धारण किये) " संत निवास " (जो गोरखनाथ मंदिर, गोरखपुर के प्रांगड में स्थित है) की ऊपर की मंज़िल के एक कमरे में एक बड़े से पलंग पर विराजे रहते थे. प्रत्येक से नहीं बोलते थे. गुरुदेव को अपना विशेष स्नेह देते थे और उसी नाते उनके प्रेमी सेवकों से बातें कर लेते थे.

जब गुरुदेव की उनसे प्रथम भेंट हुई तो उन्होंने कहा था - " मैने राम के दर्शन किये ." गुरुदेव ने कहा था-" मैने शिव के दर्शन किये ." इस घटना को अपने जीवन काल में छापने से मना कर दिया था. अतः तब यह राम सन्देश मासिक पत्रिका में नहीं छपी गयी.

गुरुदेव उन्हें " महाराज जी " कह कर सम्बोधित करते थे. जब उनके दर्शनों को जाते थे तो कुछ फल आदि भेंट में ले जाते और अपने प्रेमी- जनों को साथ ले जाते. अपने साथ गए प्रेमियों के हितार्थ आप यदा-कदा उनसे कोई मार्मिक प्रश्न पूछ बैठते और वे बड़ी प्रसन्नता से उसका समाधान कर देते.

पूज्य बैनर्जी साहब ने आध्यात्म विद्या पर बहुत कुछ लिखा है. अपने निर्वाण से पहले की लिखी सारी पाण्डुलिपियाँ जो उनके जीवन काल में छप नहीं पायीं थीं वे पूज्य गुरुदेव को सुपुर्द कर गए थे. आपके प्रेमियों ने जब आपसे इस विषय में पूछा तब अपने उत्तर दिया था कि तुम लोगों में से कोई इस योग्य नहीं निकला जो मुझसे इसे लेता. दिल्ली से एक व्यक्ति (गुरुदेव) आया और बिना मांगे ही वह मुझसे सब कुछ ले गया. Discourses on Hindu Spiritual Cultureके तीन भाग जो अब तक छप चुके हैं बैनर्जी साहब द्वारा ही लिखे गए हैं.

एक दिन गुरुदेव ने उनसे पूछा -" महाराज जी, क्रोध पर किस तरह विजय प्राप्त की जाती है." उन्होंने स्वाभाविक मुस्कान के साथ उत्तर दिया था -" क्रोध से तो हमारा परिचय ही नहीं है ." उन्हें कभी क्रोध नहीं आता था. कॉलेज के अन्य

प्रवक्ता उनके विषय में कहा करते थे -" Prof. Banerji has lost the capacity to be angry ".(प्रो. बैनर्जी में क्रोधित होने की क्षमता ही नहीं रही है.)

जीवन के अंतिम दिनों में पूज्य बैनर्जी साहब गंभीर रूपों से पक्षाघात से पीड़ित हुए. अपने सेवकों द्वारा पूज्य गुरुदेव ने उन्हें गोरखपुर के रेलवे अस्पताल में भर्ती करा दिया. अपने ही कुछ सेवक उनकी सेवा के लिए भी छोड़ दिए. प्रातः काल व सांयकाल वे उन्हें देखने जाते थे. बैनर्जी साहब को विशेष तौर पर गंभीर रोगियों के वार्ड में रखा गया था जहां प्रत्येक व्यक्ति नहीं जा सकता था. दो सेवक तो वहाँ स्थायी तौर पर रहते थे. गुरुदेव के साथ एक सेवक और चला जाता था. गले में बलगम अड़ जाने से श्वांस में घड़घड़ की आवाज़ होती थी, श्वांस-कष्ट होता था. रुई लेकर अपने हाथ से गुरुदेव उनके गले में से बलग़म की सफ़ाई किया करते थे. उन्होंने १-२-१९६६ को ब्रह्म वेला में अपना पार्थिव शरीर छोड़ा.

शरीर छोड़ने से कुछ क्षण पहले बैनर्जी साहब होश में आ गए. दोनों सेवकों के सिर पर हाथ रहकर उन्हें आशीर्वाद दिया और तभी उनकी आत्मा शरीर से निकल गयी. उन सेवकों ने देखा कि अंगूठे के बराबर दीपक की लौ की तरह उनकी आत्मा धीरे -धीरे ऊपर उठती हुई रोशदान से बाहर निकल गयी.

पूज्य बैनर्जी साहब के महानिर्वाण के उपरान्त गोरखनाथ मंदिर के महंत श्री दिग्विजय नाथ जी ने एक शोक सभा का आयोजन किया जिसका मुख्य अतिथि गुरुदेव को बनाया था और गीता प्रेस के प्रांगड़ में उपस्थित समुदाय के समक्ष गुरुदेव का परिचय एक महान संत कह कर कराया था. उस समय जो श्रद्धांजलि गुरुदेव ने अर्पित की उससे जन-समुदाय बहुत अधिक प्रभावित हुआ था.

पूज्य गुरुदेव ने एक जगह लिखा है कि- " अपने गुरुदेव के महानिर्वाण के बाद मैने ऐसा महसूस किया कि अपनी मुश्किलें किसके सामने रखूँ ?" शास्त्रों के जानने की ख्वाहिश (इच्छा) हुई लेकिन बताने वाला कोई न मिला. एक साहब मिले भी लेकिन उनका आचरण शुद्ध नहीं था. इत्तफाक (संयोग) से एक संत लाला जी की तरह के ही मिल गए. उन्होंने शास्त्रों को पढ़ाया. मैने यह देखा कि जो शिक्षा लाला जी की थी उसी को उन्होंने ऋषियों की भाषा में मुझे समझा दिया. मैने देखा कि सब एक ही चीज़ है, फ़र्क़ सिर्फ़ शब्दों का है." पूज्य बैनर्जी साहब ही वे संत थे जिनके विषय में पूज्य गुरुदेव ने ऊपर लिखा है.

(२)

परमसन्त डॉ. श्याम लाल साहब सक्सेना,. गाज़ियाबाद

आगरा मेडिकल कॉलेज में आप गुरुदेव के सहपाठी थे और घनिष्ठ मित्र भी. आपने पूज्य लाला जी महाराज से दीक्षा प्राप्त की थी और गुरुदेव को बड़ा भाई मान कर आध्यात्म विद्या में अग्रसर होते रहे. डाक्टरी पास करने के बाद पूज्य गुरुदेव ने तो कुछ दिनों बलरामपुर हॉस्पिटल, लखनऊ में नौकरी की, ततपश्चात सिकन्दराबाद में ही अपनी निजी प्रैक्टिस खोली. पूज्य डॉ. श्याम लाल साहब ने राजपत्रित स्वास्थय अधिकारी के पद पर कार्य किया और उ.प्र. में विभिन्न नगरों में नियुक्त रहे. पूज्य लाला जी महाराज और गुरुदेव आपके पास जाते रहते थे. एक बार आपकी नियुक्ति गाज़ीपुर में थी और पूज्य लाला जी साहब दो दिनों के लिए वहां पधारे थे. सांयकाल को जब पूज्य लाला जी वायु सेवन के लिए गए तो खेतों में खड़े बड़ी देर तक दूर-दूर तक देखते रहे. पूछने पर अपने कहा कि हमने बीज डाल दिया है जो वक्त आने पर फूलेगा फलेगा.

उनकी यह भविष्यवाणी सत्य हुई. पूज्य लाला जी महाराज का मिशन पूर्वी उ.प्र. तथा बिहार में फैला और आज सत्संगियों में उस तरफ के लोगों की संख्या बहुत है.

पूज्य लाला जी के महानिर्वाण के पश्चात् आप सदा गुरुदेव को अपना बड़ा भाई मानते रहे और उनमें इतने लय हो गए कि देखने वाले दोनों को 'एक जान - दो कालिब ' कहा करते थे जिसका आशय यह है कि शरीर दो दिखाई देते हैं परन्तु दोनों की आत्मा एक ही है.

ग़ाज़ियाबाद में नगर पालिका के स्वास्थ्य अधिकारी के पद से अवकाश प्राप्त करने के बाद आप ग़ाज़ियाबाद में ही स्थायी रूप से रहने लगे हैं और अपने गुरुदेव के मिशन का कार्य बड़ी लगन से कर रहे हैं.

इस समय आपकी अवस्था ८५ वर्ष से ऊपर है, शरीर रोगी और दुर्बल है परन्तु ऐसी हालत में भी आप निकट और दूर के सत्संगियों की सेवा में रत हैं.आप बहुत शांत और विनम्र प्रकृति के सन्त हैं और आपकी वाणी में बहुत मधुरता है.

(३)

परमसन्त पूज्य श्री सेवती प्रसाद साहब, कासगंज

आप गुरुदेव के गुरुभ्राता हैं और पूज्य महात्मा रामचंद्र जी महाराज से दीक्षा प्राप्त हैं . पूज्य लाला जी महाराज के जीवन के अंतिम वर्षों में तथा उनके महानिर्वाण के वर्षों बाद तक भी आप फतेहगढ़ भण्डारे के लंगर का कार्य भार वर्षों तक सँभालते रहे हैं. अपने गुरुदेव के महानिर्वाण के बाद पूज्य महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज को सदा अपना बड़ा भाई मान कर गुरु-तुल्य सम्मान देते हुए, आप आध्यात्मिक विद्या में पारंगत हुए.

आप जिला एटा (उ.प्र.) के अंतर्गत आने वाली तहसील कासगंज में सुविख्यात मुख्त्यार (अधिवक्ता) रहे हैं. आजीवन इस पेशे में भी आपने निहायत ईमानदारी से अपने मुवक्किलों से व्यवहार किया है और सदा हक़ और हलाल और धर्म की कमाई पर गुज़ारा किया है.

आप की आयु इस समय ८५ वर्ष से भी अधिक है, शरीर रोगी और बहुत कमज़ोर है, परन्तु अपने गुरुदेव के मिशन का सेवा कार्य दूर और निकट स्थानों पर जाकर अब भी बड़ी लगन से कर रहे हैं. कासगंज में जून के महीने में प्रतिवर्ष आप भंडारा करते हैं जिसमे बहुत से प्रेमी-जन दूर-दूर से आकर आध्यात्मिक लाभ उठाते हैं.

(४)

शर्मा बहन

किन देवी महिला का संक्षिप्त वर्णन दिए बिना गुरुदेव की सवाने उमरी में साधारण सी अपूर्णता की झलक प्रतीत होगी. अतः मैं उनका संक्षिप्त परिचय देना अपना कर्तव्य समझता हूँ.

जब कभी मैं कासगंज अल्पकाल के लिए अपनी माता जी तथा पूज्य चाचा जी (परमसन्त श्री सेवती प्रसाद जी) के चरण स्पर्श के लिए जाया करता तो मुझे इनके दर्शन बहुधा हुए. पूज्य चाचा जी तथा मेरी माता जी के सौजन्य से यह महिला सत्संग में आ चुकी थीं और गुरुदेव से दीक्षा प्राप्त कर चुकीं थीं. उनका अधिक परिचय तो किसी को नहीं मालूम किन्तु वे जाति की ब्राह्मण थीं इसलिए उनको शर्मा कह कर सम्बोधित करते थे. उनका असली नाम श्रीमती रामकली देवी था. विधाता ने उनका भाग्यलेख ही कुछ ऐसा लिखा था कि उनके परिवार में कोई नहीं था. सुना है कि छोटी आयु में दरिद्रता के कारण उनका विवाह एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ कर दिया गया था जिनका दूध का व्यवसाय था. कुछ

वर्षों बाद वे स्वर्गवासी हो गए. कोई संतान नहीं थी. दुनियां से अकेली जूझती रहीं और कुछ काम महिलाओं के रोगों की दवा-दारू का तथा अन्य उपचार सीख लिए और उसी की आय से अपना गुज़ारा करती थीं.

जब कभी मैं कासगंज में होता था तो वे बड़े स्नेह से मेरे लिए अपने हाथ से मिष्ठान बना कर लातीं थीं और मेरी माता जी से कहती थीं कि ये भैया के लिए है. मैने एक दो बार उसे अस्वीकार कर दिया क्योकि मैं कुछ व्यक्तिगत कारणों से ऐसा समझता था कि मुझे इस मिठाई को नहीं खाना चाहिए.

शर्मा भीं इस संसार में निपट अकेली थीं और अकेली ही जीवनयापन तथा दुःख-सुख में संसार से जूझ रहीं थीं. उन्हें अपना भविष्य अंधकारमय दीखता था जिसके कारण उन्हें मानसिक रोग हो गया था, कुछ-कुछ पागलों जैसा व्यवहार उनमें दिखाई देने लगा. कासगंज सत्संग परिवार में कोई उनकी देख भाल के लिए तैयार नहीं हुआ. बिलकुल बेसहारा थीं. गुरुदेव का कासगंज में उन्हीं दिनों में आगमन हुआ. उन्होंने शर्मा बहिन की यह दुर्दशा देख कर उन्हें सिकन्द्राबाद ले जाने का निश्चय किया. वहां के सत्संगियों ने इसका कड़ा विरोध किया कि इस महिला को यहां के लोग अच्छी दृष्टि से नहीं देखते, आपके ऊपर आक्षेप आएगा. परन्तु गुरुदेव ने अपना निर्णय नहीं बदला. उन्होंने वहां के सत्संगियों से कहा कि यदि ऐसी ही बात थी तो आप लोगों ने इसे दीक्षा क्यों दिलवाई. अब मैने इसका हाथ पकड़ा है

(दीक्षा दी है) तो इसकी सहायता करना मेरा परम- धर्म है.

वे उन्हें सिकन्द्राबाद ले आये. दोनों समय पूजा में बैठाकर उनको तवज्जो देते. मेरठ के सुप्रसिद्ध होम्योपैथिक चिकित्सक डाक्टर चौधरी का बहुत दिनों इलाज करवाया और शर्मा बहिन स्वस्थ हो गयीं व उन्होंने आश्रम की सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया.

प्रायः गुरुदेव मुझसे कोई बात छिपाते नहीं थे और बहुधा गोपनीय बातें भी बता देते थे. एक बार जब मैं सिकन्द्राबाद गया तो उन्होंने कहा कि, " देखो, लोग मुझे लांछन लगाते हैं और तो और मेरे अपने ही लोग और मेरे सत्संगी भाई भी मुझे नहीं बख्शते. उन्होंने नाम भी लिए थे किन्तु गोपनीयता के कारण मैं भी यहां नाम नहीं दे रहा हूँ.

आगुन्तक सत्संगी भाई बहिनों की सेवा करना, आश्रम की सफाई, रखरखाव, सब काम शर्मा बहन करती थीं. गुरुदेव की बीमारी में उनकी सेवा दिन रात अथक परिश्रम से उनकी अंतिम श्वांस तक करती रहीं और अपनी इस अमूल्य सेवा से इसी जन्म में ५ सितम्बर सन १९७८ को निर्वाण को प्राप्त हुईं.

****

अध्याय १४

महानिर्वाण

पूज्य गुरुदेव को अपने गुरुदेव (महात्मा रामचंद्र जी महाराज) के मिशन का कार्य करने की ऐसी उत्कट लगन लगी रहती थी कि गृहस्थी का पूरा भार उनके ऊपर होते हुए भी वे दुकान छोड़कर सत्संगियों की सेवा के लिए सिकन्द्राबाद से बाहर चले जाते थे. दवाखाने में जो आमदनी होती थी वह गिनते नहीं थे और घर जाते ही अपनी जेब उलटी करके गुरुमाता के सामने सब पलट देते थे. वे ही उन्हें संभालती थीं. सन १९५० में उनका निर्वाण हो गया. गुरुदेव के मन में दृढ वैराग्य पैदा हो चुका था.. मार्च सन १९५५ में उन्होंने मेरी माताजी को एक पत्र लिखा था. गुरुदेव जो पत्र स्वयं लिखते थे वे उर्दू या अंग्रेजी में लिखते थे और जो सेवक उर्दू नहीं जानते थे उन्हें किसी सेवक से लिखवा देते थे और नीचे अपने हस्ताक्षर हिंदी या अंग्रेज़ी में करते थे. उस उर्दू के पत्र में (मेरी माता जी उर्दू भली भांति जानतीं थीं) उन्होंने लिखा था :-

" मेरी तबियत यहां बिलकुल नहीं लगती. एक-एक मिनिट का इंतज़ार हैं कि कब हरी(उनके ज्येष्ठ पुत्र डॉ. हरिकृष्ण भटनागर जो उस समय डाक्टरी पढ़ रहे थे) दुकान पर आये और कब मैं इस झगड़े से आज़ाद होऊं. दुनियाँ एक गोरखधंधा मालूम होती है और जिस चीज़ से लगाव मालूम होता है उसे भी छोड़ने को तबियत चाहती है. वापिसी को तबियत चाहती है. मुझको उस दुनियाँ में रहना पड़ रहा है जहां मैं एक सेकिंड भी रहना नहीं चाहता. न मालूम यह कब तक रहे और कब वह मुबारिक दिन आये. मेरी इच्छा शक्ति उतनी ही मज़बूत है जैसे कि कभी थी और मेरे लिए कोई चीज़ मुश्किल नहीं. है ."

कालान्तर में उनके सुपुत्र डाक्टरी पास करके आ गए. नवम्बर सन १९५५ में उन्होंने मुझे एक पत्र लिखा :- **" मैनें दुकान बिलकुल छोड़ दी है और तमाम सामान भी लड़कों को बाँट दिया है और मेरा इरादा सिकन्द्राबाद रहने का नहीं है बल्कि घूमने का है ताकि गुरु महाराज के सन्देश को लोगों तक पहुंचा सकूं."**

इस अथक परिश्रम के करण गुरुदेव अस्वस्थ रहने लगे. रक्तचाप बढ़ गया व डॉयबिटीज़ हो गयी. और यह बीमारियां धीरे-धीरे बढ़ती ही गयीं. इलाज भी होता रहा किन्तु पूरी तरह फायदा नहीं होता था क्योकि उनको आराम नहीं मिल पाता था. एक बार उनके दिमाग की नस भी फट गयी थी जो तुरन्त चिकित्सा उपलब्ध हो जाने से ठीक हो गयी थी.

बक्सर (बिहार) में दि. १९-१-१९६९ से २२-१-१९६९ तक बसंत पंचमी के उत्सव पर उनकी बीमारी और अधिक बढ़ गयी और बाहर जाना बहुत कम हो गया. अक्सर सिकन्द्राबाद में रह कर ही सत्संगियों की सेवा करते थे. रक्तचाप

(blood pressure) और मधुमेह ((diabetes) बढ़ा हुआ रहता था. जिसके कारण बहुत दुर्बल हो गए थे, फिर भी अपने गुरुदेव का काम नहीं छोड़ते थे. अभी तक उन्होंने अपने उत्तराधिकारी की विधिवत घोषणा नहीं की थी. यद्यपि लोगों का अनुमान उनके व्यवहार से यही था कि पूज्य सरदार करतार सिंह जी को ही वे अपने बाद मिशन का कार्यभार सौपेंगे.

गुरुजनों को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करने का ऊपर से आदेश होता है परन्तु इस कारण से कि कहीं अपने ख्याल का धोखा तो नहीं है वे अपने समकालीन किसी संत से उसकी पुष्टि करा लेते हैं. आपने दि . २९, ३०,३१ मार्च सन १९६९ को रुड़की में अपने प्रिय शिष्य बसंत बाबू (डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार सक्सेना) के यहां भण्डारे का आयोजन किया. अल्मोड़ा से श्री चिन्मयानंद पुरी जी (श्री रामकृष्ण शिवानन्द आश्रम, श्रीरामपुर) पधारे थे. स्वामी जी वयोबृद्ध सन्यासी हैं. उनके ठहरने के लिए एक अलग कमरे में प्रबन्ध कर दिया गया. गुरुदेव की उनसे कुछ गुप्त बातें हुईं . व्यक्तिगत बातचीत में गुरुदेव के महानिर्वाण के बाद स्वामी जी ने मुझे बताया था कि पूज्य गुरुदेव ने स्वामी जी के साथ अपनी एकांत की बातचीत में अपने उत्तराधिकारी की नियुक्ति की बात ही उनके सामने रखी थी और उन्होंने इस विषय पर सोच विचार के बाद अपना परामर्श पूज्य करतार सिंह जी के पक्ष में दिया था. जुलाई १९६९ में गुरु पूर्णिमा से पूर्व वे अत्यधिक बीमार थे. टाइफाइड ज्वर २२ दिनों तक रहा. गुरु पूर्णिमा आयी. बाहर के तथा आस-पास के कुल मिलाकर लगभग २० सत्संगी भाई बहिनें उनके दर्शनों के लिए पहुंचे. लखनऊ वाले सतीश जी (श्री के. बी. सक्सेना) वहां नौकरी से छुट्टी लेकर पहले से ही गुरुदेव की सेवा में रत थे. शर्मा बहिन दिन रात अथक परिश्रम करके उनकी सेवा करती हीं थीं. अपने प्रेमियों को आया देखकर प्रभु प्रेम में विह्वल हो गए और पुकार कर कहा - " शर्मा, मेरे कपड़े तो बदलवा दे, देख तेरे भाई आये हैं ." उन्होंने बैठा कर सतीश जी की सहायता से गुरुदेव के कपड़े बदलवाए, पलंग की चादर बदली गयी, सर पर धुली टोपी पहनाई गयी और अपनी इच्छा शक्ति के बल पर बिना किसी के सहारे वह महान विभूति पलंग पर विराजमान थी. उनका दाहिना पैर सूजा हुआ था जिस पर ऊपर से नींचे तक पट्टी बंधी हुई थी कि हवा लगकर कहीं दर्द अधिक न बढ़ जाये. सब लोग उनके चरणों में मूक बैठे हुए थे., सबके ह्रदय में अपने प्यारे पिता की यह हालत देखकर एक ऐसा दर्द भरा हुआ था कि मुख से कुछ नहीं निकलता था, केवल आंसू छलकते थे. पूज्य चाचाजी (परमसन्त श्री सेवती प्रसाद साहब, कासगंज) पूज्य सरदार जी भाई साहब, पूज्य डॉ. हरिकृष्ण जी गुरुदेव के पलंग के नीचे ज़मीन पर बैठे हुए थे और शेष लोग भी पीछे क़तारें बना कर अर्धचन्द्राकार घेरे में बैठे थे. कोई कुछ नहीं बोल पा रहा था. सभी के कंठ रुंधे हुए थे. पूज्य सेवती प्रसाद चाचा जी साहब ने रामायण का एक पद पढ़ना चाहा --

" मोरे प्रभु, तुम गुरु पितु माता,

जाऊँ कहाँ तजि पद जलजाता. "

इसे वह पूरा नहीं पढ़ सके. "तजि" तक ही बोल पाए थे कि फूट-फूट कर रो पड़े. वहां पर सभी लोग रो रहे थे. गुरुदेव भी फ़फ़क कर रो पड़े. उनके दोनों हाथ दुआ में ऊपर उठ गए. रुंधे हुए कंठ से उन्होंने कहा था -" मैं सच्चे दिल से ईश्वर से दुआ

करता हूँ कि वे आप सबको अपना सच्चा प्यार दें." उसके बाद वह गुरुपूर्णिमा फिर कभी नहीं आयी. उनके आशीर्वाद से अभी तक उन भाग्यशाली व्यक्तियों के जीवन में ईश्वर का प्रेम पल्लवितं और पुष्पित हो रहा है.

१९६९ दशहरे का वार्षिक भंडारा उनके जीवन काल का अंतिम भंडारा था जो उनकी अत्याधिक बीमारी में सदा की भांति उनके निवास स्थान सिकन्द्राबाद में ही संपन्न हुआ था. बीमारी और दुर्बलता के कारण वे सत्संग थोड़ी देर ही करा पाते थे. जब वे गद्दी पर से उठकर अंदर के कमरे में विश्राम के लिए चले जाते थे तब पूज्य चाचा जी श्री सेवती प्रसाद साहब , भाई साहब पूज्य सरदार करतार सिंह जी साहब, पूज्य डॉ. हरिकृष्ण जी एवं पूज्य बसंत बाबू ही तवज्जो दिया करते थे. परन्तु इनमें से कोई भी प्रवचन नहीं करता था.

८ फरवरी १९७० को बसंत पंचमी का भंडारा उनकी बीमारी के कारण सिकन्द्राबाद में हुआ था. मार्च-अप्रेल १९७० में बीमारी और अधिक बढ़ गयी और राम-संदेश में यह छपवा दिया गया कि उनके दर्शनों के लिए कोई सत्संगी आने का कष्ट न करे. वास्तव में उन्होंने अपने आपको अपने अंतर में इतना समेट लिया था कि दुनियां से बिलकुल विरक्त हो गए थे. ऐसी परिस्थिति में भी यदि कोई बाहर के सत्संगी भाई -बहिन आ जाते थे तो वे केवल यही इच्छा लेकर आते थे कि दर्शन मिल जाएँ , चाहें दूर से ही, और बस. घर के बाहर का दरवाज़ा बंद रखा जाता था परन्तु वे यद्यपि आँखें बंद किये शांत लेटे रहते थे फिर भी शर्मा बहन से कहते थे कि देखो कोई दरवाज़े पर खड़ा है, उसे बुला लो. शर्मा बहन दरवाज़ा खोलतीं थीं तो उस व्यक्ति को देख कर उन्हें इस बात पर महान आशचर्य होता था कि चाचा जी को (पूज्य गुरुदेव को वे चाचा जी कहा करतीं थीं) यह कैसे पता लगा कि अमुक व्यक्ति ही आया है. जब वह व्यक्ति घर में प्रवेश करके दूर से नतमस्तक होता तो पलक मारने भर के लिए गुरुदेव उसकी ओर आशीर्वाद सूचक दृष्टि से निहार लेते थे.

उनकी इस गंभीर बीमारी में मेरे सत्संगी भाई पूज्य जुगल किशोर शर्मा एवं श्री सतीश जी ने नौकरी से लम्बी छुट्टी लेकर अथक सेवा की थी. शर्मा बहिन तो दिन रात निनिर्मेष सेवारत रहती हीं थीं. उनके लिए एक बार गुरुदेव ने कहा था कि, "शर्मा, मैने तेरे १३ जन्म काट दिए." (कौन जाने उनके इतने ही जन्म शेष रहे थे).

पूज्य हरि भाई साहब ने मुझे इतनी छूट दे रखी थी कि गुरुदेव की बीमारी में मेरे लिए दर्शन करने की मनाही नहीं थी. जब भी मैं मस्तक नवांता था तो वे पलकें उठा कर एक बार मेरी ओर देख लेते थे. शरीर छोड़ने से एक सप्ताह पहले से मैं ओर मेरी पत्नी ग़ज़ियाबाद से नित्य प्रातः काल स्कूटर पर उनके दर्शनार्थ जाते थे ओर वापस आ जाते थे. उनकी बीमारी में मैं हाथ पैरों से उनकी कोई सेवा नहीं कर सका. इसका मुझे दुःख भी है ओर पश्चाताप भी.

१८ मई सन १९७० को जब मैं ओर पत्नी स्कूटर से सिकन्द्राबाद के लिए चले तो रेल का फाटक बंद था, अतः सिकन्द्राबाद पहुँचते -पहुँचते हम लोगों को १५ मिनिट का विलम्ब हो गया. द्वार के बाहर गुरुदेव का कम्पाऊंडर परमेश्वरी मिला. उसने बताया कि गुरुदेव तो अभी कुछ देर पहले (प्रातः काल लगभग ६ बजे) चले गए. आज सिकन्द्राबाद

एक महान संत से ख़ाली हो गया. उसके बाद का दुःख अवर्णनीय है. पूज्य सरदार जी भाई साहब, भाई भजन शंकर जी ओर जुगल किशोर जी वहां मौजूद थे. वह दिन सोमवार का था. उसी दिन पवित्र बारह वफ़ात का भी पर्व था जो पैगम्बर हज़रत मुहम्मद साहब का जन्म तथा निर्वाण दोनों का दिन है. अंग्रेजी साल के हिसाब से तो ता. १८ जून सन १९७०, हिंदी का वैशाख शुक्ल द्वादशी सम्वत २०२७ विक्रमी थी.

वे तो शरीर छोड़कर संसार से विदा ले गए, परमात्म रूप बन कर सब जगह व्याप्त हो गए परन्तु उनके दर्शन के लिए उनके प्रेमियों की आँखें आज भी लालायित रहतीं हैं. यह जानते हुए भी कि इस पार्थिव शरीर को तो जाना ही है, उससे मोह था, क्योकि उनसे बातें करते थे, उनके हँसते हुए मुखमण्डल को देखकर ही सब दुःख दूर हो जाते थे, उनके प्यार का हाथ सिर पर रखते ही एक ऐसे अद्भुत शांति ओर आनंद का अनुभव ओर आभास हो जाता था कि हम लोग न जाने कहाँ खो जाते थे. वे भले ही चारों ओर छाए रहते हैं परन्तु इन स्थूल आँखों को तो उनके स्थूल रूप के दर्शनों की आदत पड़ गयी है जिसके बिना रहा नहीं जाता. हँसते-हँसते रुला गए जीवन भर के लिए.

" ता क़यामत न बुझे , आग ऐसी लगा गया कोई

बाद मुद्दत गले लगा कर ए 'ज़ौक़' हँसते -हँसते रुला गया कोई."

अपनी गम्भीर बीमारी में जब वे अपने प्रेमी सत्संगी भाई-बहिनों को उदास ओर ग़मग़ीन देखते थे तो प्रेम पूर्वक सान्त्वना देते हुए कहते थे, **" घबराओ मत, जिस्म की क़ैद में रहते हुए हम लोगों की उतनी ख़िदमत नहीं कर सकते जितनी जिस्म टूटने के बाद."** यह बिलकुल सही प्रमाणित हुआ है. वे शरीर छोड़ने के उपरांत सर्व-व्यापक हो गए हैं. ओर जो उनका स्मरण करते हैं वे उन्हें अपने निकट पाते हैं. संकट के समय वे अब भी सहायता करते हैं, विकट परिस्थितियों से निकालते हैं, जीवन रक्षा करते हैं ओर कभी-कभी तो उनके सदेह दर्शन भी होते हैं.

शरीर छोड़ने के कुछ काल पूर्व उन्होंने मुझसे, पूज्य करतार सिंह जी साहब से तथा अन्य प्रेमियों से कहा था-" मेरी समाधि मत बनाना." यह उनका स्पष्ट आदेश था. परमसन्त बैनर्जी साहब के पार्थिव अवशेष जब गोरखपुर से लाये गए तो ग़ज़ियाबाद रेलवे स्टेशन पर मैने उन्हें प्राप्त किया था ओर उन्हें लेकर मैं सिकन्द्राबाद गया था. गुरुदेव ने उस मिटटी के कलश को जिसमें अवशेष थे, बड़ी श्रद्धा ओर आदरपूर्वक मेरे हाथों से लेकर अपने सिर पर रख लिए ओर मौन हो गए. कुछ देर बाद मुझ से कहा कि हमारे मरने के बाद तुम इन्हें ओर मेरी हड्डियों (अवशेषों) को तुम गंगा में फेंक आना. उन अवशेषों को उन्होंने पूजा के कमरे में पूर्व की ओर एक छोटे से पक्के चबूतरे में सुरक्षित करके रख दिया. उनके पार्थिव शरीर के अवशेष भी उसी प्रकार उनके परिवार वालों ने उसी कमरे में एक छोटी सी समाधि के रूप में सुरक्षित करके रख दिए हैं. अपनी विवशता के कारण मैं उनकी उपरोक्त आज्ञा का पालन नहीं कर सका.

अध्याय १५

महात्मा श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी

हमारे सिलसिले में जब किसी सतगुरु के निर्वाण का समय निकट आता है तो वंश के निर्वाणप्राप्त महापुरुषों के आंतरिक संकेत पर अपने एक या दो (कभी-कभी अधिक भी) शिष्यों को सम्पूर्ण आचार्य पदवी (सूफियों की इज़ाज़त ताआम्मा) देकर अपने पशचात आध्यात्मिक शिक्षा के कार्य के लिए नियुक्त कर देते हैं. शिष्यों में से एक तो उनकी संतान में से होता है (अगर वह सिलसिले में है) और दूसरा जो उनकी ' मुराद ' या गुरुमुख होता है. इसके अतिरिक्त अपने गुरु-भाइयों में से भी जिसको इस योग्य समझते हैं उनको भी विभिन्न श्रेणियों की इज़ाज़तें दे देते हैं .

यह इज़ाज़तें चार प्रकार की होती हैं :-

(१) जैसे-जैसे अभ्यास करते-करते गुरु की कृपा द्वारा साधक आन्तरिक चक्रों को बेधता जाता है और ह्रदय चक्र से ऊपर उठकर छठे चक्र पर (जिसे विलायत सुग़रा या पिण्डी-मन का स्थान कहते हैं) पहुंच जाता है तो आचार्य उसे "इज़ाज़त शर्तिया ' (प्रतिबंधित आज्ञा) दे देते हैं. यह एक प्रकार की मॉनिटर पदवी है. जैसे, स्कूल की किसी कक्षा में सब विद्यार्थी एक समान होते हैं परन्तु अध्यापक किसी एक विद्यार्थी को अनुशासन के लिए नियुक्त कर देता है , इसी तरह सत्संग के आचार्य उपरोक्त दशा में जिस सत्संगी को उचित समझें उसे " इज़ाज़त शर्तिया " (मॉनिटर पदवी) दे देते हैं. ऐसे मॉनीटरों का यह कर्तव्य होता है कि गुरु की आज्ञा द्वारा सत्संगियों को अनुशासन में रखें व सत्संग करायें .

(२) इससे आगे चलकर अभ्यासी " त्रिकुटी" के स्थान पर पहुंचता है. इसे " विलायत कुबरा " या " ब्रह्माण्डी मन का स्थान " कहते हैं . जब साधक इस स्थान पर पहुंच जाता है तब उसे " इज़ाज़त तालीम" दे दी जाती है यानी वह आचार्य के संरक्षण में सत्संगियों को आध्यात्मिक शिक्षा देने का कार्य करने लगता है. उसे उपदेश देने (दीक्षा देना बैत करना) का अधिकार नहीं होता. वह उतनी ही तालीम दे सकता है जहां तक स्वयं रसाई (पहुंच) हासिल कर चुका है.

(३) त्रिकुटी के स्थान से ऊपर की चढ़ायी करके जो अभ्यासी आत्मा के स्थान तक पहुंच चुके होते हैं उनको सत्संग के अधिष्ठाता (सतगुरु) "गुरु" पदवी दे देते हैं. सत्संगियों को आध्यात्मिक शिक्षा देने के अलावा उन्हें यह भी अधिकार प्राप्त होता है कि वह जिज्ञासुओं को उपदेश (दीक्षा) दें. इसे सूफियों में " बैत करना" कहते हैं. ये लोग दूसरे सत्संगियों या अभ्यासियों को इज़ाज़त नहीं दे सकते.

(४) इससे आगे की और आख़िरी इज़ाज़त को सूफी भाषा में " इज़ाज़त ताआम्मा " या " मुक़म्मिल इज़ाज़त " (सम्पूर्ण आचार्य पदवी) कहते हैं. जिन सज्जनों को यह प्रदान की जाती है वे एक या दो या कभी-कभी इससे भी अधिक

व्यक्ति होते हैं और अपने आध्यात्मिक गुरु (आचार्य) का काम पूरा करने के लिए उनके साथ आते हैं. पिछले जन्मों का उनका कुछ न कुछ साथ होता है और पिछली कमाई किये हुए होते हैं. वर्तमान जन्म में पिछली किसी कमी को पूरा करने आते हैं और गुरु कृपा से उसे पूरा करके अपने जीवन के शेष समय में अपने गुरु के मिशन को फैलाने में बिताते हैं. यही " गुरुमुख" या " मुराद " कहलाते हैं. यह हज़ारों में से एक या दो होते हैं. यह गुरु के फिदायी होते हैं यानी आशिक़ (प्रेमी) होते हैं.

" इज़ाज़त ताआम्मा " या सम्पूर्ण इज़ाज़त वर्तमान अधिष्ठाता द्वारा लिखित रूप में दी जाती है. यह इज़ाज़त आखिरी होती है. इस पर किसी मौज़ूदा वक्त के पूरे संत की तस्दीक़ होती है.

यह ज़रूरी नहीं है कि यह तस्दीक़ सबके लिए की जाय. इज़ाज़त देते वक्त यदि यह देखते हैं कि तकमील (पूर्णता) नहीं हुई है, गुरु की खैंच शक्ति द्वारा (कश्फी तौर पर) हो चुकी है लेकिन शिष्य के अभ्यास द्वारा (क़स्बी तौर पर) नहीं हुई है तो संभव है कि वह किसी समय रास्ते से बेरास्ते हो जाय, इस सावधानी के कारण यह कह देते हैं कि इज़ाज़त की तस्दीक़ करा लेना. तस्दीक़ करने वाला महापुरुष बहुधा अपने ही वंश का इज़ाज़त ताआम्मा प्राप्त होना चाहिए. यदि यह समझते हैं कि वह व्यक्ति जिसे इज़ाज़त ताआम्मा दी गयी है वह किसी दूसरे की तरफ़ रागिब नहीं होगा और तकमील कर लेगा तो फिर इसकी ज़रूरत नहीं है.

पूज्य गुरुदेव ने लिखित रूप में सम्पूर्ण आचार्य पदवी तीन महानुभावों को दी थी. उन्होंने कई बार इज़ाज़तें दीं और कई बार रद्द भी कीं. अंतिम आज्ञा पत्र मेरे द्वारा दिनांक १२-११-१९६९ को अपरान्ह में लिखवाया था.

मैं सप्ताह में एक या दो (कभी-कभी अधिक) बार आपकी सेवा में सिकन्द्राबाद जाता रहता था. उपरोक्त तारीख को जब मैं सिकन्द्राबाद आपकी सेवा में पहुंचा तो वे कुछ परेशान से दिखाई दे रहे थे. भाई साहब श्री कँवल सिंह जैन (जो अब इस संसार में नहीं हैं) वहां मौजूद थे. उनकी उपस्थिति में गुरुदेव ने मुझसे आज्ञापत्र लिखवाया और उस पर यह आज्ञा भी लिखवाई कि इसे मासिक पत्रिका " राम सन्देश " में छाप दिया जाए. उस पर उर्दू और अंग्रेजी में पूरे हस्ताक्षर किये. गुरुदेव का यह नियम था कि जब किसी दस्तावेज़ (डॉक्यूमेंट) पर हस्ताक्षर करते थे तो अपना पूरा नाम लिखते थे. अन्य स्थानों पर वे अधिकतर केवल हिंदी या उर्दू में " श्री कृष्ण " या " श्री कृष्ण लाल" लिख दिया करते थे. उपरोक्त आज्ञा पत्र लिखते समय उन्होंने आदेश दिया था कि सरदार करतार सिंह की नियुक्ति मेरी जगह होगी. डॉ. हरिकृष्ण (उनके ज्येष्ठ सुपुत्र) तथा डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार सक्सेना (उर्फ़ बसंत बाबू) को उन्होंने सम्पूर्ण आचार्य पदवी दी थी. इस आज्ञा पत्र को लिखवाकर अपने हस्ताक्षर करने के बाद श्री कँवल सिंह जी तथा मुझसे गवाही के हस्ताक्षर करवाए और मुझे देकर विदा किया. अगले दिन मुझे बुलवाने के लिए पत्र भेजा. पत्र पाकर जब मैं उनके दर्शनं करने गया तब उन्होंने आदेश दिया था कि उपरोक्त आज्ञा पत्र को मेरे विसाल (निर्वाण) के बाद छापना जिसका पालन यथा समय किया गया.

दिनांक १२-११-६९ वाला आज्ञापत्र ही गुरुदेव का अंतिम आज्ञा -पत्र है जिसकी प्रतिलिपि नीचे दी जाती है. इसके द्वारा पहले के इस श्रेणी के आज्ञा- पत्र स्वतः ही रद्द हो जाते हैं. इसी आज्ञा-पत्र को उनके निर्वाणोपरांत अन्य दोनों आचार्य तथा अन्य सभी सेवक पद्रह वर्ष से भी अधिक समय से मान्यता देते चले आ रहे हैं. बड़े दुःख की बात है कि वह फ़ाइल जिसमें यह असल आज्ञा-पत्र रखा हुआ था रामाश्रम सत्संग (रजि.) के मंत्री के पास से खो गयी है. दिनांक १२-११-६९ के आज्ञा-पत्र में जब तीन नाम आ चुके तब मैने उनसे पूछा कि क्या आप किसी अन्य व्यक्ति का नाम भी लिखवाना चाहेंगे. उत्तर में आपने स्पष्ट कहा था कि बस, और कोई नहीं. बाद में देखा जायेगा.

मेरी जानकारी में गुरुदेव ने लिखित रूप में किसी अन्य व्यक्ति को इज़ाज़त ताआम्मा नहीं दी है. यदि किसी अन्य महानुभाव को लिखित में १२-११-६९ के बाद इज़ाज़त ताआम्मा दी है तो वे कृपया मुझे क्षमा करेंगे क्योकि वह मेरी जानकारी में नहीं है.

पूज्य गुरुदेव ने कई बार मौखिक कहा है तथा लिखा भी है -" हमारे यहाँ इज़ाज़त लिखित रूप में देते हैं. मॉनिटरी की इज़ाज़त (सत्संग कराने की) या तालीम (शिक्षा) की इज़ाज़त लिखित में देने की ज़रूरत नहीं है लेकिन बैत करने की (दीक्षा देने की) इज़ाज़त और इज़ाज़त ताआम्मा (सम्पूर्ण आचार्य पदवी) लिखित में देते हैं. यह इस वास्ते किया जाता है कि सिलसिला बगड़ न जाय, हर शख्स उस काम को न कर सके."

पूज्य गुरुदेव ने इज़ाज़त बैत (दीक्षा देने कीआज्ञा) लिखित रूप में केवल पूज्य अखिलेश कुमार जी (प्रपौत्र परमसन्त महात्मा रामचंद्र जी महाराज) को दी थी. अन्य किसी को इज़ाज़त बैत लिखित रूप में दी हो तो वह मेरी जानकारी में नहीं है. मॉनिटरी की तथा शिक्षक की इज़ाज़तें उन्होंने कुछ व्यक्तियों की दी है परन्तु वे भी लिखित रूप में नहीं हैं.

(प्रतिलिपि)

रामाश्रम सत्संग (रजि.)

सिकन्द्राबाद , उ. प्र.

आचार्य परमसन्त डॉ. श्रीकृष्ण लाल

आज्ञा पत्र

दिनाँक १२-११-६९

मैं कि डॉ. श्रीकृष्ण लाल पुत्र श्री भगवत दयाल भटनागर, निवासी मौ. कायस्थवाड़ा, सिकन्द्राबाद , जिला बुलंदशहर (उ.प्र.) का हूँ और वर्तमान आचार्य रामाश्रम सत्संग (रजि.) सिकन्द्राबाद की हैसियत से यह आज्ञा-पत्र लिख रहा हूँ. मैने सरदार करतार सिंह सुपुत्र सरदार संतसिंह निवासी मौ. राम नगर देहली को अपनी मृत्यु के उपरान्त रामाश्रम सत्संग का आचार्य अपनी जगह नियुक्त किया है और यह नियुक्ति बराबर रहेगी. पूर्वजों से ऐसा चला आया है के आध्यात्मिकता के प्रसार के लिए एक से अधिक आचार्य भी नियुक्त होते आये हैं. अभी तक मैने ऐसा नहीं किया है. किन्तु सत्संग का कार्य क्षेत्र बहुत विस्तृत है और जीवन में ही दो व्यक्ति इस योग्य हो गए हैं जन्हें आचार्य पदवी दी जा सकती है. इनके नाम हैं :-

(१) डॉ. हरिकृष्ण भटनागर (जो मेरे ज्येष्ठ पुत्र हैं)

(२) डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार (बसंत बाबू) सुपुत्र डॉ. श्यामलाल सक्सेना, रुड़की . उक्त दोनों सज्जनों को भी मैं आचार्य पदवी देता हूँ. उन्हें अब तक बैत की इज़ाज़त तो थी किन्तु अब इज़ाज़त ताआम्मा भी देता हूँ.

चूंकि अकेले सरदार करतार सिंह इतने बड़े काम को संभालने में कुछ कठिनाई का अनुभव करें अतः आध्यात्मिकता के सुगमता से प्रसार के लिए मैं यह चाहता हूँ कि इन आचार्यों का कार्यक्षेत्र निश्चित कर दूँ, अतः यह घोषणा करता हूँ कि

सरदार करतार सिंह मेरे सर्वोच्च आचार्य रहेंगे और यद्यापि उनका कार्यक्षेत्र सभी जगह रहेगा किन्तु वे विशेषतः दिल्ली, ग़ाज़ियाबाद तथा अन्य स्थानों का कार्य सँभालेंगे.

डॉ. हरिकृष्ण भटनागर सिकन्द्राबाद सत्संग व डॉ ब्रजेन्द्र कुमार रुड़की सत्संग व आसपास के क्षेत्रों का कार्य सँभालेंगे और सरदार करतार सिंह जी को अपना बड़ा भाई मानते हुए उनसे आवश्यक बातों में सलाह लेकर काम करेंगे.

जिन व्यक्तियों को इज़ाज़त तालीम है वे सब उपरोक्त तीनों सज्जनों के साथ मिलकर कार्य करेंगे.

ह. श्रीकृष्ण लाल

बक़लम खुद (उर्दू)

१२-११-६९

Srikrishan Lal

12-11-69

(मोहर)

आचार्य रामाश्रम सत्संग

सिकन्द्राबाद (यू. पी)

Witness:

1. Sd. Kanwal Singh Jain
   R/o 1381/21 Naiwala
   Karol Bagh, New Delhi
2. Mahesh Chandra
   R/o Rama Krishna Colony
   Ghaziabad (U.P.)

अध्याय १६

कुछ उपदेश

(१) जीवन सुख से बिताने का तरीक़ा यह है कि जो कर्तव्य ईश्वर ने तुम्हारे सुपुर्द किया है उसे पूरा करो और कोई आशा किसी से न रखो. **ईश्वर पर पूरा भरोसा रखो.और उसी से प्रेम करो, तभी सुख मिल सकता है वरना हमेशा दुखी रहोगे.**

(२) जो काम करो ईश्वर को खुश करने के लिए करो. हर काम में उसका भरोसा रखो. इससे तुम्हे उसका प्रेम मिलेगा और उसी का प्रेम असली प्रेम है. **यही ज़िंदगी का सार है.**

(३) हमारे यहां का 'तप ' यह है कि सबके ताने और खोटी खरी सुनो और सोचने पर यही समझ में आये कि ग़लती उनकी नहीं अपनी है. अपनी ग़लती को दूर करने की कोशिश करो और उन लोगों को धन्यवाद दो जिनके द्वारा गलतियां मालूम हुईं.

(४) प्रेम और विश्वास जिस दिल में है वह बहुत गहरा है. वह कभी मरता नहीं. जितना मिलता है उतना ही और चाहता है. **सेवा प्रेम पैदा करने के लिए की जाती है और जहां प्रेम स्वयं मौजूद है वहां सेवा की आवश्यकता नहीं होती.**

(५) **प्रभु की कृपा वगैर गुरु-कृपा के नहीं होती और गुरु-कृपा वगैर निज-कृपा के नहीं होती. निज-कृपा यह है कि 'सत' पर चलो जिससे मन शुद्ध हो. मन के शुद्ध होने से बुद्धि शुद्ध होती है और बुद्धि की शुद्धि से सच्चा ज्ञान मिलता है.**

(६) **सत्य बोलना और हक़-हलाल (ईमानदारी) की कमाई पर गुज़ारा करना बहुत बड़ी तपस्या है, और अगर इसी को अंत तक कोई निभा ले तो यह अकेला हे भवसागर से पार कर देगा.**

(७) **मन को वश में करना बहुत मुश्क़िल काम है. वैराग्य और अभ्यास दो ही इसके साधनं हैं.** यह निश्चय हो जाता है कि जो चीज़ें क्षण भंगुर हैं, यानी तब्दील होने वाली हैं और उनसे हमेशा का सुख नहीं मिल सकता उनसे अपने आप को हटाना 'वैराग्य' है. परमात्मा का नाम हृदय की जिह्वा यानी ख़्याल से लेते रहना 'अभ्यास' है.

(८) परमार्थ में चार बातें बाधक होती हैं :

१. आलस,

२. स्त्री, या यों कहिये काम-वासना

३. मन की वासनाएं जिनमें दौलत, रुपया-पैसा व अन्य वस्तुएं शामिल हैं

४. अहंपना

जब इन चीज़ों से छुटकारा मिल जाता है, तभी परमार्थ की कमाई शुरू होती है. इनको छोड़ना ही असली तप है.

(९) दीन और दुनियाँ (लोक और परलोक) दोनों को निभाना है. **दिखावे के लिए संसार से वास्ता रखो और अन्दर से शनै - शनै सबसे अलग हो जाओ.** उस (परमात्मा) पर भरोसा रखो, वह सब कुछ देखता है . जब समय आएगा, सब काम हो जायेंगे.

(१०) **परमात्मा की याद किसी हालत में नहीं भूलना चाहिए. दुःख -सुख तो आते ही रहेंगे. ऐसा कौन है जो इनसे बचा है ?** इनसे घबराना नहीं चाहिए. परमात्मा पर भरोसा करो और मुसीबतों का सब्र से मुकावला करो.

(११) दुनियाँ में सब कामों के लिए समय मिलता है लेकिन नहीं मिलता तो राम नाम के लिए समय नहीं मिलता और सिवाय राम नाम के कोई काम नहीं आता . इसी मूर्खता में सारा संसार फंसा हुआ है. अगर इस जीवन का सच्चा लाभ उठाना चाहते हो तो इस मूर्खता को दूर करो और जहां तक संभव हो सत्संग में जाओ ताकि आंतरिक उन्नति हो. **इस रास्ते में अपना बल कुछ काम नहीं करता.**

(१२) **स्त्री का शरीर अपने पति और लड़कों का है. गुरु का तो सिर्फ़ मन होता है. गुरु की सेवा अपने ख्याल से कर सकती हो जिससे तुमको फ़ायदा होगा लेकिन गुरु के शरीर को छूना, पाँव दबाना पाप है.**

(१३) दुःख हो या सुख, ख़ुशी से सहन करो.क्योकि वह तुम्हारे प्रीतम (परमात्मा) के प्रेम कि निशानी है. और -

१- विश्वास रखो कि वह सब जगह मौजूद है.

२- वह सर्वशक्तिमान है .

३- कोई काम बिना उसके हुक्म के नहीं हो सकता. जो काम तुम्हारे योग्य है उसी में तुम्हारी भलाई है और हर हालत में वह तुम्हारे फ़ायदे के लिए है. ऐसा पक्का विश्वास करके सच्चे दिल से उसका नाम लो, उसी से मदद मांगो, अपना सब बोझ उस पर डाल दो और उसकी दया का पूरा भरोसा रखो. यही सच्चा मार्ग है. इसी पर चल कर शांति मिल सकती है.

(१४) **जब कभी मन क़ाबू में न आये उसे गुरु के सामने कर दें. अपने आप उसके पीछे आ जाएँ और गुरु की ओट ले लें . मन शांत हो जायेगा.**

(१५) (अ) जब ख़ाली बैठो पूर्ण विश्वास के साथ ख्याल करो कि ईश्वर तुम्हारे अन्दर है. वही

तुम्हारा सच्चा हितेषी है. उसका नाम बराबर लेते रहो जो ॐ है .

(ब) जो कुछ होता है ईश्वर के हुक्म से होता है, यानी अपने ही कर्मों का फल है और

वह भोगना पड़ेगा. इसलिए उसे ख़ुशी से भोगो.

(स) **झूंठ का त्याग, सत्य बोलना, क्रोध रोकना, इंद्री भोग में कम फंसना, दूसरों का**

दिल न दुखाना. इन बातों का अभ्यास करो.

(१६) जिस चीज़ से दुःख होता है उसे छोड़ दो और अच्छी आदतें बनाने की कोशिश करो. जिसका साधन यह है :-

१- संतों का सत्संग और उनकी सेवा.

२- ईश्वर का नाम बराबर लेते रहना

३- अपनी बुरी आदतों को दबाने की कोशिश करना.

इन बातों पर अमल करो तभी आचरण ठीक हो सकता है. **परमार्थ में आचरण बनाना पहली शर्त है,.**

(१७) **इस रास्ते में हिम्मत की बड़ी ज़रूरत है. कभी घबराएं नहीं, बराबर दुनियाँ से लड़ते रहें और ईश्वर और अपनी कामयाबी (सफलता) का पूरा विश्वास रखें.** जितनी सफलता नहीं होती वह तुम्हारा इम्तहान है और देखा जाता है कि कितनी हिम्मत है, जितनी दुनियाँ की चीज़ें छूटें वह इम्तहान है और देखा जाता है कि अपने लक्ष्य से कितना प्यार है. पेश्तर (प्रथम) में ईश्वर से प्यार हो लेकिन सांसारिक चीज़ों से भी प्यार हो तो तरक़्क़ी देर से होती है. इसलिए ईश्वर के प्यार के साथ दुनियाँ से तर्क (त्याग) भी ज़रूरी है. गुरुजन और ईश्वर हर वक्त कृपा करते हैं लेकिन उसका अहसास (आभास) उसी वक्त होता है जब भक्त कोशिश करके अपने ह्रदय को दुनियाँ की ख्वाहिशात (इच्छाएं) और नफ़रत (द्वेष) से पाक (पवित्र) कर लेता है, इससे पहले नहीं. इसलिए घबराना नहीं चाहिए. **हर वक्त ख़्याल रखो कि वह (ईश्वर) हर वक्त तुम्हारे साथ है, तुम्हारा सच्चा बाप है. प्यार से उसका पवित्र नाम लेते रहो.**

(१८) हर वक्त ख्याल रखो कि यह दुनियां ईश्वर की है, हम सब ही ईश्वर के हैं, जो काम हो रहा है और हम कर रहे हैं, ईश्वर के लिए कर रहे हैं

(१९) **गुरु की सच्ची सेवा यह है कि मन और माया से ऊंचे उठो और परमात्मा का प्रेम हासिल करो. नेकी (भलाई) का रास्ता अख्तियार (ग्रहण) करो. खुद चलो और दूसरों को उस पर चलाओ. जो ऐसा करते हैं उनसे गुरु प्रेम करता है. गुरु का प्रेम ही परमात्मा का प्रेम है. इनके मिल जाने पर खुद-ब-खुद (स्वतः) सब बुराइयां दूर हो जाती हैं.**

(२०) **पूर्ण श्रद्धा के साथ गुरु के बतलाये हुए रास्ते पर चलें, और दुनियां की बड़ी से बड़ी चीज़ को त्यागने में न हिचकिचायें बल्कि ख़ुशी से त्याग दें.** ऐसा संयोग होने से कभी असफलता नहीं होती और हर आदमी सफल होता है . जितनी देर ऐसी हालत प्राप्त होने में होती है उतनी ही देरी आदर्श प्राप्त होने में होती है.

(२१) सत के रास्ते पर चलने से हमेशा-हमेशा की शांति और भरपूर आनंद जो कभी खत्म न हो, जिसके बाद किसी और आनंद की ख्वाहिश ही न रहे, मिलता है. ऐसा आनंद मिलने पर सब ख़्वाहिशातें (इच्छाएं) लय हो जाती हैं और इंसान आवागमन से छूट जाता है. **यही निर्वाण पद और यही मोक्ष है. सत का रास्ता यह है कि सच्चाई से अपना जीवन बिताओ.**

(२२) गुरु से मौहब्बत करना और उसका सहारा लेकर दुनियां की मौहब्ब्त से मुंह मोड़ लेना फ़नायेशेख (गुरु में लय

होना) कहलाता है.मगर गुरु भी एक सहारा है. अपने अंदर के गुरु में अपना मन लगाएं और जिस्म के गुरु से ताल्लुक़ तोड़िये यानी उसी मूर्ति को दिल में रखिये. जब परमात्मा का अनुभव होने लगे तो गुरु का ध्यान भी छोड़ दीजिये और आखिर को परमात्मा का ध्यान भी छोड़ दीजिये. वह भी धोखा है. अपने आप में मगन रहिये. तहरीर (लिखित) में इतना ही समझाया जा सकता है.

(२३) जब तक मन के चक्कर में रहेंगे, यही हालत बनी रहेगी. उससे निकलने का यही उपाय है कि **सोचो और खूब सोचो कि दुनियां में कौन सी चीज़ ऐसी है जो क़ायम (स्थायी) रहने वाली है और जिस पर एतबार (भरोसा) किया जा सके. फिर उससे दिल लगाने में ज़रूरी है कि सुख भी हो और दुःख भी. बल्कि सुख कम, दुःख ज़्यादा. इसलिए दुनियां की चीज़ों से दिल हटाकर ईश्वर में लगाओ.** जब मन दुनियाँ से बेज़ार (ऊब) होकर ईश्वर के नाम में लगने लगेगा तभी सच्ची शांति नसीब होगी.

(२४) **घर के कामों में कम से कम दख़ल दीजिये. जितना कम दख़ल देंगे उतना ही आराम में रहेंगे. आदमी के सुधारे कुछ नहीं सुधरता. यह काम ईश्वर के हाथ में है.**

(२५) अपना अभिमान झूंठा है. इसको त्यागना होगा इसके बाद जो रहेगा. वही असली 'सत्ता ' है उसका निरादर करने की दुनियां में ताक़त नहीं. ख़ुशामद और झूठ बोलने की ज़रूरत नहीं. लेकिन ख्वामख़्वाह अपने आपको दिखाने की भी ज़रूरत नहीं.

(२६) **दुनियाँ में कोई ऐसा नहीं है, जो बुराई से बचा हो. वो बड़ा खुशकिस्मत (भाग्यशाली) है जिसने अपनी बुराइयों को जान लिया और उससे भी ज़्यादा खुशकिस्मत वो है जो उनको छोड़ने की कोशिश कर रहा है. अपना लक्ष्य सामने रखो और अपनी कोशिश और उससे प्रार्थना करते रहो. आहिस्ता-आहिस्ता सब ठीक हो जाएगा.**

(२७) **अपने प्रीतम की ख्वाहिश (इच्छा) को अपनी ख्वाहिश समझना, मन का देना होता है. यह मौहब्ब्त की इन्तहा (पराकाष्ठा) है.**

(२८) जितनी इच्छाएं मिटती जाएँगी उसी क़दर मज़बूती 'निस्बत' (गुरु शिष्य का आत्मिक सम्बन्ध) में आएगी और अपनी हस्ती (व्यक्तित्व) ग़ुम होकर उसी में समा जाएगी जो सबका आधार है. वही मोक्ष, निर्वाण-पद इत्यादि नामों से पुकारा जाता है. इसी को सूफ़ियों और संतों की भाषा में राज़ी-ब-रज़ा (यथा लाभ संतोष) कहते हैं. यानी हर हालत में चाहे कैसी भी क्यों न हो, खुश रहना चाहिए. यहाँ पर बुराई-भलाई से निज़ात (छुटकारा) मिल जाती है. आगे के संस्कार मिट जाते हैं. कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती. यहां तक कि आखिर में परमात्मा से भी बेनियाज़ हो जाता है.

(२९) **नफ़सानी ख्वाहिश यानी कामेन्द्री पर बहुत देर में क़ाबू आतां है. इसका एक परहेज़ और एक इलाज है. परहेज़ यह है कि स्त्रियों की सौह्बत से हमेशा परहेज़ रखें और अपनी स्त्री के सिवाय किसी के साथ एकांत में न बैठें. इलाज यह है कि जो स्त्री सामने से गुज़रे उसके चरणों में अपना सर ख्याली तौर से रखें और दिल में प्रार्थना करें कि, " हे माता ! तू जगत जननी की अवतार है, मैं तेरा कमज़ोर बालक हूँ, मेरा इम्तिहान न ले ."**

(३०) काम शक्ति को रोकना इंसान की शक्ति से बाहर है. अवतारों ने इसे शुद्ध तो किया है लेकिन मारा नहीं, सूक्ष्म रूप में क़ायम रखा . इसलिए इससे हमेशा होशियार रहना जबतक ज़िंदगी क़ायम है वर्ना ऐसे गढ्ढे में फेंक देगा जहाँ से उठना नामुमकिन (असंभव) हो जावेगा

(३१) मैं यह ज़रूर चाहता हूँ कि ब्याही हुई लड़कियां अपने पति की आज्ञा में रहें और क्वाँरी लड़कियां अपने बाप, भाई या सरपरस्त (सरंक्षक) के कहने में रहें. आज़ाद लड़कियां परमार्थ नहीं कमा सकतीं और उनको मुझसे मिलने से कोई फायदा नहीं है.

(३२) **इस रास्ते में रिश्तेदार सबसे अधिक रुकावट डालते हैं और उनसे तिनका तोड़ देने का भी हुक्म नहीं है.** उनके साथ दुनियां में कोआपरेट (सहयोग) करते हुए चलो. जीवन में शांति स्थापित करो, सबसे मेल-जोल करके रहो. सिवाय ईश्वर के किसी को अपना मत समझो और उसी के ध्यान में रहो.

(३३) दुनियाँ थोड़े दिनों की है ये रिश्ते भी आहिस्ता आहिस्ता खत्म हो जाते हैं. इसलिए अपने ही रूप में स्थित रहो. **दुनियाँ के मामलात (कामों) में दख़ल मत दो. जो हो रहा है ठीक हो रहा है. यह दुनियां ईश्वर की है, वह जैसा चाहेगा चलाएगा. इसी में सच्चा सुख है.** अपना कर्तव्य किये जाओ और बस.

(३४) आदतों को छोड़ना बहुत ज़रूरी है. इनके छोड़े बिना तरक़्क़ी नहीं होती, लेकिन इनको छोड़ना भी दुनियाँ में बहुत मुश्किल काम है और अपनी कोशिश से यह छूटती भी नहीं. इनको छोड़ने की तरकीब यह है कि पहले अपनी तरफ से खूब

कोशिश करो और जान की बाज़ी लगा दो, और फिर नाकामयाब (आसफल) होने पर परमात्मा से प्रार्थना करो, रोओ और गिड़गिड़ाओ. तभी उसकी दया उमड़ेगी और आदतें छूटेंगी.

(३५) दीनता अपनाओ. दीन बनने के लिए अपने आपको मेटना पड़ेगा. यह ज़िंदगी का सौदा है. इसके लिए जीवन भर संघर्ष करना पड़े तो हिचको नहीं. मौक़े को ग़नीमत जानकर इस मानव जीवन को सफल करो, वर्ना यह समय फिर हाथ नहीं आएगा.

(३६) गुरु से भय रखना आदर-सूचक है परन्तु इसके कारण अपनी हालत को न कहना ग़लती है.

(३७) ध्यान दो का नहीं किया जाता, केवल एक का ध्यान करना चाहिए. (जो बताया जाये)

(३८) अपनी कमज़ोरियों को दूर करने का भरसक प्रयास करो, उनके बारे में गुरु से निवेदन कर दो. यदि कोई ऐसी बात है जिसके कहने में संकोच लगे तो लिखकर दे दो. यह सोचकर बैठ जाना कि गुरु तो अन्तर्यामी हैं, सब कुछ जानते हैं, मूर्खता है. यह सत्य है कि वे सब कुछ जानते हैं किन्तु जब तक शिष्य स्वयं उनसे निवेदन नहीं करता, गुरु सहायता नहीं करते.

(३९) **गुरु के सामने खुलकर आना चाहिए. कोई छिपाव-दुराव (reservation) न रखें. अपना सच्चा हितेषी समझकर उनसे अपने मन की बात नम्रता पूर्वक सुअवसर देख कर निवेदन कर दें. यदि संकोचवश कह न सकें तो लिख कर दे दें.**

(४०) गुरु के जीवन में, जब तक वे अनुमति न दें, पुस्तकें पढ़ना हितकर नहीं है. पहले दिल की किताब पढ़ लो. यह अवसर फिर हाथ नहीं आता.

(४१) अगर गुरु या ईश्वर साथ है और उसकी याद है, और उसके कहने पर चल रहे हैं तो आसानी से रास्ता कट जाता है. फिर अपने असली वतन (देश) को वापिस चले जाते हैं वर्ना जन्म- जन्म इसी तरह भ्रमते रहते हैं.

(४२) **जब तक परमात्मा की याद बनी रहे उतनी देर का समय सार्थक , बाक़ी निरर्थक .**

(४३) निर्गुण के दर्शन नहीं होते आभास होता है.

(४४) परमार्थ दीनता से बनता है, केवल बल और पुरुषार्थ से नहीं.

(४५) गुरु तुम्हारे अन्दर है. जंन्म-जन्मान्तर से जमा की हुई इच्छाएं भी तुम्हारे अन्दर हैं. जब इच्छाएं सामने आ जाती हैं, गुरु हट जाता है जैसे चन्द्रमा प्रकाशित हो रहा है किन्तु नेत्रों पर अंगुली रख लेने से चन्द्रमा नहीं दिखाई देता है, अंगुली के हटा लेने पर चन्द्रमा दिखाई देने लगता है. जब इच्छाओं का वेग होता है, गुरु का प्रेम जाता रहता है और जब इच्छायें जाती रहती हैं तो गुरु का प्रेम आ जाता है.

(४६) सब चीज़ों को छोड़कर एक ईश्वर को प्रेम करो. मन जहां-जहां फंसा हुआ है वहां से खेंचकर, उसकी बिखरी हुई शक्तियों को बटोर कर एक ईश्वर के चरणों में लगा दो. उसके ख्याल में और उसके प्रेम में महव (तल्लीन) हो जाओ कि सिवाय उसके और किसी का ध्यान न रहे. यह दुनियां तो जैसी है वैसी ही रहेगी और इसका कोई काम बंद नहीं होगा. हमें इससे क्या, हमें तो अपने प्रीतम से काम है

(४७) सच्चे गुरु की मौहब्बत ही ईश्वर की.मौहब्बत है. मिलान करते चलो और देखो कि किसकी मौहब्बत ऊंची है, इसकी या उसकी ? सोचो कि हमने इतनी ग़लतियाँ की हैं पर अंत तक उसने हमें माफ़ ही किया है. लेकिन दूसरी और दुनियाँ में देखो, दुनियांवी प्रेम में ज़रा सी ग़लती हुई कि उसने मुंह मोड़ लिया. तो क्या यह दुनियाँ हमारी साथी है. **अपने ज्ञान की तराज़ू पर तौल कर देखिये कि किसकी मौहब्बत बेगरज़ाना (निस्वार्थ) है और अमर है - गुरु की या दुनियाँ की ?**

(४८) दो रास्ते हैं (१) कर्म का,और (२) दया का. कर्म का रास्ता ऋषियों का है, दया का रास्ता भक्तों का. कर्म के रास्ते के लिए तमाम क़ायदे और क़ानून हैं. दया के \ रास्ते के लिए न कोई क़ायदा है और न कोई क़ानून. उसकी दया ही दया है. या तो सब कुछ उसी पर छोड़ दीजिये, वह जो चाहे सो करे, वह मालिक है. **तमाम उम्र में इंसान से वह नहीं हो सकता जो उसकी दया से एक पल में हो जाता है. पलक मारते ही तमाम जन्मों के कर्म कट जाते हैं, और अगर फिर उसका प्रेम मौजूद है तो चाहे हज़ारों जन्म हों और वह महा तक़लीफ़ में कटें, क्या परवाह है ? सिर्फ प्रेम का सहारा चाहिए.**

(४९) आवागमन से छूटने की ख्वाहिश करना चाहते हो तो सब ख्वाहिशों को छोड़ो. अच्छी ख्वाहिश करोगे, अच्छा मिलेगा, बुरी करोगे, बुरा मिलेगा. यहां तो हर चीज़ का बदला है. जो दुःख-सुख या बीमारी आती है वह पिछले कर्मों का नतीजा है. ये भोगने तो पडेंगे ही. उन्हें अगर ख़ुशी से भोग लिया तो आगे के संस्कार नहीं बनेंगे. **इसीलिए सूफियों में राज़ी-ब-रज़ा की शिक्षा दी जाती है. जिस हाल में मालिक ने रखा है उसमें खुश रहो.**

(५०) ईश्वर की शक्ति सभी में है व सभी ईश्वर की प्राप्ति कर सकते हैं लेकिन मन से एहतियात (सावधानी) रखनी चाहिए यानी जो मन को भाये वह नहीं करना चाहिए. इससे मन शक्तिशाली और मोटा होता है.

(५१) दुनियाँ तो छोड़ना नहीं चाहते, एक क़दम आगे बढ़ाना नहीं चाहते और चाहंते हैं कि तरक़्क़ी हो . कैसे हो? जब तक खुद कोशिश नहीं करोगे तब तक गुरु कृपा और ईश्वर कृपा नहीं होगी. हम चाहते हैं कि हमारे भाई भी कुछ समझ जाएँ. तुम उस मामले में जो परमार्थ की तरफ़ ले जाता है, कुछ सुनना नहीं चाहते, करना तो अलग रहा. भक्ति कैसे होगी ? फिर शिकायत करते हो कि तरक़्क़ी नहीं होती.

(५२) **जो मन का साथी है वह गुरु का साथी नहीं. अगर तुम गुरु की सहायता लोगे तो वह तुम्हें मन के पंजे से निकल देगा. मोक्ष प्राप्त करने के लिए मन का मर्दन करना होगा,. जब तक मन में फंसे हो वह तुम्हें इस भवसागर से नहीं निकलने देगा.** तमोगुणी मन जानवर बनाएगा, रजोगुणी मन दुनियाँ में लौटाकर लाएगा. मरते वक्त सोचोगे कि यह काम रह गया,

वह रह गया. इसी में अटक कर प्राण निकलेंगे और फिर वहीँ आना होगा, सतोगुणी मन धर्म पर जाता है, मोक्ष नहीं देता.

(५३)भक्ति बढ़ाने का सबसे ऊंचा तरीक़ा यह है कि मन के फंदे से बचें और ईश्वर से नाराज़ न हों. ज़रा गर्मी ज़्यादा हो जाय तो कहने लगते हैं "हाय बड़ी तपन है ". कभी बारिश ज़्यादा हो गयी तो लगे परमात्मा को कोसने. **ये सब बुरी बातें हैं. परमात्मा के सब काम सर्वहित के लिए होते हैं.वह जो करता हैं सबकी अच्छाई के लिए ही करता है. लेकिन हम उसके कामों को अपने मन की कसौटी पर परखते हैं.**

(५४) आत्मा पर से ख्वाहिशात के पर्दे हटा दो. अपना रूप देखो. तुम्हारा रूप क्या है? तुम ईश्वर के हो, ईश्वर तुम्हारा है. इस दुनियां में कोई तुम्हारा नहीं है. यहां की चीज़ों को एक एक करके, तज़ुर्बा करके छोड़ दो. ये तो तुम्हें तज़ुर्बा करने के लिए मिली थीं. भ्रम से तुम इन्हें अपनी समझ बैठे. **अगर गुरु के कहने में चलोगे तो यहां की चीज़ों का तज़ुर्बा भी होता चलेगा और उन्हें छोड़ते भी चलोगे और अगर बराबर गुरु के कहने में चलते रहोगे तो एक न एक दिन तुम्हें असली तज़ुर्बा यानी आत्मबोध हो जायेगा. जो critic (तर्कवादी) होते हैं उन्हें कठिनाई होती है. विश्वास से रास्ता जल्दी तय होता है.**

(५५) अपना रुप समझो,आत्मा को मन से हटाओ, वासनाओं से रहित हो जाओ.जब आत्मा के ऊपर का पर्दा हट जाएगा फिर तुम अपना असली रूप देख सकोगे कि तुम कौन हो. तुम तो ईश्वर खुद हो. जब तुम अपने आप को पहचान जाओगे फिर किसकी पूजा करोगे ? तुम स्वयं आनंद हो, आनंद की तलाश कहाँ करते हो.

(५६) **सब से अव्वल धर्म है कि अपनी आत्मा का साक्षात्कार करो, बाकी सब धर्म सेकेंडरी ((secondary) हैं. जीवन का लक्ष्य यही है.**

(५७) लालाजी (मेरे गुरुदेव) कहा करते थे कि तुम्हें खुश रहने का गुर बताएं . यह गुर यह है कि अगर एक जूता मौजूद है तो दूसरा ख़रीदने मत जाओ. कहने का मतलब यह है कि जब एक चीज़ से काम चल सकता है तो दुहैरी-तिहैरी चीज़ें मत खरीदो, जितने उनमें attach(लिप्त) रहोगे उतने फंसोगे. ल्केकिन सब कर्म करते हुए भी अपनी foremost duty(सर्व-प्रथम कर्तव्य मत भूलो. अपने असली रूप को पहिचानो. नक़ली रूप जो बना रखा है उसे उतार फेंको.है.

(५८) **अपने आपको सब का सेवक समझ कर गुरु में ईश्वर का रूप देखकर, सब चीज़ों को गुरु की कृपा से मिली समझकर चलते जाओ. मन से पूछते चलो ' यह कैसे हुआ ' और जबाब देते चलो कि ' गुरु कृपा से ऐसा हुआ.' रास्ता सुगम हो जायेगा.**

(५९) अपने आपको ईश्वर के ध्यान में इतना तल्लीन कर दो कि हर वक्त उसी में लगे रहो. बुराई-भलाई का अगर ख्याल आता है तो उसमें मत फंसो. इस तरह अभ्यास करते-करते मन स्वयं शांत हो जायेगा.

(६०) **जिन बातों की धर्मशास्त्र आज्ञा नहीं देता उनसे बचो, अपने आप पर रोक-टोक लगा दो.** जेसे परस्त्री के साथ अकेले में मत बैठो. जो बातें मर्दों के लिए हैं वही स्त्रियों के लिए भी हैं . अगर कभी अवसर पड़े तो किसी को साथ रखो, तुम कितने ही धर्मात्मा हो लेकिन मन पर कभी भरोसा नहीं कर सकते . यह बड़ा धोखेबाज़ है . कोई यह दावे के साथ नहीं कह सकता कि उसने मन को जीत लिया. जिसे ईश्वर ने अपना लिया वही मन के धोखे से बच सकता है.बड़े-बड़े ऋषि मुनि और तपस्वी इसके धोखे में आकर मारे गये. मन में बीज रूप से इच्छाएं बनी रहती हैं और जब वातावरण उनके अनुकूल होता है तो वे उभर आती हैं और इंसान को फंसा लेती हैं और अपना रूप धारण कर लेती हैं. जब सब ख्वाहिशात मन से, शरीर से और बीज रूप से निकल जाएँ तब समझो कि अब कोई ख्वाहिश बाकी नहीं है. पेड़ के पत्ते, टहनियां और तना काट देने से यह मत समझो कि पेड़ मर गया. अभी जड़ें बाक़ी हैं तथा वे चारों और से ज़मीन में गहरी घुसीं हुई हैं. अनुकूल वातावरण मिलते ही उनमें फिर पत्ते और डालियाँ निकल आएँगी. किसी आदत को छोड़ना हो तो उससे परहेज़ करो और अपने आपको उससे दूर रखो. शराब पीने की आदत है तो शराब को दूर रखो., ऐसी जगह रखो कि तुम बोतल उठाना भी चाहो तो तुम्हारा हाथ वहां न पहुंचे.

(६१) सच्चा प्रेम केवल आत्मा के द्वारा होता है. मन का प्रेम बदला चाहता है और बदलता रहता है.

(६२) इन्द्रियों का प्यार, मन का प्यार और आत्मा का प्यार - ये तीन तरह के प्यार हैं. इन तीनों में से जो चीज़ common (सब में) है उसको रख लो और बाक़ी सब निकाल दो. क्या रह जायेगा? प्यार ही प्यार रह जायेगा.

(६३) दुनियाँ का कारख़ाना एक ऐसा जाल है कि इसमें जो एक बार फंस गया, वह फंसता ही चला जाता है. आपने मकान बनाया तो सैकड़ो झंझट उसके बनाने में सामने आये. कहीं से रुपए का इंतज़ाम किया तो कहीं से सामान का. धूप, बरसात और खराब मौसम में खड़े रहकर उसके काम का निरीक्षण किया. जब बन कर तैयार हुआ तो यह फिक्र पड़ गयी कि कोई अच्छा किरायेदार मिल जाय. किरायेदार मिल गया तो छोटी-छोटी बात पर उससे तू-तू मैं-मैं होने लगी. अब उसको निकालने की फिक्र पड़ गयी. टूट-फूट की मरम्मत कराने की फ़िक्र पड़ गयी. मकान बनाया तो था इसलिए कि आराम और ख़ुशी मिलेगी, लेकिन ख़ुशी मिलना तो दूर, उलटी फिक्र पीछे पड़ गयी. कहाँ है चैन ? कहाँ है ख़ुशी ? जिसे तुम दुनियाँ की चीज़ों में तलाश करते हो वह उसमें नहीं है. एक तरफ तो तराज़ू का वह पलड़ा है जिसमें मनों का बोझ है यानी दिन रात के चौबीस घंटों में कुछ मिनिट को छोड़कर दुनियाँ में ही व्यवहार कर रहे हो. उसी के सोच विचार में पड़े हो. दूसरी तरफ का पलड़ा बहुत ही हल्का है. परमार्थ के कामों में या संध्या पूजा में अगर बैठे तो दस पांच मिनिट के लिए और उसमें भी एक दो मिनिट तबियत लगी तो लगी वर्ना दुनियाँ के ही विचार आते रहे, अब तुम ही सोचो कि सारे दिन तो दुनियाँ का काम किया और एक-दो मिनिट मन पूजा में लगा तो कैसे काम चलेगा? मन तो उधर ही जायेगा जिधर वह सारे दिन लगा रहता है.

(६४) Guru is not the body, God manifests through that body .**गुरु का स्थूल शरीर गुरु नहीं है, ईश्वर उस स्थूल शरीर के द्वारा प्रकट हो रहा है.उसमें अपने आपको लय कर दो.**जब सम्पूर्ण लय हो जाओगे तो अपने आपको पहचान जाओगे कि तुम कौन हो.

(६५) जहां कोई वासना न हो, बुद्धि शांत हो, तर्क वितर्क न हो, सबमें अपना ही रूप झलके, सब से प्रेम हो- वह तुम्हारा अपना रूप है. यही आत्मा का साक्षात्कार है, यही ईश्वर प्राप्ति है. (६६) धार्मिक पुस्तकों की इज़्ज़त, चाहें वे वेद हों या क़ुरान, अंजील या गुरु ग्रन्थ साहिब, किसी का निरादर नहीं. यदि गुरु ने किताबों के विपरीत बतलाया है तो उसे ही सही मानो और उसके मुक़ाबले में किताबों के लिखे पर ध्यान न दो.

(६७) यदि कोई बुज़ुर्ग और दूसरे सिलसिले के आ जाएँ तो उनको सर आँखों पर रखना, उनका आदर सत्कार करना, लेकिन तरीक़े के मुताल्लिक़ (सम्बन्ध में) बात न करना. अगर कोई बुज़ुर्ग तुम्हारे सिलसिले के नहीं हैं तो बिना गुरु की आज्ञा के उनके पास मत जाओ. हाँ, अगर पुख्तगी आ गयी है तो अलबत्ता यह बंदिश नहीं है.

(६८) शुरू में धार्मिक किताबें मत पढ़ो. **गुरु की मौजूदगी में दिल की किताब पढ़ो और उन्हीं में अपने को फ़ना (लय) कर दो.**

(६९) **गुरु की औलाद की बेक़दरी मत करो, उनमें तुम्हारे गुरु का अंश मौज़ूद है .**

(७०) अगर तुम्हें इज़ाज़त है तो मौक़े-ब-मौक़े घूमों ताकि ओरों को फ़ायदा हो, प्रोपैगैंडा न करो. अपने आपको बना कर मिसाल के तौर पर पेश करो.

(७१) अपनी हालत किसी से बयान मत करो. लिखकर या ज़ुबानी गुरु के सामने पेश करो.

(७२) अदब से रहो. **अदब यह है कि जो शगल बताया गया है वह करते रहो जो ख्यालात गुरु रखते हों वैसे ही अपने बनाओ.**

(७३) **दिल के बर्तन को मांजो और गुरु के फ़ैज़ (कृपा) से धोते जाओ. एक दिन वह वक्त आएगा जब तमाम बुराइयां धुलकर दिल का बर्तन चमक उठेगा और प्रीतम का दीदार नसीब होगा. यह ख़्याल न करना कि तुममें नुक्स नहीं है. यह शैतानी (माया का) धोखा है.**

(७४) लड़का कितना भी नालायक हो, परन्तु बाप के लिए लड़का ही है. बाप हर समय अपने बेटे की प्रतीक्षा करता रहता है और चाहता है कि गोद में चिपटा ले. और हम हैं कि याद तक नहीं करते. परमात्मा के पास सारी चीज़ें हैं -यह सृष्टि ही उसका लीला विलास है. उसके पास सिर्फ 'दीनता' नहीं है. तुम दीं बनकर उसके पास जाओ.वह तुम्हें अवश्य

अपनी गोद में उठा लेगा.दीं बनने के लिए अपने आप को मेट्ना पड़ेगा. **यह जीवन का सौदा है. इसके लिए जीवन भर संघर्ष करना पड़े तो हिचको मत. मौक़े को ग़नीमत जानकर मानव जीवन को सफल करो वरना यह समय फिर हाथ न आएगा.**

(७५) **गुरु से रूठते कभी नहीं. गुरु का कोई काम दयालुता से ख़ाली नहीं होता.**

(७६) स्त्री मन का रूप है इसलिए कबीर साहब तथा अन्य महापुरुषों ने कहा है कि स्त्री को वश में रखना चाहिए. पुरुषों का एक अपना मन होता है और दूसरा स्त्री का. उसे दो मनों को वश में रखना होता है.

(७७) **ईश्वर तुम्हारे अन्दर है. उसे प्रेम से बुलाओ, वह ज़रूर आएगा.**

(७८) जो सब पर बराबर होती रहती है वह ' दया' कहलाती है लेकिन जो ईश्वर से प्रेम करते हैं और उसके रास्ते पर चलते हैं यह उसकी कृपा है.

(७९) गुरुजन हाथ पकड़ कर छोड़ा नहीं करते.

रामाश्रम सत्संग के शिक्षक-वर्ग के लिए आदेश

(नोट - जब कभी मैं गुरुदेव की सेवा में सिकन्द्राबाद जाता था तो वह बहुधा पूछा करते थे -"क्या कुछ लिखकर लाये हो." बाती यह थी कि जब कभी वह प्रवचन करते थे और यदि मैं वहां होता था तो उसे लिखता जाता था. मैं आशुलिपि नहीं जानता था परन्तु उन्होंने मुझे ऐसी शक्ति दे रखी थी कि लेखनी चलती जाती थी. जब घर वापिस आता था तो उस प्रवचन को ठीक से लिखता था और अवसर मिलने पर उन्हें सुना देता था. वे बड़ी तल्लीनता से सुनते थे और अपना प्रतिष्ठान उस प्रवचन में करते जाते थे. यदि कहीं कोई संशोधन कराना होता था तो बता देते थे.

रुड़की में सन १९६९ के भंडारे पर श्री श्री स्वामी चिन्मयानंद पुरी (श्री रामकृष्ण शिवानंद आश्रम) अल्मोड़ा से पधारे हुए थे. जब गुरुदेव पूजा कराते या प्रवचन करते थे तो स्वामी जी उनकी दायीं और बैठते थे और मुझे अपनी बायीं ओर बैठा कर आज्ञा देतें थे कि लिखो. शिक्षक वर्ग के लिए उपदेश उन्होंने ही लिखाये थे. वे इतनी गति से बोलते थे कि प्रत्येक व्यक्ति नहीं लिख सकता था. अब वह शक्ति मुझ में नहीं रही है. जिन्होंने दी थी उन्हीं के साथ चली गयी.

१. किसी भी व्यक्ति को तब तक सत्संग में शामिल नहीं करना चाहिए जब तक यह न देख लो कि इसका इख़लाक़ (आचरण) ठीक है. झूंठे, ज़िनाकार (व्यभिचारी) व्यक्ति को सत्संग में मत लो.

२. जब तक मनुष्य यम-नियम का पालन न करें तब तक 'नाम' नहीं देना चाहिए.

३. रुपया (भेंट) मत लो और अगर आता है तो उसे सत्संग के काम या दान पुण्य में लगा दो. हमेशा चौकन्ने रहो कि सत्संग का पैसा तुम्हारे निजी खर्च में न आने पाये वरना ढेर हो जायेगा.

४. हमेशा औरों की ख़िदमत करना, कराना मत. हमारे गुरुदेव का यह उसूल (सिद्धांत) था और उसी पर दृढ रहना चाहिए.

५. जो मनुष्य कहीं और 'नाम' (गुरु दीक्षा) ले चुके हैं, यदि वे आपके यहां जांच पड़ताल के लिए आयें तो उन्हें persuade (फुसलाना) मत कीजिये.

६. ग़ैर आदमी को सत्संग में शामिल मत करिये, जो ख़ुशी से आये और हमारी services (सेवाएं) लेना चाहे, उसके लिए हम तैयार हैं.

७. हर शख्स को यह तालीम देना कि " हमारी शक्ल का ध्यान करो " ग़लत है.

८. जब कोई अभ्यासी आये तो यह कोशिश करो कि उसका ज़िक्र (शब्द) जारी हो जाये. अपने आपको ध्यान में लाकर अपने अन्दर शब्द जारी करो और ' ॐ ' शब्द की ठोकर उसके दिल पर दो. यह तरीक़ा चंचल मिज़ाज़ वालों के लिए है. Sober (गंभीर) लोगों को तवज्जह आज्ञा-चक्र पर देनी चाहिए. जब अभ्यासी के अन्दर शब्द जारी हो जाय तो फिर उसे शब्द के ध्यान पर लगा दो.

९. स्त्रियों को कभी ह्रदय पर तवज्जह मत दो, आज्ञाचक्र पर दो.

१०. कभी -कभी तवज्जह इस तरह भी दो कि अपने अन्दर प्रकाश का ख़्याल करके यह ख़्याल करो कि उसका focus (अक्स) दूसरे पर पड़ रहा है.

११. जिनको तालीम की इज़ाज़त है उन्हीं लोगों को तवज्जह देनी चाहिए लेकिन जिनको monitorship (मॉनिटरी) की इज़ाज़त है वे सिर्फ सत्संगियों को इकट्ठा करके सत्संग करें.

१२. जिनको तालीम की इज़ाज़त है उनको लिखकर दे दी गयी है. उपदेश की इज़ाज़त सिर्फ सरदारजी (डॉ. करतार सिंह जी) बसंत बाबू (डॉ. ब्रजेन्द्र कुमार सक्सेना) और डॉ. हरिकृष्ण जी को है.

१३. अगर लय अवस्था नहीं आती है तो तवज्जह नहीं देनी चाहिए. यह ख्याल करके की मैं नहीं हूँ, गुरु है तब तवज्जह दो.

१४. स्त्रियों को, जहां तक हो सके, तवज्जह न दें और दें तो आज्ञा चक्र पर दें. widows (विधवाओं) को तब तक सत्संग में शामिल न करें जब तक कि खूब आज़मा न लें.

१५. . औरतों में खिल्त-मिल्त (mix-up घुलें मिलें) नहीं. यही ढेर कर देगा.

१६. हमारे यहां दो चीज़ों से सत्संग से अलग कर देतें हैं. (अ) बदएतक़ादी(अविश्वास) और (ब) ज़िनकारी (व्यभिचार, परस्त्री-गमन)

१७. अभ्यासी जितना ऊंचा होता है उतना ही ज़्यादा उस पर माया का हमला होता है. किसी स्त्री के फेर में पड़ जाएगा कीर्ति बढ़ेगी जिसके फलस्वरूप वह सोचेगा कि " मैं तो गुरु हो गया " अगर ऐसा हुआ तो मारा गया. गुरुदेव (परमसन्त श्री रामचंद्र जी महाराज) कहते थे कि मैं तो धोबी हूँ, जो कोई मैले कपड़े लाता है उन्हें धो देता हूँ. गुरु तो ईश्वर है .

१८. कभी अपने आपको ' गुरु ' मत समझो, सेवक समझो.

१९. तमोगुणी और रजोगुणी मन तो धोखा देता ही है मगर सतोगुणी मन भी फंसाता है.

२०. सेवा करो ईश्वर को खुश करने के लिए, बदले के लिए नहीं.

टिप्पड़ी- पूज्य गुरुदेव परमसन्त डॉ श्रीकृष्ण लाल जी का रुढ़की में यह अंतिम भण्डारा था जो उनके पार्थिव शरीर के रहते हुए हुआ था. उपरोक्त आदेश गोपंनीय समझने चाहिए. यह केवल उन भाइयों के लिए हैं जिनको वे शिक्षा का काम सौंप गए हैं . इस आदेश के अतिरिक्त आध्यात्मिक शिक्षा सम्बन्धी अति गोपनीय अन्य आदेश भी हैं जो व्यक्ति विशेष से सम्बन्ध रखते हैं और केवल अत्यन्त अन्तरंग भक्तों तक सीमित हैं. इन आज्ञाओं का पालन भरसक हो, यही गुरु की सच्ची सेवा है.

!! इति !!